RNI Title Code : MPHIN32709

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 1, अंक : 4

जनवरी-मार्च 2017

मूल्य : 50 रुपये

शिवना प्रकाशन : वर्ष 2017 नए सेट की पुस्तकें

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला, प्रगति मैदान 2017 में लोकार्पण

दिनांक : 10 जनवरी 2017, सुबह 11 बजे, लेखक मंच हॉल क्र. 12 ए

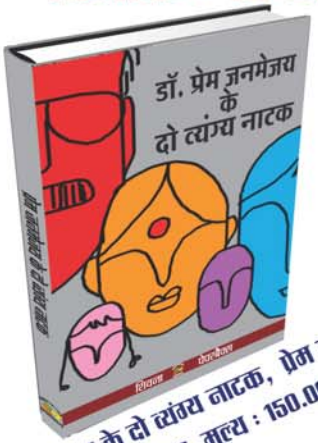

डॉ. प्रेम जनमेजय के दो व्यंग्य नाटक, प्रेम जनमेजय
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 150.00 रुपये

बिसात (कहानी संग्रह) राकेश बिहारी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 200.00 रुपये

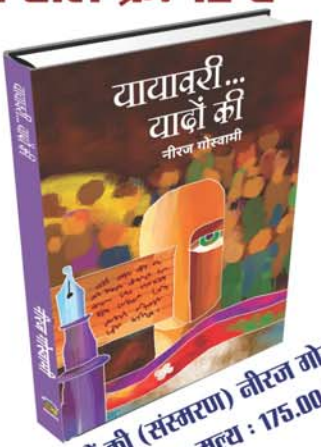

यायावरी... यादों की (संस्मरण) नीरज गोस्वामी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 175.00 रुपये

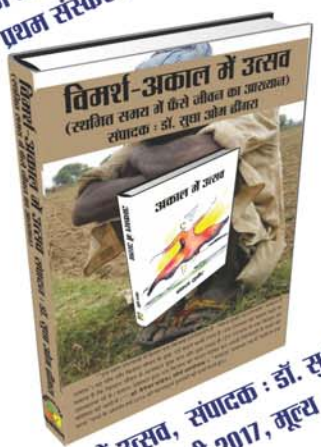

विमर्श-अकाल में उत्सव, संपादक : डॉ. सुधा ओम ढींगरा
प्रथम संस्करण : जनवरी 2017, मूल्य : 250.00 रुपये

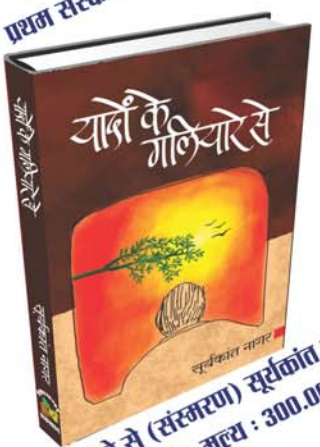

यादों के गलियारे से (संस्मरण) सूर्यकांत नागर
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 300.00 रुपये

पार्थ...! तुम्हें जीना होगा (उपन्यास) ज्योति जैन
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 175.00 रुपये

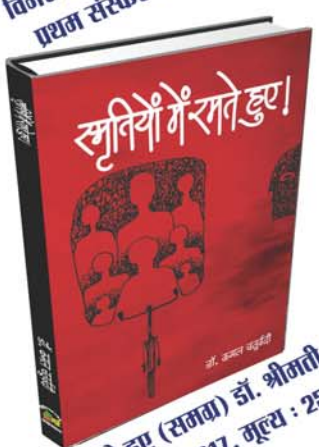

स्मृतियों में रमते हुए (समग्र) डॉ. श्रीमती कमल चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 250.00 रुपये

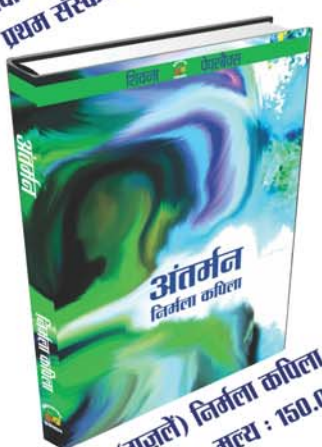

अंतर्मन (ग़ज़लें) निर्मला कपिला
पहला संस्करण : 2017, मूल्य : 150.00 रुपये

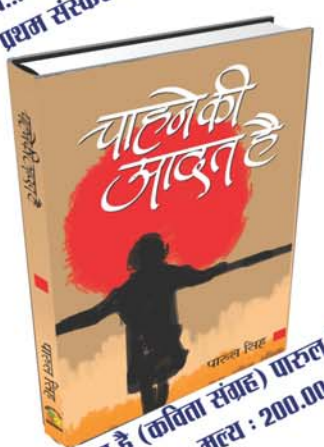

चाहने की आदत है (कविता संग्रह) परल सिंह
प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 200.00 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू.के.)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, शहरयार
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 1, अंक : 4, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2017
RNI Title Code : MPHIN32709
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
पल्लवी त्रिवेदी

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville, NC-27560, USA
Ph. +1-919-678-9056 (H), +1-919-801-0672(MO.)
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम-स्वर
वर्ष : 1, अंक : 4
जनवरी-मार्च 2017

सम्पादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

उषा प्रियंवदा

सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 9

कहानियाँ

पुनर्जन्म

प्रतिभा 13

छोटा-सा शीश महल

अरुणा सब्बरवाल 16

वसंत लौट रहा है

कविता विकास 22

किस ठाँव ठहरी है-डायन ?

प्रेम गुप्ता 'मानी' 28

लघुकथाएँ

डॉ. पूरन सिंह

रास्ता तो यहीं से जाता है 12

बचा लो उसे 21

अंधा रास्ता 21

फोटो 71

दीपक मशाल

खाई की शुरुआत 15

यक़ीन 15

गोविंद शर्मा

अच्छा दोस्त 34

भोले लोग 34

भाषान्तर

मुस्तफा की मौत

तेलुगु कहानी : अफसर

अनुवाद : आर.शांता सुंदरी 35

शहरों की रूह

लन्दन की गलियाँ

शिखा वार्ष्णेय 39

आलेख

प्रवासी साहित्य का स्वरूप एवं अवधारणाएँ

सुबोध शर्मा 41

दोहे

रघुविन्द्र यादव 45

के.पी. सक्सेना 'दूसरे' 47

दृष्टिकोण

महिला लेखन की चुनौतियाँ और संभावना

डॉ. अनिता कपूर 46

शोध-आलेख

राधा का प्रेम और अस्तित्व

रेनू यादव 48

व्यंग्य

पूर्व, अपूर्व और अभूतपूर्व

सुशील सिद्धार्थ 52

मुरारी लाल की नरकयात्रा

अरुण अर्णव खरे 55

उपन्यास अंश

सूर्यबाला के उपन्यास 'वेणु की डायरी' का अंश 57

ग़ज़लें

डॉ. राकेश जोशी 59

अशोक मिज़ाज 60

आशा शैली 60

चन्द्रसेन विराट 60

प्रबुद्ध सौरभ 61

कविताएँ

रश्मि प्रभा 62

शोभा रस्तोगी 63

अनीता सक्सेना 64

प्रो. संगम वर्मा 65

अमेरिका की चार युवा कवयित्रियाँ

गीता घिलोरिया, आस्था नवल,

विनीता तिवारी एवं दिलेर 'आशना' दिओल 66

आलोचना

सुधा अरोड़ा कृत 'यह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है' लघु-उपन्यास: एक विवेचन

संगमेश नामन्नवर 68

पुस्तक समीक्षा

इस पृथ्वी की विराटता में (नरेन्द्र पुण्डरीक)

समीक्षक : कालूलाल कुलमी 72

पीले रूमालों की रात (नरेन्द्र नागदेव)

समीक्षक : मुकेश निर्विकार 74

एक पेग ज़िन्दगी (पूनम डोगरा)

समीक्षक : घनश्याम मैथिल 'अमृत' 76

शौर्य गाथाएँ (शशि पाधा)

समीक्षक : गौतम राजरिशी 77

समाचार सार

कोपनहेगन विश्वविद्यालय में हिन्दी संध्या 78

प्रताप सहगल के नाटक 'अन्वेषक' का मंचन 79

बियाबान फिल्म को सर्वश्रेष्ठ फिल्म का अवार्ड 79

मुकेश वर्मा के कहानी संग्रह का लोकार्पण 80

उपन्यास अकाल में उत्सव पर चर्चा 81

आख़िरी पन्ना 82

साहित्य के आकाश पर सबका हक़ है, प्रवासी साहित्य और साहित्यकारों का भी

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल्ल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
फोन : +1-919-678-9056
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

मित्रो,

लिखने का शौक बचपन से ही था। सोचती थी, साहित्य का आकाश बिलकुल वैसा है; जैसा आकाश मैंने बचपन में गर्मियों की रातों में छत पर पड़ी मंजी पर बिछी सफेद चादर पर लेट कर देखा था। साथ में सट कर सोने वाली प्रज्ञाचक्षु मौसी ऐसे में अक्सर कहतीं-इस आकाश की ओर देख! सूरज, चाँद, तारे, पक्षी, पानी, बिजली और अनगिनत गैसें सब इसमें समा जाते हैं। अगर कुछ और भी उसमें समाना चाहेगा तो यह उसको भी अपने में समेट लेगा। और अपनी कल्पना में मैं साहित्य के आकाश में स्वयं को सिमटे पाती।

पत्रकारिता से लेखन की तरफ आई हूँ। शादी तक कहानी, कविता और उपन्यास दैनिक समाचार पत्रों तक सीमित रहे। कोई पुस्तक नहीं छपी थी। शादी के बाद अमेरिका आकर यहाँ का आकाश मुझे वैसा नहीं मिला, जैसा भारत में था। चाँद, सूरज के अतिरिक्त तारे तो कभी-कभी देखने को मिले और पंछियों का कलरव तो आते-जाते मौसम में ही सुना। बाकी तो जो कुछ भी भी मिला चाहे वह वर्षा थी या बर्फ, सुख था या समृद्धि अति मिला।

अपने को एक भ्रम में पालती रही, एक ग़लत फ़हमी में जीती रही। भारत का आकाश और साहित्य का आकाश तो मेरा है। वह नहीं बदल सकता।

ज्यों-ज्यों छपना शुरू किया, यथार्थ सामने आना शुरू हो गया। सच को फिर भी नकारती रही। लिखना जीने के लिए अनिवार्य है, बस लिखती रही। प्रतिस्पर्धा, प्रतिद्वंद्वता, ईर्ष्या-द्वेष, गुटबंदी से दूर अपना काम करती रही। मैं जानती थी कि अब मैं प्रवासी हो गई हूँ देशवासियों के लिए और साहित्य आकाश ने प्रवासी साहित्यकार बना दिया था। भीतर चाहत पालती रही आकाश तो सब को स्थान देता है, हम प्रवासियों को भी मिलेगा। मेरी पुस्तकों के साथ-साथ अन्य प्रवासी लेखकों की पुस्तकों को भी तिरस्कार और अवहेलना मिली पर शायद मेरी तरह और भी प्रवासी साहित्यकार महत्त्वाकांशी नहीं हैं, हम सब इस तरफ से लापरवाह बस लिखते रहे। हालाँकि नॉस्टेल्जिया, बेकार का साहित्य जैसे कई दोष हम पर लगते रहे।

व्यक्तित्व मिशनरी है अत: मैं अमेरिका में हिन्दी के प्रचार-प्रसार और साहित्य-साधना में जुटी रही इससे बेख़बर कि कोई आलोचक, समीक्षक प्रवासी साहित्य की ओर क्यों ध्यान नहीं देता?

साहित्य का आकाश बदल चुका था, बहुत बाद में महसूस कर पाई। भूमंडलीकरण का इस पर बहुत प्रभाव पड़ा था। एक-दो प्रवासी साहित्यकारों ने साहित्य के इस बदलते परिवेश को समझ कर बाज़ारवाद की नस को पकड़ लिया और वे साहित्य की मुख्यधारा में शामिल होने में सफल हो गए पर उन्होंने साथ ही साथ -'साढा हक़ ऐथे रक्ख' वाला फॉर्मूला भी अपनाया। बाकी प्रवासी- साहित्यकार यह सब नहीं कर पाए।

इसका परिणाम यह हुआ कि 2016 के वार्षिक साहित्य मूल्यांकन में समीक्षकों, आलोचकों ने विदेशों से कई उपन्यास, कहानी-संग्रह, कविता-संग्रह आने के बावजूद उन्हें

नकार दिया। हाशिए पर डाल दिया। इतना कहना ज़रूरी नहीं समझा कि कुछ पुस्तकें विदेशों से आई हैं। साहित्य अच्छा होता है या बुरा। कुछ तो कहा होता। साहित्य के आकाश पर सबका हक़ है। प्रवासी साहित्य और साहित्यकारों का भी। समय की छलनी सब छान देगी।

मुझे इस बात की ख़ुशी है कि 2016 का वर्ष साहित्य जगत् में महिला वर्ष रहा। लेखिकाओं की तीन पीढ़ियाँ लिख रही हैं। चित्रा मुद्गल और मृदुला गर्ग जी अभी भी उपन्यास लेखन में सक्रिय हैं। नासिरा शर्मा जी को उनके उपन्यास 'पारिजात' पर साहित्य अकादमी सम्मान मिला है और युवा पीढ़ी में गीताश्री, जयश्री रॉय, प्रज्ञा, वंदना गुप्ता के साथ-साथ अन्य कई देशों-विदेशों की लेखिकाएँ हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रही हैं।

अमेरिका में नोबेल प्राइज़ विनर Svetlana Alexievich के नॉवेल Secondhand Time: The Last of the Soviets 2016 में काफी चर्चित रहा। Stephanie Danler का नॉवेल Sweetbitter यहाँ की बुक क्लबों की शान रहा। Hisham Matar का उपन्यास The Return: Fathers, Sons and the Land in Between काफी सराहा गया।

विभोम-स्वर की टीम की ओर से सबको नव-वर्ष की शुभकामनाएँ!! हमें आपसे पूरी उम्मीद है कि आपका सहयोग और साथ बना रहेगा।

साहित्य आकाश बहुत बड़ा है, सबको स्थान मिल सकता है, नील गगन से शिक्षा लेनी चाहिए; जिसका जितना कर्म और भाग्य होगा, उतना ही वह चमकेगा। पूर्वग्रहों से मुक्त होकर साहित्य साधना और मूल्यांकन होना चाहिए।

स्वयं का ध्यान रखें और अपने आस-पास का भी।

* * *

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

रास्ते युगों-युगों से हमारे क़दमों की प्रतीक्षा में बिछे हुए हैं और जाने कितने युगों तक इसी प्रकार बिछे रहेंगे। लेकिन हम ही जीवन की आपा-धापी में रास्तों को भूल जाते हैं। ठहर जाते हैं। भूल जाते हैं कि कहीं कोई रास्ता हमारे लिए प्रतीक्षारत है। रास्ते राह देख रहे हैं.....।

बधाई

सात नदियाँ एक समंदर, शाल्मली, ठीकरे की मँगनी, ज़िंदा मुहावरे, अक्षयवट, कुइयाँजान, ज़ीरो रोड जैसे महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की लेखिका, प्रतिष्ठित कथाकार, उपन्यासकार नासिरा शर्मा जी को उनके उपन्यास 'पारिजात' हेतु वर्ष 2016 के प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार देने की घोषणा की गई है। पूरे विभोम-स्वर परिवार की ओर से नासिरा शर्मा जी को बधाई।

मित्रनामा

बेबाक राय

कादंबरी जी का साक्षात्कार 'विभोम-स्वर' पत्रिका के ताज़ा अंक (अक्टूबर - दिसंबर 16) में पढ़ा और बिना किसी लाग लपेट के यह कह सकता हूँ कि पहली बार किसी महिला की सर्वथा बेबाक राय हर विषय पर पढ़ने को मिली। अन्यथा होता यह था कि यह एकांगी हो जाया करती थी। जहाँ एक ओर आपने पित्रसत्ता को लताड़ दी है वहीं स्त्री की स्वतंत्रता की आड़ में स्वच्छंदता के मोह का भी पर्दा फाश किया है। यहाँ मैं उनके इस विचार को रेखांकित करना चाहता हूँ कि ...स्त्री आंदोलन स्वतंत्रता का वायस न होकर स्वच्छाचारिता को जन्म दे रहा है...

मैं आशा करता हूँ की इसे पढ़कर लोग (पुरुष /स्त्री) कुछ संज्ञान लेंगे। आमीन।

-के. पी. सक्सेना 'दूसरे'

***

पूरी टीम को साधुवाद

अक्टूबर -दिसंबर 2016 के 'विभोम-स्वर' का संपादकीय पढ़ा। आप ठीक कहती हैं- भारत पर जब-जब भी आँच आई है, देशवासी एकजुट हुए हैं। पर कई बार सुधा जी वे काफी गहरी नींद में होते हैं और उन्हें जागने में वक्त लगता है और भारत में वक्त की कीमत थोड़ी कम समझी जाती है। हम चाहते हैं, प्रेम का संदेश दुनिया को देने में भारत अग्रणी रहे। कादंबरी मेहरा के साथ आपकी बातचीत सारगर्भित रही। नीरा त्यागी का दर्द समझ में आया। पुष्पा सक्सेना की 'उदास रंग' अच्छी लगी। 'एक और अभिमन्यू' - शशि पाधा, आँखें खोल देने वाला संस्मरण है। 'शंघाई की सड़कें और गलियाँ'- अनीता शर्मा, जानकारियों में इज़ाफा करता है। नरेश शांडिल्य के दोहे दूर तक मार और वार करने वाले हैं। कविताएँ ठीक- ठाक हैं। इस संजीदा प्रयास के लिए मैं आपको और पूरी टीम को साधुवाद देती हूँ।

-जया जादवानी / रायपुर

***

महत्त्वपूर्ण संपादकीय

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'विभोम-स्वर' का अक्टूबर-दिसम्बर 2016 अंक प्राप्त हुआ तो अत्यंत प्रसन्नता हुई !! जिसकी स्तरीयता देखकर मन आह्लादित हो गया, सोचा कि चलो सबसे पहले संपादकीय से ही शुभारम्भ करना चाहिए, क्योंकि यह एक महत्त्वपूर्ण संपादकीय लगा ! विश्व शान्ति के लिए पूरी मानवता को एकजुट होकर प्रयास करना चाहिए और भस्मासुर रूपी आतंकवाद को ख़त्म करने का प्रयास करना चाहिए और इसके लिए कन्धे से कन्धा मिलाकर संसार के सभी बुद्धिजीवियों को एक साथ मिलकर काम करने की ज़रूरत है ! कलाकार और बुद्धिजीवी वर्ग कुछ विशेष नहीं हैं और देश के विकास और सुरक्षा में जिस आम जनता और सेना का सहयोग है, उस जनता और सरहदों पर तैनात सिपाहियों के साथ कलाकार, लेखकों और बुद्धिजीवीयों को भी अपनी अहमन्यता को भुलाकर आगे आने की ज़रूरत है ! कला और कलाकार से ऊपर है देश क्योंकि अगर देश ही असुरक्षित और अस्थिर रहेगा तो फिर कलाओं और कलाकारों का संरक्षण भी असंभव ही हो जाएगा ! हम तो अपने दुश्मन को भी प्रेम करेंगे पर उन्हें भी तो खंजर फेंक कर आना चाहिए !! एकतरफा प्रेम और भाईचारे से कुछ भी हासिल नहीं होगा !!

इसी अंक में नीरा त्यागी की 'क्या आज मैं यहाँ होती....' पढ़ी और तारीफ करने की इच्छा हो गई ! उन्होंने डाइवोर्स के ऊपर बहुत ही अच्छी कहानी लिखी है ! स्त्री कामकाजी हो या घरेलू, घर गृहस्थी की ज़िम्मेदारी उसे अपने लिए और अपनी तरह से जीने के लिए मोहलत नहीं देतीं हैं और जीवन भर स्त्री घुटते-पिसते ही उमर व्यतीत करने को विवश होती है !! अगर कोई स्त्री अपने पति से तंग आकर तलाक देने का फैसला ले तो बाहर वाले ही नहीं घर के लोग भी अनर्गल प्रश्न पूछने लग जाते हैं पर इस कहानी की नायिका शिखा के मम्मी-पापा का सकारात्मक रवैया काफ़ी प्रेरणादायी लगा ! आख़िर औरत को भी तो अपनी स्वतंत्रता और स्वाभिमान को बचाने का अधिकार होना चाहिए !! कहानी का अंत भावुक कर देने वाला है !!

विकेश निझावन की कहानी के शीर्षक (एक लकीर दर्द की) से थोड़ा बहुत अन्दाज़ा लग गया कि यह कहानी भी किसी न किसी दर्द की दास्तान है पर पढ़ने पर इतना ज़्यादा प्रभावित हो जाऊँगा यह अन्दाज़ा नहीं था ! नपुंसकता बोध को उजागर करता दयनीय नायक थोड़ा अनमना कर गया !

साक्षात्कार पढ़कर मुझे बहुत अच्छा लगता है, क्योंकि इसके माध्यम से उक्त रचनाकार की वैचारिक संरचना का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है और उसके कृतित्व के मूल्यांकन में ही सहूलियत नहीं होती है, बल्कि व्यक्तित्व की संवेदनशीलता का भी गहन दर्शन होता है !! प्रवासी साहित्यकार कादंबरी मेहरा के साथ सुधा जी की उत्कृष्ट बातचीत चिरस्मरणीय है !! लेखनी की शक्ति ने स्त्री को आत्मविश्वास और स्वाभिमान प्रदान किया है और हिन्दी स्त्री लेखन का चतुर्दिक विकास हो रहा है ! आज स्त्री की स्थिति मात्र एक गुलाम की नहीं रह गई है और स्त्री अपने लेखन के द्वारा समाज की संरचना में सार्थक और रचनात्मक हस्तक्षेप कर रही है !!

लेकिन इस बात में कोई भी संदेह नहीं कि तमाम तरह के सुधारों के बावजूद भी सामाजिक सुधारों की अभी भी प्रचुर आवश्यकता है; जिससे स्त्रियों को कुंठा से मुक्त किया जा सके !! स्त्री - स्वातंत्र्य और स्वावलंबन तथा स्त्री सुरक्षा को लेकर कादंबरी जी के विचार काफी प्रगतिशील हैं ! जहाँ तक स्त्री - स्वातंत्र्य की बात है तो यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज इस मामले में आज भी एक दकियानूस और कूपमंडूक समाज है जो आज भी स्त्री को उपभोग की वस्तु मात्र समझता है !! पति पत्नी को मित्र नहीं बल्कि गुलाम समझता है और तरह-तरह से प्रताड़ित करता है ! पश्चिमी समाज के पुरुषों से तुलना करते हुए कादंबरी जी ने भारतीय पुरुष की मानसिकता को स्पष्ट किया है जो कड़वा तो है पर सच है !! बाज़ार द्वारा स्त्री के शोषण की अंतहीन पीड़ा पर बहुत महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श

किया गया है इस साक्षात्कार में तथा जीवन पर बाजार के बढ़ते प्रभाव और गिरफ़्त पर भी चिंता व्यक्त की गई है जो कि वाकई बहुत चिन्तनीय है !! आधुनिकीकरण के नाम पर कचरा परोसा जा रहा है और आधुनिक होने की अंधी दौड़ में शामिल होकर हम अपनी भाषा, रहन-सहन और वस्त्र का त्याग कर फूहड़ होने में भी संकोच नहीं कर रहे हैं !! यह बातचीत आँखें खोल देनेवाला है ! आप से निवेदन है कि कादंबरी मेहरा की कहानियाँ भी छापिए !!

-नवनीत कुमार झा
हरिहरपुर, दरभंगा - 847306

***

बेहद ज़रूरी मुद्दों पर उँगली

'विभोम-स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' पत्रिकाओं के ताज़ा अंक प्राप्त हुए। हृदय से आभार। आप दोनों ने देशकाल और साहित्य से जुड़े बेहद ज़रूरी मुद्दों पर उँगली रखी है। लगातार छपने, छपते ही चले जाने की बेपनाह बढ़ती 'ग्रीड' को पंकज ने बड़ी शलीनता और शाइस्तगी से संयत करने की गुजारिश की है.... और आप सुधा, लगातार विदेश में रहते हुए भी स्वदेश की धड़कनों के साथ गहरी आत्मीयता से जुड़ी रहती हैं। बधाई एवं शुभेच्छाओं सहित सूर्यबाला।

-सूर्यबाला
बी. 504, रुनवाल सेंटर
गोवंडी स्टेशन रोड देवनार मुंबई-88
मो. 9930968670

***

ककनागवउआ

'विभोम-स्वर' का अक्टूबर-दिसम्बर 2016 अंक मेरे हाथ मे है। अंक में बहुत कुछ पढ़ा। कहनियाँ, कविताएँ, आलेख सभी कुछ बड़े मनोयोग से पढ़ती हूँ; परन्तु इस बार आपके 'ककनागवउआ' ने प्रभावित करके ही छोड़ा। उ हटा कर उ की मात्रा लगानी पड़ी; क्योंकि इस नए शब्द को मोबाइल वर्ण माला स्वीकार ही नहीं कर रही थी। क्षमा करें। पहले तो आपके इस नए शब्द का अर्थ ही समझ में नहीं आया। इसे समझने के लिए पूरा लेख ही पढ़ना पढ़ा अक्टूबर -दिसंबर 2016। फिर जो हँसी का दौरा पड़ा तो पूछो मत। अक्टूबर -दिसंबर 2016 अंक का यह लेख अपनी कई मित्रों को पढ़वाया। आपकी तारीफ तो करनी ही पड़ेगी इतने अच्छे शब्द के लिए। याद रखने मे दिक्कत आ रही है पर रटकर याद कर लूँगी; क्योंकि ककनागवउआ विशेष अर्थों मे विशेष शब्द है। एक बार फिर बधाई।

-सुधा गोयल, 290 ए , कृष्णा नगर , बुलन्दशहर 203001

***

मज़ेदार, और सत्य

आख़िरी पन्ना 'ककनागवउआ' पढ़ कर लोट-पोट हुए जा रहे हैं। बहुत ही मज़ेदार, और सत्य भी। रचनाकार में प्रकाशित कर रहा हूँ, 'ककनागवउआओं' को थोड़ा पता तो चले...।

-रवि रतलामी, संपादक-रचनाकार

***

'विभोम-स्वर' के अक्टूबर-दिसम्बर अंक के पन्ने पलटते ही मन में बस एक ही भाव उभरा -आतंकवाद के विरोध में कलम को धार बनाना पड़ेगा, शब्दों में उद्बोधन की स्याही घोलनी पड़ेगी और लेखकों को एकजुट होने का मन्त्र पढ़ाना पढ़ेगा। गत वर्ष समाचार पत्रों में और टीवी पर केवल आतंक के राक्षस को संहार का तांडव करते ही देखा, फिर यह चाहे भारत की सीमाएँ थीं या विश्व के अन्य देश की। कितने नरसंहार हुए, कितने बच्चे अनाथ हुए, कितने परिवार टूटे और मन द्रवित होता रहा। सैनिक पत्नी होने के नाते मैं स्वयं इस आग से झुलस चुकी हूँ, कितने प्रियजन खोए हैं, कितने परिवारों को अनाथ होते देखा है, कितनी बार सांत्वना के स्वरों को खोखला होते देखा है, किन्तु हार नहीं मानी; क्योंकि, जानती हूँ कि कलम से लिखे शान्तिघोष में बहुत ताकत है।

इस अंक के सभी स्तम्भ पढ़े। सभी लेखकों को उत्कृष्ट लेखन के लिए बधाई। अंक के संपादकीय में जो आतंकवाद के विरोध में चेतना का स्वर देखा, उसी का उद्घोष पारुल सिंह की कविता 'तारुषी जैन की मम्मी' में और जीवन सिंह ठाकुर जी के लिखे आलेख 'माँ का आशीर्वाद' में सुना। फिर भी हृदय यही कह रहा है कि हमें इन सब से लड़ना है।

इस अंक में मेरे संस्मरण 'एक और अभिमन्यु' को स्थान देने के लिए संपादक मंडल की आभारी हूँ। बस इसी कामना के साथ नए बरस का शुभारम्भ करते हुए यही आशा करूँगी कि इस अधर्म युद्ध का अंत हो। तो आइए ,कलम उठाइए। नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ!!!!

-शशि पाधा, 10804, Sunset Hills Rd, Reston, VA. 20190

***

मुख्य पृष्ठ बेजोड़ है

'विभोम-स्वर' का मुख्य पृष्ठ बेजोड़ है। इंटरव्यू और कहानियाँ प्रभाशाली हैं। चयन की सुघड़ता दिखती है। इंटरव्यू की बेबाकी लेखिका की कुशलता है। इंटरव्यू लेने की कला में सुधा ओम ढींगरा सुघड़ हो गई हैं। सारी साज-सज्जा पत्रिका की साहित्यिकता में बढ़ौतरी करती है।

शिवना साहित्यिकी की अपनी पहचान है। नव वर्ष की सबको ढेरों शुभकामनाएँ

-सुदर्शन प्रियदर्शिनी, 246 Stratford Drive, Broad View Hits, Ohio-44147

***

ग़ज़लें ध्यान खींच गईं

विभोम-स्वर का अक्टूबर-दिसम्बर अंक मिला आभार। सुधा जी के संपादकीय का निष्कर्ष शीर्षक में ही निहित है और इस वाक्य में -विचारधारा, सत्ता शक्ति का युद्ध फिर लड़ लें अभी तो सामने खड़ी आतंकवाद की समस्या से जूझ लें, जिसका अर्थ सिर्फ तबाही है। श्री नरेश शांडिल्य के दोहे अच्छे कसे हुए हैं। श्री ज़हीर क़ुरैशी एवं संजू शब्दिता की ग़ज़लें ध्यान खींच गईं। शब्दिता का स्वर नया है तथापि सधा हुआ है।

-चन्द्रसेन विराट्, इन्दौर, मध्यप्रदेश

***

डॉ. उषा प्रियंवदा
संप्रति : विस्कासिन विश्वविद्यालय, मैडीसन, अमेरिका में दक्षिणेशियाई विभाग में प्रोफ़ेसर।
शिक्षा: पीएॅच.डी।
प्रकाशित कृतियाँ:
पचपन खंभे लाल दीवारें-उपन्यास
रुकोगी नहीं राधिका-उपन्यास
शेष यात्रा-उपन्यास
अंतर्वंशी-उपन्यास
भया कबीर उदास-उपन्यास
नदी-उपन्यास
संपूर्ण कहानियाँ
कितना बड़ा झूठ-कहानी संग्रह
एक कोई दूसरा-कहानी संग्रह
ज़िन्दगी और गुलाब के फूल-कहानी संग्रह
मेरी प्रिय कहानियाँ-कहानी संग्रह
अनुवाद:
हिन्दी कहानियाँ (अंग्रेज़ी)
मीराबाई (अंग्रेज़ी में लिखित)
सूरदास (अंग्रेज़ी में लिखित)
उल्लेखनीय गतिविधियाँ/ उपलब्धियाँ/ प्रतिभागिता:
आपने अनेकानेक सम्मेलनों/कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया है।
मान्यता/ पुरस्कार/ सम्मान:
पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार, राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति द्वारा तथा ढींगरा फ़ाउण्डेशन-हिन्दी चेतना का अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान, अमेरिका द्वारा (समस्त साहित्यिक अवदान हेतु)
संपर्क : unilsson@facstaff.wisc.edu

प्रवास में रहकर दृष्टि प्रखर हुई, पर भारतीयता या संस्कार नहीं छूटे

(उषा प्रियंवदा के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका' युवावस्था में पढ़े थे और 'वापसी' कहानी पाठ्यक्रम में लगी थी। सुषमा पात्र की सृजनकार को मिलना चाहती थी पर अवसर नहीं मिला और मैं अमेरिका आ गई। अमेरिका प्रवास के कई वर्षों बाद पता चला कि वे भी अमेरिका के विस्कॉन्सिन प्रान्त के मेडिसन शहर में रहती हैं और यहाँ वे उषा नेल्सन हैं। मुझे फ़ोन नंबर भी मिल गया। कई बार फ़ोन किया। संदेश छोड़े। उत्तर नहीं आया। सोचा गलत नंबर होगा। जानकारों से पता किया, नंबर सही था। कुछ समय बाद फिर फ़ोन किया तो उषा जी ने उठाया। पता चला वे भारत में थीं। 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका' और 'अंतर्वंशी' पर खूब बात हुई। तब तक मैंने 'अंतर्वंशी' पढ़ लिया था और 'भया कबीर उदास' पढ़ रही थी। उसके बाद संवाद एक तरह से बंद हो गए। मैं गृहस्थी की दौड़ में दौड़ती चक्करघिन्नी सा घूमने लगी। उषा जी भी अपनी प्रतिबद्धताओं में बँध गईं। कभी-कभी ऑन लाइन बात हो जाती।

लेखनी से तो मैं उषा प्रियंवदा को बहुत अच्छी तरह से जानती-पहचानती थी। पर व्यक्तिगत तौर पर उन्हें नहीं मिली थी। जब ढींगरा फ़ाउण्डेशन, अमेरिका ने उषा प्रियंवदा को 2015 का समग्र साहित्य अवदान हेतु, ढींगरा फ़ाउण्डेशन-हिन्दी चेतना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान देने का निर्णय लिया तो मेरा उनसे फिर संवाद शुरु हुआ। उषा जी मेरे पास आईं और रहीं। एक बेहतरीन लेखिका के साथ-साथ उषा जी एक उत्तम महिला भी हैं। 85 वर्ष की उम्र में भी बेहद उत्साहित और ऊर्जा से भरपूर हैं। निष्कपट, सरल और सदा व्यक्तित्व। बच्चों सी निश्छल हँसी हँसने वाली प्रतिष्ठित लेखिका, अत्यधिक विनम्र हैं। साहित्य की दौड़ से परे बस अपना कर्म करने वालीं, महत्त्वकांक्षाओं से समंदर में गोते न लगा कर उषा जी बस अपना लेखन कार्य कर रही हैं। अपनी दुनिया, अपने ख़यालों में मस्त रहने वालीं उषा प्रियंवदा से जो साक्षात्कार हुआ, आप भी पढ़ें -

प्रश्न : *उषा जी, आपके बारे में बहुत कुछ लिखा और कहा गया है। फिर भी आज मैं अपना साक्षात्कार इस प्रश्न से आरंभ करूँगी कि अपने आरंभिक लेखन और प्रेरणा स्रोत के बारे में बताएँ। आप लेखिका कैसे बनीं ?*

उत्तर : सुधा, बड़े होते हुए मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं एक लेखिका या कलाकार बनूँगी। शायद अन्दर कलात्मक अंकुर रहा होगा, जो बारह वर्ष से सत्रह साल तक किसी अतल कोने में दबा रहा होगा और उचित वातावरण, धूप, पानी, हवा पाकर अंकुरित हुआ। मैंने यह समय केवल समाज, राजनीतिक अन्धकार मय समय, वैधव्य का अपमान और

स्त्रियाँ के शोषण देखते, गुनते और आत्मसात् करते हुए बिताया। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान कर्मठ स्वतंत्रता सेनानी, बड़े भाई, शिब्बन लाल सक्सेना अंग्रेज़ों द्वारा जन्म कैद की सज़ा काट रहे थे, मैं और माँ तब पिता के परिवार के साथ रहने आए। हमारा आना किसी को रुचा नहीं; परन्तु पूरा कुनबा का कुनबा दिवंगत पिता के आभार से दबा हुआ था; इसलिए कोई खुलकर विरोध न कर सका, माँ, जो पहले एक ज़मींदार परिवार की बेटी रहीं, बाद में सफल वक़ील की पत्नी और दादा- शिब्बनलाल-द्वारा सदैव आदर का पात्र रही थीं; अब पूरे कुनबे की रसोई बनाती थीं और चुपचाप रोया करती थीं। अपनी भतीजी के विवाह पर जब वह समधी द्वारा तिरस्कृत की गईं तो उनकी वह यातना मेरे अन्दर कटार की तरह चुभ कर रह गई। फ़तेहगढ़ वाले मामा-मामी माँ का आदर करते थे परन्तु वह अपने समधी को कुछ न कह सके। माँ की इस दुर्गति पर मेरे मन में कट्टर पुरुष प्रधान परंपरा पर जो क्रोध जन्मा, उसने ही मेरे जीवन की दिशाएँ निर्धारित कीं। घर के बाहर स्कूल का अलग ही परिवेश था, वहाँ प्रिंसिपल से लेकर साथ पढ़ने वाली लड़कियों से मुझे केवल स्नेह ही मिला। प्रिंसिपल मिसेज बोस भूली नहीं कि घर-घर जाकर उन्होंने छह लड़कियाँ के परिवारों को मनाया फुसलाया था, कि वह बेटियों को हाई स्कूल और फिर इन्टरमीडिमेट तक की पढ़ाई करवाने के लिये भेजें, जिससे बालिका विद्यालय कॉलेज तक बन सके और इसी प्रकार वह बना भी। छह लड़कियों में मेरी बुआ सुशीला भी थीं सुन्दर, मेघावी और प्रखर, उन्हें उच्च शिक्षा के लिये दादा- शिब्बनलाल -ने बढ़ावा दिया, आगे जाकर उन्होंने बालिका विद्यालय का नाम उजागर किया और प्रार्थना हाल में जो बोर्ड टँगा था उसमें उनका नाम अग्रगण्य था।

मिसेज़ बोस को मेरे परिवार की पृष्ठभूमि पता थी। बुआ के बाद मेरी बहनें- कमला और कामिनी ने भी वहीं पढ़ा था। मैं इस शृंखला की अंतिम कड़ी थी। मिसेज़ बोस स्कूल के चक्कर लगाती हुई हमेशा मेरे पास रुक कर मुस्कराती थीं; उनका यह व्यवहार सभी ने गुना था- और घर में, कायस्थ बिरादरी में, माँ की जितनी अवज्ञा थी, स्कूल में मुझे उतना ही सम्मान। तब मैं समझती थी कि यह सब बुआ के कारण है। मैं समझ नहीं पाई कि मुझमें भी कहीं प्रतिभा की एक चिनगारी रही होगी, शायद मेरे निष्कपट स्वभाव, और अनायास क्लास में हमेशा फर्स्ट आने का भी परिणाम रहा होगा। मेरी सहेलियाँ कुछ डॉक्टरों और कुछ पूँजीपति परिवार से थीं। चुनमन रस्तोगी के नाना, नानी, मामा, पिता सभी डॉक्टर थे और मेरे लिये माँ का भी यहीं सपना था।

यहीं वह भाव भूमि थी जिसमें मैंने लिखना प्रारंभ किया। मेरी सारी प्रारंभिक कहानियाँ, 'सरिता' में नियमित रूप से 'उषा' नाम से छपती रहीं; हर कहानी के मुझे बीस रुपये मिलते थे और साठ रुपये इकट्ठे करके जब मैंने माँ के हाथ पर रखे तो उनकी आँखों से एक न जाने कैसा भाव आया जो मैं कभी नहीं भूली सकती हूँ, गर्व और असीस। 'सरिता' में जो आँसू भरी और स्त्रियों की विवशता की कहानियाँ प्रकाशित हुई वह मेरा जिया हुआ यथार्थ था। कई साल के अंतराल के बाद, यूनिवर्सिटी में पढ़ते हुए मैंने उषा के साथ प्रियंवदा जो माँ का नाम था जोड़ लिया। इस नाम से मेरी पहली कहानी 'पूर्ति' नाम से 'कल्पना' में छपी, स्त्रियों की विवशता, घुटन, आँसू हमेशा मेरे पात्रों के साथ जुड़े रहे, उन्हीं ने उन्हें गढ़ा और उनके जीवन में गहरा सामाजिक बोध जाग्रत किया।

प्रश्न : *तो इस तरह आपकी लेखन यात्रा आरंभ हुई...*

उत्तर :उन दिनों मैं केवल पढ़ती थी और सुनती थी। इलाहाबाद के घर का, जहाँ मैं बड़ी बहन के साथ रह कर पढ़ रही थी, वातावरण घोर साहित्यिक था। 'बच्चन' और 'फिराक़' वहाँ प्राय: आते रहते थे, कभी-कभी 'बच्चन' जी के साथ सुमित्रानंदन पंत भी आते थे। मालूम नहीं उन्हें कैसे मालूम हो गया कि मैं भी लिखती हूँ- शायद जिज्जी -कमला-ने कह दिया होगा, उस समय की तीन बातें मेरे मन में 'अमिट' हैं। 'बच्चन' जी का कहना अंग्रेज़ी पढ़ो और पढ़ाओ, मगर लिखो हिन्दी में। 'फ़िराक साहब का कथन' वह प्रेम कहानी असर करती है जो कल्पना द्वारा लिखी जाती है, आशिक़ और माशूक़ दोनों ही कल्पित हो तभी कृति में गहराई आती है। और जिज्जी की इस शिकायत पर कि उषा एकदम फूहड़ है, इसे तो चावल तक बनाना नहीं आता तो पंत जी ने मुस्कराकर कहा 'चावल बनाना तो कोई भी लड़की सीख सकती है पर उषा की तरह कहानी हरेक नहीं लिख सकता- तब मुझे लगा कि सच में पंत जी ने मुझमें कुछ ऐसा देखा जिसका मुझे स्वंय पता नहीं था।

प्रश्न : *उषा जी, मुझे ऐसा महसूस होता है कि आपके भीतर का कलात्मक अंकुर कहानियों में भी विस्तार पाने लगा होगा....*

उत्तर :कहानी लिखना एक अकेलेपन की, अनुभवों की आत्म अभिव्यक्ति थी। उसका कुछ साहित्यिक महत्त्व भी है, इस पर मैंने ध्यान नहीं दिया। जीजाजी, यदुपति सहाय, जो रघुपति सहाय फिराक के छोटे भाई थे, स्वयं एक भाषा विद्वानी और निष्पक्ष आलोचक थे। उनसे मुझे शब्द चयन, शब्दों की कंजूसी और विस्तृत दृष्टि मिली। बीज अब अंकुर से पौधा बनने लगा था- जब मैंने 'पचपन खंभे लाल दीवारें' लिखा तो सुषमा मेरे बचपन के अनुभवों की उपज थी और नील एक दम कल्पना पुरुष। फ़िराक साहब के अनुसार, शायद इसीलिए वह सभी स्त्रियों को इतना भा गया है कि इतने वर्षों बाद भी यह उपन्यास चर्चित है। सुषमा ने परिवार के रूप में 'ग्रेटर गुड' को चुना और अपने व्यक्तिगत प्रेम को नकार दिया; यह नारी विमर्श का पहला चरण है। अपने निश्चय स्वंय लेना, अपनी राह निर्धारित करना, चाहे वह कितनी त्रासद क्यों न हो। एक बड़े सत्य या बड़ी लड़ाई के लिये अपने व्यक्तिगत सुख की आहुति दे देना। यह मैंने बड़े भाई के जीवन में देखा था; जिन्होंने ब्रह्मचारी जीवन और दारिद्रय स्वेच्छा से चुना और जीवनकाल में 17 बार जेल गए और कुछ लोगों की तरह दिल्ली में बड़ी-बड़ी कोठियाँ न बनवा कर महराज गंज के पिछड़े और उपेक्षित क्षेत्र में स्कूल और तीन कॉलेज खोले;जिनमें हज़ारों विद्यार्थी शिक्षा पा रहे

हैं; 'पचपन खंभे लाल दीवारें' का अन्त मेरे लिये सहज और तार्किक था। अपना जीवन निर्धारित करने की मुझे स्वतंत्रता थी। दादा संबंधियो के अनेक लड़के सुझाने पर भी मेरे विवाह पर राज़ी नहीं हुए, परिवार की सभी लड़कियों को पढ़ा लिखा कर आत्मनिर्भर बना कर अपने पैरों पर खड़ा करने की शक्ति दी। शायद यही पृष्ठभूमि थी जिसके कारण सुषमा का नील को जीवन से जाने देने का निश्चय उसके चरित्र से तालमेल खाता था।

प्रश्न :*उषा जी, आप वर्षों से अमेरिका में रह रही हैं। प्रवासवास ने निस्संदेह आपकी सृजनात्मकता को प्रभावित किया है। मैंने आपकी सभी पुस्तकें पढ़ी हैं। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा का निर्णय नारी विमर्श का पहला चरण था, उस समय सभी ने इसे स्वीकारा, विशेषत: स्त्रियों में यह बहुत लोकप्रिय हुआ और अभी भी चर्चित है। पर 'अन्तर्वंशी' में वाना और 'भया कबीर उदास' की लिली सामाजिक और नैतिक मर्यादा तोड़ कर आगे बढ़ती प्रतीत होती है। ये पात्र नारी विमर्श का अगला चरण पार करते प्रतीत होते हैं। क्या कहेंगी आप?*

उत्तर : प्रवास में रहकर मानस विकसित हुआ, दृष्टि प्रखर हुई, पर भारतीयता या संस्कार नहीं छूटे। मेरी किसी भी नारी पात्र को अपने लैंगिक आचरण पर ग्लानि या लज्जा नहीं है। पात्रों की अंतरंगता एकदम स्वाभाविक होती है। 'अर्न्तवंशी' में वाना, जो पति और समाज, कर्त्तव्य के बंधनों में जकड़ी हुई है। अंतत: अपने मन की पुकार, सतत चाहना को देखती, गुनती है और निशाभिसारिका के रूप में राहुल का वरण करती है। इस प्रसंग पर काफी स्त्रियों ने मुझे आपत्ति पत्र भेजे;परन्तु वाना स्वतंत्र है और अपने अंतस की वंशी की पुकार से प्रेरित वह श्रृंगार करती है और राहुल को अंकशानी बनाती है। जिस काज के लिये उसका रोमरोम व्याकुल था। इसी प्रकार 'भया कबीर उदास' की लिली, चमन, सब सामाजिक और नैतिक मर्यादा तोड़ कर शेषेन्द्र के साथ लघु परन्तु गहरा संबंध बनाती है; क्योंकि यह उसका निर्णय है और उसके परिणाम के लिये वह पूर्ण रूप से प्रस्तुत है। मेरे उपन्यासों में यह प्रसंग केवल लैंगिक स्वतंत्रता के लिये ही सेक्स के कारण नहीं है, बल्कि पात्रों और घटनाओं के स्वाभाविक विकास के कारण है। अपनी भावनाओं को खुले रूप से स्वीकार करना, उनका प्रदर्शन करना स्त्रियों की स्वतंत्रता का अभिन्न मार्ग है। जिस कृति या जीवन आलेख से केवल सेक्स के लिये ही सेक्स प्रदर्शित होता है, उसे भी मैं रचनात्मक स्वतंत्रता के तहत स्वीकार करती हूँ।

प्रश्न : *यानी आपको सेक्स के खुले वर्णन में कोई आपत्ति नहीं?*

उत्तर : सुधा, मुझे कुछ हिन्दी आलोचनाकारों की तरह सेक्स क्रिया को खुला वर्णन पर कोई आपत्ति नहीं है; क्योंकि कथाकार जो लिखना चाहती है, उसे पूरी-पूरी कलात्मक स्वतंत्रता है- ऐसी आलोचना में आलोचिका / आलोचक के अपने विचार और संस्कार ही बाधा बनते हैं। वह संकीर्णता की सीमा नहीं लाँघ पाए हैं, यह कमी उनमें है, कथाकार में नहीं। यह बात सच है कि केवल वर्णन के हेतु ही वर्णन में यदि साहित्य और कला की उपस्थिति नहीं है तो वह पानी के बुदबुदे की तरह उठकर क्षण में विलीन हो जाएगा। वह पाठकों पर असर नहीं छोड़ेगा, बस आलोचक उन कृतियों को पकड़े बैठे रहेंगे, और अश्लीलता का नारा लगाते रहेंगे, और स्त्री लेखिकाओं के प्रति अपने पुरुष प्रधान विचारों को अपशब्दों में व्यक्त करते रहेंगे।

प्रश्न : *उषा जी, प्रतीत होता है कि भारत का स्त्रीविमर्श विदेशों के नारीवाद से प्रभावित हो रहा है? क्या राय है आपकी?*

उत्तर :सुधा, मैंने हिन्दी का नारी विमर्श लेखन अधिक नहीं पढ़ा है, चित्रा मुद्गल, सुधा अरोड़ा और मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया'- यह सतत प्रवाह और परिवर्तन हिन्दी की स्वस्थता का प्रदर्शन करता है।

प्रश्न : *आपने अपनी एक बातचीत में कहा था कि आप काफी समय भारत में रहती हैं। अपने बिस्तर पर सो कर आपको बहुत सकून मिलता है। आप भारतीय और पश्चिमी दोनों जगह के स्त्रीविमर्श से परिचित हैं, क्या अंतर महसूस करती हैं।*

उत्तर : भारतीय स्त्री विमर्श का उद्भव ही पश्चिमी नारी विमर्श से हुआ, परन्तु उसकी समस्या, सामाजिक या आर्थिक पश्चिम से भिन्न है। लिहाज़ा भारतीय स्त्री विमर्श का केन्द्र बिंदु वही रहते हुए - स्त्री को हर प्रकार के पुरुष प्रधान समाज के विचार, आचरण और बंधन से मुक्ति, अपने संबंध, अपनी जीवन पद्धति की स्वयं कर्णधार- होते हुए भी उसकी अभिव्यक्ति दूसरी प्रकार से होती है। कुछ प्रमुख लेखिकाओं को अभी भी अपने पूर्वग्रहों और पारंपरिक विचारधारा से मुक्ति नहीं मिली है। दूसरी और कुछ सामाजिक उच्छृंखलता के वर्णन को ही स्त्रीविमर्श मान बैठी हैं। भारतीय समाज में परिवर्तन आने में और उसकी अभिव्यक्ति करने में समय लग रहा है। भौगोलिक दूरी के कारण समसामयिक विमर्श साहित्य कम पढ़ पाई हूँ विशेषकर कहानियाँ। नई लेखिकाओं से अपरिचय भी एक कारण है। चित्रा मुद्गल, सुधा अरोड़ा, अनामिका और मैत्रेयी पुष्पा की पुस्तकों से परिचित हूँ; इसलिए पूरे नारी विमर्श लेखन पर कोई निर्धारित राय देने में असमर्थ हूँ।

प्रश्न : *समकालीन लेखन पर आपके क्या विचार हैं ?*

उत्तर :समकालीन स्त्री लेखन में वैविध्य और निर्भीकता अच्छे लक्षण हैं। तरह-तरह के प्रयोगों से साहित्य जीवंत बना रहता है और उसमें प्रतिरोध नहीं आता। नया साहित्य पढ़ने की उत्सुकता बनी रहती है। हाल में ही पंकज सुबीर का कहानी संग्रह पढ़ा, शैली, कथा वैविध्य और कल्पना संसार का विस्तार प्रभावशाली है।

प्रश्न : *उषा जी, उपन्यास या कहानी लिखते समय आप किस मानसिकता से गुज़रती हैं, पाठकों के साथ-साथ मैं भी जानना चाहती हूँ।*

उत्तर :उपन्यास लिखते समय की मानसिकता के भिन्न-भिन्न चरण होते हैं। लिखने से पहले कथा को मन में लोटते-पोटते रहना, मन ही मन गढ़ते रहना, मिटाते रहना, उसी के बारे में सोचते रहना। दैनिक चर्चा के दौरान भी एक दूसरे संसार में पात्रों के साथ-साथ जीना वही सब चलता रहता है। कभी मुस्करा पड़ती हूँ तो कभी दीवाल

से माथा टकराने का जी करता है। बैठकर लिखने का समय देर से आता है और जब लिखती हूँ तो घन्टों-सूत्र बँधा रहता है। मैं कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में लिख लेती हूँ- अपनी दिनचर्या का निर्वाह करते हुए भी लेखन और विचार मुझ पर हावी रहते हैं। उपन्यास पर मैं कहीं भी किसी भी क़लम से किसी भी पर्चे पर लिखने लगती हूँ। इस आदत के कारण उपन्यास के छिटपुट कागज़ इधर-उधर हो जाते हैं। और छपने के बाद मिलते हैं तो लगता है, अरे यह तो रह गया। अच्छा लिखा है।

'नदी' के प्रकाशन के बाद मध्यमाग के 19 पृष्ठ मिले। पढ़े, लगा कि यदि समाविष्ट हो जाते तो अच्छा रहता, पर अब भी किसी पाठक को उसका अभाव महसूस भी नहीं हुआ होगा। लिखते समय शब्दों के नशे में रहती हूँ, उसके अलावा कुछ नहीं सूझता। जब लिखते-लिखते उँगलिया अकड़ आती हैं तभी रुकती हूँ।

कभी-कभी मुझे लगता है कि 'पचपन खंभे लाल दीवारें' और 'वापसी' के बाद अगर मैं कुछ और न भी लिखती तो भी पाठक कम नहीं होते। हर दो तीन वर्षों में एक नए उपन्यास से मेरी आत्म अभिव्यक्ति होने के साथ मेरा नाम भी पाठक की स्मृति में बना रहता है।

प्रश्न : *उषा जी, आपने कहा कि मैं कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में लिख लेती हूँ। लिखना आपके लिए क्या है?*

उत्तर :लिखना मेरे जीवन की अनिवार्यता है। परिवार का कहना है कि लिखते समय मैं खोई-खोई, दूर अलग-थलग सी रहती हूँ - अधिक बातचीत या Interaction से मेरी विचार श्रृंखला टूट जाती है।

प्रश्न : *क्या आपने कभी महसूस किया है कि विदेश आने के उपरांत आपके लेखन को प्रवासी लेखन के रूप में देखा और आँका जाता है?*

उत्तर :सुधा, सराहने योग्य लेखन सराहा ही जाता है; चाहे वह स्वदेश में रह कर लिखा जाए या बाहर। उसका अपना महत्त्व और मूल्य होता है- अलोचक किस दृष्टि से देखे यह गौण है।

प्रश्न : *उषा जी, विदेश में आने के उपरांत, क्या आलोचकों और सम्मान समितियों या संस्थाओं ने आपके लेखन को उसी तरह सराहा जैसे पहले भारत में सराहते थे?*

उत्तर :आलोचक और सम्मान समितियाँ निरपेक्ष भी होती हैं और 'अंधा बाँटे रेवड़ी' वाली प्रवृत्ति से भी प्रभावित। कृति के मूल्यांकन की जगह, लेखकों को एक पंक्ति में खड़ा करके अब इनकी बारी है या इन्हें ज़रूरत है, की प्रवृत्ति से पहले मुझे रोष और झुँझलाहट होती थी, अब नहीं। मुझे यश या धन की लालसा नहीं है, जो झोली मैं आ गिरे उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती हूँ.....

प्रश्न : *आपकी उपलब्धियाँ क्या हैं?*

उत्तर : मेरा अपना प्रिय उपन्यास 'अंर्त-वंशी' है, अन्तर में बजती हुई बांसुरी जिसके आह्वान पर रीति रिवाज, समाज, संबंधों की सब दीवारें गिर जाती हैं। पहले मैंने उपन्यास का शीर्षक अंर्तकाशी रखा था। एक काशी बाह्यजगत् में है और दूसरी काशी अपनी ही भावनाओं से प्रेरित अपने अन्दर है। यह कबीर ने कहा है परन्तु मेरे स्नातकोत्तर विद्यार्थियों ने एकमत से 'अंर्तवंशी' चुना। इस भाव से तो मैं सूरदास और रवीन्द्रनाथ के द्वारा परिचित थी। पर शब्द मुझे अज्ञेय जी के 'अरे यायावर, रहेगा याद' पढ़ते हुए टकराया। जीवन में बहुत सी उपलब्धियाँ हैं, साहित्यिक की और निजी संसार में भी, यह विस्तृत विषय है इसलिए इस समय इतना ही।

प्रश्न : *उषा जी एक अंतिम प्रश्न- आजकल आप क्या लिख रही हैं?*

उत्तर :मेरे पास इस समय कई विकल्प हैं, सुशीला (बुआ) की आत्मकथा का संपादन, अपने उपन्यास 'अल्पविराम' का अंतिम ड्राफ्ट और मीराबाई के नए अनुवादों का प्रकाशन। पिछले कुछ वर्षो से, 'नदी' उपन्यास के प्रकाशन के बाद कुछ कारणों से व्यस्त रही, साहित्य में लौटने में समय लग रहा है।

आप जल्दी से अपने अधूरे काम पूरे करें। शुभकामनाएँ हैं हमारी.....

****

लघुकथा

रास्ता तो यहीं से जाता है

डॉ. पूरन सिंह

जिस लड़की का बलात्कार हुआ था और बलात्कारियों ने जिस बीभत्सता से उसका बलात्कार किया था, उसे पढ़कर ही रूह कांप जाती है। उस मासूम पर क्या बीती होगी, यह तो वही जाने। पीड़िता जीवन और मृत्यु के बीच झूल रही थी।

चारों ओर धरना प्रदर्शन हो रहे थे। कुछ लोग पीड़िता के किसी तरह से ठीक हो जाने के लिए पूजा अर्चना और वंदना कर रहे थे।

मिताली जी बहुत ही धार्मिक और संवेदनशील महिला हैं। जिस दिन से बलात्कार वाली घटना के बारे में सुना है, वे बेहद परेशान हैं। सभी की तरह, वे भी अपने पूजा घर में आँखें बंद किए रासबिहारी, लीलाधर, भगवान् कृष्ण की पूजा कर रही थीं कि हे भगवान् उस बच्ची को स्वस्थ कर दो और बलात्कारियों को सज़ा दो। रास रचाने वाले भगवान् कृष्ण मंद-मंद मुस्कार रहे थे। तभी... तभी... उनकी पाँच साल की मासूम बच्ची ने आकर उनके सामने से मंद-मंद मुस्करा रहे रासबिहारी, लीलाधर भगवान् कृष्ण की प्रतिमा उठा ली थी और उसके स्थान पर पापविनाशिनी, रणचंडी माँ काली की प्रतिमा रख दी थी।

मिताली जी ने जैसे ही आँखें खोलीं तो माँ काली का रौद्र रूप देखकर डर गई थीं। पापविनाशिनी, रणचंडी माँ काली अब भी अपने रौद्र रूप में थी।

****

संपर्क : 240, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-110008
फोन : 25888754 / 9868846388
ई-मेल : drpuransingh64@gmail.com

पुनर्जन्म

प्रतिभा

मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ .... ये सन्नाटा कभी गहरी धुंध बनकर मुझे घेर लेता है और मैं आँखें फाड़-फाड़कर देखने की कोशिश करने पर भी कुछ देख नहीं पाती हूँ ...कभी कीचड़ की तरह छितर कर मेरे पैरों से लिबड़ जाता है और मेरे लिए एक कदम भी चलना मुश्किल... कभी अँधेरी गुफ़ा बनकर मुझे लीलने के लिए मुँह फाड़े धीरे-धीरे आगे बढ़ता नज़र आने लगता है और मैं घबराकर आँखें बंद कर लेती हूँ ....और कभी ये मुझे उड़ाकर ले जाता है और सृष्टि के अन्तिम छोर पर ले जाकर खड़ा कर देता है जहाँ कोई नहीं होता, न कोई इंसान न कोई जानवर ....।

मैं एकाएक सोचने लगती हूँ ये सन्नाटा भीतर है या बाहर...या दोनों जगह...फिर लगता है नहीं भीतर नहीं है शायद बाहर ही है ....भीतर कैसे हो सकता है ...? भीतर तो शोर है, भीषण शोर ... उस कमरे का गूँजता शोर, जिसमें तुम्हारी लाश पंखे से लटकी मिली...तुम्हारी खुली आँखों से बहती शोर की नदी उसी समय मेरे भीतर प्रवेश कर गई थी ... तुम्हें घर में अकेला पाकर उन्होंने तुम्हें मारकर पंखे से लटका दिया और झूठा प्रचार किया कि तुमने आत्महत्या की है...पर मैं जानती हूँ तुम आत्महत्या नहीं कर सकते .... पंखे से लटके-लटके तुम्हारी लाश ने तुम्हारे शब्दों को एक शोर में तब्दील कर दिया था ... वो शोर उस कमरे से निकलकर पूरे गाँव में फैल गया है .... वो किसानों के जुलूसों में, स्वयंसेवी संस्थाओं के आन्दोलन में, मीडिया की कवरेज में, पत्रकारों की रिपोर्टों में, एक मज़बूत आवाज़ की शक्ल अख्तियार करता जा रहा है।

सब ओर आवाज़ें ही आवाज़ें हैं ... स्थगित कर दिए गए जीवन की आवाज़ ... खण्डित होते विश्वास की आवाज़ ... काँच की किरचों की तरह बिखरे भविष्य की आवाज़ ... आहत होते सत्य की आवाज़ .... स्वाह होते हवन की आवाज़ और ये सारी आवाज़ें अपने आप में सवाल भी हैं और जवाब भी।

मैं बालकनी से कमरे में आ जाती हूँ...पीछे-पीछे तुम भी आ जाते हो...तुम्हारे चेहरे पर अंकित चिन्ता की रेखाएँ तुम्हारे हँसमुख चेहरे से मेल नहीं खा रही थीं, अटपटी सी लग रही थीं, बहुत मुश्किल से तुम कह पा रहे थे, ''किसी गरीब की ज़मीन हड़प कर कोई अमीर क्यों बनना चाहता है, हिम्मत है तो मेहनत करके अमीर बनें, कौन रोकता है ?'' तुम्हारे हर शब्द से प्रवाहित होती तुम्हारी सच्चाई तुम्हारे पूरे व्यक्तित्व को महीन, चमकीले और शक्तिशाली आशीर्वादों से आच्छादित करती जा रही थी।

मैं तुम्हारे चेहरे पर आते जाते आक्रोश के बादलों को तुम्हारी आँखों से दिल तक की यात्रा करते देखती रही और तुम्हारी तकलीफ़ को महसूसती रही।

मैं चाहती थी तुम्हें कहूँ एक ब्रेक ले लो.....चलो, पहाड़ों पर चले चलें, इन सब

प्रतिभा एम. ए., एम. फिल. हैं और तीसरा स्वर, अभयदान आपके कहानी-संग्रह हैं। 'तीसरा-स्वर' कहानी-संग्रह पर हरियाणा साहित्य अकादमी की ओर से प्रथम पुरस्कार। दैनिक ट्रिब्यून चण्डीगढ़ तथा हिन्दी अकादमी दिल्ली से कहानियाँ पुरस्कृत।
सम्पर्क: 205, सरगोधा अपार्टमेंट्स, प्लॉट 13, सेक्टर 7, द्वारका, नई दिल्ली 110075
ईमेल: pratibha.kmr26@gmail.com
दूरभाष: 8750067487

समस्याओं, चिन्ताओं से दूर..... तुम्हें देवदार बहुत पसन्द हैं न, नहीं तो कोणार्क देख आते हैं...उसमें भी तो तुम सब भूल जाते हो। अब लग रहा है तुम्हें ले ही जाती ... कुदरत तुम्हें अपनी बाहों में छिपा लेती और ये दुष्ट तुम्हें ढूँढ़ ही नहीं पाते।

पल भर में तुम आँखें बंद कर लम्बी साँसें भरते दिखे, अपनी श्वास से तनाव को नियंत्रित करते, डीप ब्रीदिंग ऐसे में हमेशा तुम्हारा हथियार रहा है, अपने ही भीतर अपने शक्ति स्त्रोतों के आगे एकाएक उभर आए व्यवधानों के पहाड़ हमेशा से तुम इसी तरह हटाते रहे हो ... और फिर ऊर्जा संचित कर उठ खड़े होते रहे हो। मैं हमेशा की तरह मोहित होकर बस तुम्हें देखती भर रहती हूँ.... लगातार, लगातार, लगातार। लेकिन इस बार तुम्हारी सिटिंग बड़ी लम्बी थी.....शायद तनाव का विस्तार ज़्यादा था या तुम्हें तैयारी ज़्यादा करनी थी।

आँखें खोलने के बाद भी तुम संयत नहीं हो पाए थे, असंयत भाव से ही बोले थे तुम, ''कहते हैं हम जो कर रहे हैं करने दो, गरीबों की भूमि हड़पने दो, कर चोरी करने दो नहीं तो जान से हाथ धो बैठोगे...चाहते हैं मैं पूर्व अधिकारियों की तरह उनकी मदद करूँ वरना हटा दिया जाऊँगा...कितनी बार तबादला करवाएँगे...?''

मैं तुम्हारे चेहरे पर उभरते विरोध की गरम हवा की तपिश को महसूस कर रही थी... डर का एक छोटा सा अंकुर मेरे भीतर फूटा था पर मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा था। मैं हमेशा तुम्हें भ्रष्टाचार के बॉर्डर पर तैनात जवान के रूप में ही देखती आई हूँ। कई बार डरती भी हूँ फिर एकाएक अपने आप को एक सैनिक की पत्नी के रूप में देखकर डर को लपेट कर एक कोने में रख देती हूँ, हमेशा से चाहती रही हूँ अपने भीतर का सारा बल तुम में उड़ेलती रहूँ।

बस एक ही बात परेशान करती है मुझे, बचपन से सत्य की असीम शक्ति के जिस विश्वास का महल मैंने भीतर खड़ा किया था उसे खण्डहर होते देखना अति कष्टदायक है। इस टूटन ने मुझे जैसे ध्वस्त कर दिया है। मैं पूरी तरह से बिखरा हुआ महसूस करती हूँ। ऐसे हर अवसर पर मैं उसी पंखे के नीचे जाकर खड़ी हो जाती हूँ...तुम उस शोर को चीरते हुए निकल आते हो.....अपने सीने पर सिर रखकर मुझे रोने देते हो, तब तक रोने देते हो जब तक ये बिखराब आँखों के रास्ते बह नहीं जाता। तुम सत्य से विश्वास के अमृत का एक प्याला उधार माँगते हो और एक-एक बूँद मेरे भीतर उतार देते हो। मैं जी उठती हूँ। तुम धीरे से मुझे अपने सीने से अलग करते हो और अदृश्य हो जाते हो।

याद है मुझे तुमने प्रशासनिक सेवा 2008 की परीक्षा में पूरे भारत में बारहवाँ स्थान प्राप्त किया था और जब तुम अकादमी में दो साल की ट्रेनिंग पूरी करके आए थे तो तुम्हारी आँखों में एक सपना था और वो सपना हर पल तुम्हारे भीतर एक ऐसे जज़्बे का निर्माण करता था कि तुम सब जीर्ण-शीर्ण ढहा कर नवनिर्माण में जुट जाते थे, तुमने ग़रीब किसानों के हित में अनेक कार्यक्रम किए, उनका उनकी ताकत से परिचय कराया, उनके लिए शक्ति दूत बनकर आए।

बस इसी समय तुम आँख की किरकिरी होने लगे, तुम्हारा तबादला हुआ, तुम रुके नहीं, तुम्हारा फिर तबादला हुआ। यह सिलसिला चलता रहा पर तुम तो एक जवान थे अपनी ड्यूटी पर तैनात, तुम्हें तो रक्षा करनी थी। तुम घुसपैठ कैसे करने दे सकते थे ?

तुमने मंत्री जी की तिजोरी तक पहुँचने वाले रास्ते में अवरोध उत्पन्न किया था। उन्होंने प्यार से तुम्हें समझाने की कोशिश की थी पर तुम तो अपनी ड्यूटी पर तैनात एक जवान थे उनके बताए रास्ते पर नहीं चल सकते थे।

वे बौखला उठे और तुम्हें यूँ पंखे से लटका गए।

मैं आज भी स्तब्ध हूँ, तुम लटकी हुई लाश नहीं थे तुम तो सदा से आवाज़ ही थे, वही रहोगे।

पूरे गाँव के किसान तड़प उठे हैं, असहायता उनके पूरे वजूद पर तारी रहती है, गाँव की हर माँ ने तुम्हारे रूप में अपना पुत्र खोया है और हर युवा खाली कोटरों जैसी आँखें लिए इधर-उधर डोलता नज़र आता है।

अब तो गाँव वालों का जीवन हस्तक्षेप का चरम बनकर रह गया है, हवाएँ भी प्रतिकूल प्रतीत होती हैं ....।

कभी-कभी उस कमरे से शोर की प्रतिध्वनि निकलती है और धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगती है, घर से निकल कर पूरे गाँव में फैल जाती है और फिर खेतों की ओर बढ़ने लगती है। खेतों की बाढ़ों को तोड़ कर पगडंडी पर साधिकार चलती जाती है। उसकी चाल धीमी होने लगती है ... एकाएक वह पगडंडी के दाईं ओर गहरे कुएँ की मुंडेर पर जाकर खड़ी हो जाती है, फिर सरकने लगती है कुएँ के भीतर गहरे पानी में उतरने लगती है, तुम भागते हुए आते दिखाई देते हो, हाँफते-हाँफते ही घड़ी भर मुझे देखते हो और फिर उस कुएँ में उतर जाते हो। उसे गहरे पानी में विलीन नहीं होने देते। क्षण भर बाद ही उस प्रतिध्वनि की सुन्दर चमकीली सीपियाँ हाथ में लिए तुम मेरे सामने प्रकट हो जाते हो। विजयी मुस्कान सब ओर फैल जाती है। तुम मुझे अपनी बाहों में भर लेते हो। फिर चुपचाप बड़े प्यार से एक सीपी मेरी कोख से चिपका देते हो। शेष बची सीपियाँ उस खेत में लहलहाती सरसों की फ़सल पर चिपका देते हो। चहुँ ओर सीपियों की फ़सल चमक उठती है। तुम्हारी आँखों की कोरों में संतुष्टि का सागर लहराने लगता है। तुम प्यार से मेरी गाल थपथपाते हो और चले जाते हो।

एक बात औ, माँ पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो चुकी है। वह एक-एक तवे से उतरी गरम- गरम चपाती लिए घर भर में तुम्हें ढूँढ़ती रहती है, तुम्हें पुकारती है। तुम कहीं नहीं मिलते। फिर विधवा कुम्हारिन के बेटे प्रताप को खिला कर आ जाती हैं।

माँ की रोती आँखों को सारे चैनलों ने खूब दिखाया है। तुम्हारी जघन्य और निर्मम हत्या को आत्महत्या कहकर प्रचारित करने का विरोध किया है, पर अब जाने क्यों एकाएक सबको साँप सूँघने लगा है। मंत्री जी पुलिस द्वारा सारे केस की जाँच करवाना चाहते हैं जबकि हम सी0बी0 आई0 से जाँच चाहते हैं। कोई हमारी मदद नहीं कर

रहा है।

कुछ समय तक सब जोश में थे। अब धीरे-धीरे सबका जोश ठण्डा पड़ने लगा है। पिताजी बस लगातार न्याय के लिए भटकते रहते हैं। इस अन्याय के खिलाफ निरन्तर आवाज़ उठाने के आश्वासन अब झूठे वादे प्रतीत होने लगे हैं। मीडिया और स्वयंसेवी संस्थाएँ अब बचती प्रतीत होती हैं या शायद उनके लिए अब ये पुरानी ख़बर हो गई है।

कहीं ठीक पढ़ा था मैंने कि किसी भी ख़बर की उम्र टी0वी0 और अखबार में ज़्यादा से ज़्यादा एक सप्ताह होती है। पत्रिका में एक माह। फेसबुक पर झलक भर...लेकिन उस परिवार के लिए जन्म भर।

तुम अब भी बालकनी से अन्दर तक मेरे साथ ही आते हो, बार-बार मुझे कहते हो जवान की शहादत शोक का सबब नहीं होती, यही शहादतें दुश्मनों के कफ़न का कपड़ा बुनती हैं... तुम लगातार मेरे पीछे-पीछे चलते हुए बोलते रहते हो पर मैं तुम्हारे इस कथन को आत्मसात् नहीं कर पाती हूँ।

हाँ लेकिन कोई है जो इस कथन को सुनता भी है, गुनता भी है और तुम्हारी इच्छानुसार आत्मसात् भी करता है। वो कोई और नहीं तुम ही हो, तुम्हीं हो, मेरे भीतर छः महीने की नन्ही सी उम्र में तुमने जीवन के सबसे बड़े सत्य को अपनी आत्मा में उतार लिया है...।

मैंने तुम्हारी सुरक्षा की कसम ली है। इस दुनिया में कोई भी तुम तक नहीं पहुँच पाएगा। निश्चित अवधि के बाद तुम मेरे भीतर से बाहर आओगे, फिर से सीमा पर तैनात हो जाओगे। वो लोग आँखें फाड़े देखते रहेंगे। तुम्हारे पुनर्जन्म के रहस्य को नहीं समझ पाएँगे....।

तुम एक देवदूत की शक्ल अख्तियार कर लोगे, तुम्हारी अपार असीम शक्तियों के आगे वे बौने प्रतीत होंगे। वो फिर बौखला उठेंगे पर इस बार तुम सचेत होगे। वो तुम्हें पंखे पर नहीं लटका पाएँगे। तुम फिर से उनकी तिजोरियों के रास्ते में अवरोध उत्पन्न करोगे पर इस बार वे समझ नहीं पाएँगे क्या करें? क्योंकि वो तुम्हें नहीं पहचान पाएँगे.....

****

लघुकथा

खाई की शुरुआत

स्कूल में वार्षिक समारोह में होने वाले नाटक के लिए हो रहे पात्रों के चयन के समय विनीत टीचर से ज़िद करने लगा।

सर मुझे गेटकीपर नहीं बनना, वकील बनना है।

पात्रों का चयन हो चुका है, अभी जो जिसके फ़ादर हैं, उसको वही बनाया गया है; क्योंकि वह अच्छे से उस काम के बारे में जानता है।

लेकिन सर! समीर के पापा तो मंत्री नहीं हैं, फिर उसे मंत्री क्यों बनाया?

उसके डैड उद्योगपति हैं, हर साल सबसे बड़ा डोनेशन देते हैं स्कूल को। तेरे बापू दे पाएँगे?

****

यक़ीन

दीपक मशाल

बस ठीक है यहीं रोक दो।

रिक्शा एक किनारे ले गया। सवारी जल्दी में थी सो जैसे ही रिक्शे से उतरी कि उसकी जींस रिक्शे की सीट के किनारे से उखड़ रही पत्ती से फंस कर चर्र की आवाज़ के साथ फट गई। सवारी के इस नुक्सान ने उसकी जल्दबाज़ी को ब्रेक लगा दिए। चेहरे से सौम्य दिखता वह व्यक्ति अचानक रिक्शेवाले के लिए शनि का अवतार बन गया। पहले तो उसे दो थप्पड़ रसीद किये गए, फिर उसकी माँ-बहन को अपमानित करते हुए मजूरी दिए बिना तमतमाता चेहरा लिए अपने रास्ते बढ़ गया।

उसने अपना गाल सहलाया और फिर चुपचाप रिक्शा लेकर अगले रिक्शा स्टैंड की तरफ बढ़ने लगा। रास्ते में एक अधुआ गुम्मा पड़ा मिला तो उसकी मदद से पत्ती ठोंकने की पूरी कोशिश की, लेकिन ईंट भुरभुरी थी सो पत्ती जस की तस रही। चाहता तो वह भी था कि उस पत्ती के ऊपर रबर या रैग्ज़ीन चढ़ा दे ताकि किसी का नुक्सान ना हो, लेकिन रिक्शे के हर दिन के भाड़े और आटा-दाल की अचानक उफना आई कीमतों ने अभी तक उसे नए हिसाब से चलने का अभ्यस्त नहीं बनाया था।

ज़िला हस्पताल चलोगे?

पीछे से किसी ने उससे पूछा-उसने हाँ में सर हिलाया और सवारी से टूटी पत्ते के दूसरे तरफ से बैठने का इशारा किया। थोड़ी ही देर में रिक्शा ज़िला हस्पताल के सामने था। यह वाली सवारी जल्दी में तो नहीं थी लेकिन उतरते समय यह भी टूटी पत्ती के तरफ से उतरी। जब तक वह पीछे मुड़कर उससे बचने के लिए कहता तब तक इस सवारी की भी पैंट फट चुकी थी। फिर से थप्पड़ों की बरसात के डर से उसकी दोनों कुहनियाँ आप ही उसके चेहरे की ढाल बन गईं, कलाईयाँ कानों पर जा टिकीं।

मगर इस बार पहले सा कुछ ना हुआ, सवारी ने मुस्कुराते हुए उसकी कुहनियाँ उसके चेहरे से अलग कीं, पर्स से निकाल कर उसे किराए का दस रुपया दिया और दस रुपये अतिरिक्त देते हुए उससे बोला-'यह दस रुपये ज़्यादा दे रहा हूँ बाबा, अभी जाकर इस पत्ती पर कोई रबर चढ़वा लेना.. मेरी पैंट तो पुरानी थी मगर किसी और के कपड़े फट गए या खरोंच लग गई तो मुसीबत में पड़ जाओगे।' कहकर वह मुस्कुराते हुए जेब में खोंसा हुआ आला बाहर निकाल हस्पताल के अन्दर की ओर बढ़ गया। पत्ती पर हाथ फेरते हुए बूढ़े का तनिक देर पहले इंसानियत पर से जो यक़ीन हिल गया था वह फिर कायम हो चला था।

****

संपर्क : mashal.com@gmail.com

छोटा-सा शीश महल

अरुणा सब्बरवाल

उत्तरांचल सरकार और चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ से सम्मानित ब्रिटेन में रहने वालीं अरुणा सब्बरवाल के कहा-अनकहा, वे चार पराँठे, उडारी कहानी-संग्रह, साँसों की सरगम, बाँटेंगे चंद्रमा कविता-संग्रह हैं। आपने अनेकानेक सम्मेलनों, कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया है। 2007 से गीतांजली बहुभाषी साहित्यिक समुदाए बर्मिंघम तथा यू.के. हिन्दी समिति लन्दन की सदस्य। विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर कविता पाठ। न्यूयॉर्क, कैनेडा, दिल्ली, देहरादून, अक्षरम् काव्य गोष्ठी में सक्रिय भागीदारी। 2008 में आपकी पहली कहानी 'वे चार पराँठे' 'नया ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुई। उसके पश्चात कई और कहानियाँ आधारशिला, संचेतना, कथाक्रम तथा सरिता में प्रकाशित।

संपर्क: 2, Russettings, Westfield park, Hatch End, Middlesex, HA5 4JF, U.K

ईमेल: sab_arun@hotmail.co.uk

परेशान थी वह। परेशानियों जैसी परेशानी थी। दिल में एक दर्द जमा बैठा था। पिघलता ही नहीं। आकाश से बर्फ गिरती है। दो-तीन दिन में पिघल जाती है। किंतु कैसी पीड़ा है जिसके फ्रीजिंग प्वाइंट का कुछ पता नहीं। कमबख्त दर्द घुलता ही नहीं। पिघलकर बह क्यों नहीं जाता, पानी की तरह? घुल तो रही थी केवल आशा; रवि की पत्नी।

आज रवि के व्यवहार से उसके मन की कुलबुलाहट बढ़ने लगी। उसने रवि की ऐसी बेरुखी पहले कभी नहीं देखी थी। उसे पूरे दो दशक से ऊपर हो चुके हैं। पूछते-पूछते प्यार से....नम्रता से....रोष से, पर रवि सुनी-अनसुनी करते रहे। आशा भुनभुनाती रही।

आज भी यही क्रम दोहराया गया। बात को टालकर उसे दिलासा-सा देकर रवि नहाने चला गया। आशा तिलमिला उठी। नाश्ता करते वक्त फिर वही सवाल दोहराए जो पिछले पच्चीस सालों से दोहराती आ रही है। क्या हुआ अगर पूछ लिया तो? क्यों नहीं पूछेगी? बार-बार पूछूँगी कहाँ है मेरा बेटा लव? क्या किया उसका? बोलते क्यों नहीं?

झल्ला पड़ा था रवि! पल में फूट पड़ी थी ज्वाला। उगल डाला दबा हुआ क्रोध एक ही साँस में और चिल्लाया, ''क्या किया....? क्या मैंने किया....? अरे करने वाला कोई और ही है....! कब तक रोना रोती रहोगी लव का। न जाने कब छुटकारा मिलेगा इन सवालों से....? आगे बढ़ो....आगे!! इस दर्द से!!!''

''दर्द....? हाँ-हाँ, वही। तुम क्या जानो माँ का दर्द? तुम माँ जो नहीं हो उसकी!'' आशा रोष से चीखी।

''हाँ! ठीक कहती हो तुम! मैं माँ नहीं बन सकता पर तुम भी तो बाप नहीं! यह क्यों भूल जाती हो, यह दर्द दोनों का है। भगवान् के वास्ते निकलो बाहर इस दर्द के पुराने खंडहर से!''

रवि बड़बड़ाता रहा। आशा सुबकती रही। रवि फिर बोला, ''समझ नहीं आता क्या करूँ। यही चकिया राग सुन रहा हूँ पच्चीस सालों से। विशेषकर जब कोई उत्सव या खुशी

का मौका होता है तुम पुराने संदर्भ लेकर बैठ जाती हो। उसी खंडहर में गुम, पुराने घाव कुरेदने लगती हो। थक गया हूँ तुम्हारे पैरों के नीचे से काँटे उठाते-उठाते। चार कदम आगे बढ़ती हो तो दस कदम पीछे। यूँ लगता है हम अलग-अलग दुनिया के चौराहे पर खड़े हैं। जाहिर तौर से एक दूसरे के समीप मगर ज़हनी तौर से एक दूसरे से कटे हुए। तुम्हारा रुख एक तरफ, मेरा दूसरी तरफ! ....इन बंजर क्षणों को झेलना भारी लगता है....।

आज की बात ही लो। कितनी आसानी से कह दिया तुमने कि तुम्हारा मूड नहीं जाने का। यह जानते हुए भी कि मिसिज अरोड़ा के साथ हमारे पुराने संबंध हैं जो हम तोड़ नहीं सकते....। आज जो तुम पूरे होशो-हवास में खड़ी हो, सब उन्हीं की बदौलत। शादियाँ कोई रोज़-रोज़ थोड़े ही होती हैं। रिश्तों को बनाकर रखना पड़ता है। उन्हें सींचना पड़ता है....चलो उठो, यह वक्त रोने-धोने का नहीं। इस शादी में हमें ज़रूर जाना है। कुश से भी कह दो फ़ोन करके कि वहीं पहुँच जाए। होटल में रात ठहरने की बुकिंग मैं करा लूँगा नेट पर। न्यूकासल से एडिनबरा-चार घंटे की ड्राइव भी है। तैयारी कर लेना।''

इतना कहकर रवि चला गया।

सामान आदि बाँधते समय आशा थोड़ा आश्वस्त थी। रवि की झिड़की निरर्थक नहीं थीं। उसे याद आया जब वह भारत से नई-नई आई थी। यू.के. में नए लोग, नया वातावरण। ऊपर से डाक्टर के मुँह से अपने माँ बनने की खबर सुनकर उसके मन में खुशी की लहर दौड़ गई। मगर जब पता चला कि उसके जुड़वाँ बच्चे होंगे तो उसका उत्साह ही गुम हो गया। रवि ने आश्वासन दिया कि इस देश में कुछ मुश्किल नहीं, ''चिंता क्यों करती हो। मैं हूँ ना। मिलकर सँभाल लेंगे। यहाँ तो सभी पुरुष अपने परिवार के लालन-पालन व घर के कामों में बराबर का हाथ बँटाते हैं। मेरे दोस्त सुभाष अरोड़ा के भी चार साल के जुड़वाँ लड़के हैं। उनकी पत्नी सिमरन से तुम्हें सब दुविधाओं का समाधान मिल जाएगा।'' और सिमरन ने उसे उत्साहित करते हुए कहा था,

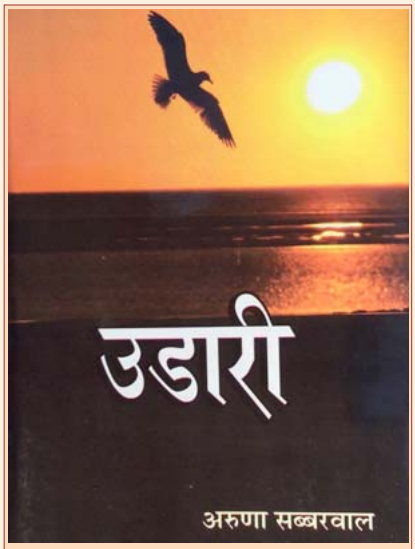

उडारी:कहानी संग्रह
लेखिका: अरुणा सब्बरवाल
मूल्य: 300 रुपये
प्रकाशक: अयान प्रकाशन, वर्ष 2017

''घबराना क्या? जश्न मनाओ जश्न। दो-दो आ रहे हैं। बाई वन, गेट वन फ्री....तुरंत शॉपिंग शुरू कर दो।'' आशा प्रफुल्लित होकर हँस पड़ी थी। बोली, दोनों को चिकित्सा शास्त्र में प्रोफ़ेसर बनाऊँगी। सिमरन उसे पग-पग पर मशविरा देती, लड़कों के नाम, नर्सरी के रंग, अपनी देखभाल आदि-आदि।

आज यही बात टीसती है उसे। 'जुड़वाँ' शब्द का प्रसंग आते ही उसकी छातियाँ अकड़ने लगतीं। उसे लगता जैसे लव दूध के लिए रो रहा है।

अचानक फ़ोन की घंटी उसे अतीत से वर्तमान में ले आई। उसने घड़ी पर नज़र डाली, रवि के घर पहुँचने का समय हो गया था। शर्मिंदगी से अपने सिर पर हाथ मारते बोली, बेवकूफ कहीं की, क्यों बार-बार तुम्हारा दिमाग चौबीस वर्ष पहले उसी दिन पर अटक जाता है। खुद को कोसती हुई अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गई। रवि का दिन भी दफ़्तर में टूटा-टूटा-सा गुज़रा। वह खुद पर खफ़ा था....क्यों उसमें इतना साहस नहीं कि आशा को सच-सच बता दे? अपना आक्रोश उस पर निकाल दिया। क्यों अपने क्रोध पर काबू नहीं रखा? दिन में कई बार मन में आया कि घर फ़ोन करके आशा को प्यार के दो बोल सुना दे-पर हर बार उसका अहं आड़े आ गया। पुरुष जो ठहरा!

अगले दिन शनिवार था। रवि और आशा समय से गुरुद्वारे पहुँच गए। कुश भी वहीं आ गया। थ्री-पीस सूट पहने वह राजा लग रहा था। मिस्टर अरोड़ा, सिमरन और उनके जुड़वाँ बेटे अर्शी और कँवल आनन्द कारज पर बैठे थे। पलभर को आशा को लगा जैसे उसके दोनों बेटे लव-कुश बैठे हों। पर अगले ही क्षण वह सँभल गई। कुश का हाथ उसके कंधों के गिर्द लिपटा था। वह किसी जोक पर हँस रहा था। लावों के बाद बधाइयाँ और आशीर्वाद! उसके बाद लंगर। शाम को दुल्हनों का स्वागत एक नामीगिरामी बैंक्वट हॉल में था। नव विवाहित जोड़ों की मंगलकामना के लिए जाम से जाम टकराए। गाना-बजाना, भाँगडा, शोर। आशा इनमें कुछ देर खोई रही, तभी किसी ने पूछा।

''आशा, कुश की शादी कब कर रही हो?''

''फेलोशिप करना चाहता है, उसके बाद।''

आशा सोचने लगी उसके भी तो दो बेटे थे। समय पर दोनों की बहुएँ साथ-साथ लाती। पोते-पोतियों की चहल-पहल होती। आशा के दिल पर दुखदायी स्मृतियों के हथौड़े पड़ने लगे। उसे उसकी अन्दर की उदासी और बाहर के अँधेरों ने घेर लिया। आँसुओं के घिरते बादलों को उसने बड़ी मुश्किल से रोका। दुख सहने की अनंत शक्ति को वह तभी जान पाई थी। सोचने लगी 'क्या घाव सचमुच भर जाते हैं?' चौबीस वर्ष का अधूरापन दर्द बनकर उभरने लगा। पलकों पे छाए आँसुओं को समेटने वह बाथरूम चली गई।

आशा के मन में क्या चल रहा था रवि भली-भाँति जानता था। उसके बाथरूम से आते ही वह उसे डांस फ्लोर पर खींच लाया। आशा कभी फिरकी की तरह नाचती थी। रवि का अरमान था उसके साथ नाचने का। दो धुनों के बाद आशा थककर बैठ गई। लोगों की बातें, वातावरण का अथाह शोर उसके कानों को बींधने लगा। उसके भीतर की बेचैनी ने उसे उठने पर बाध्य कर दिया। वह दबे स्वर में बोली, ''चलें।''

रवि उसके दर्द से अनजान कब था! उसने प्यार से हाथ बढ़ाते कहा, ''चलो।''

होटल के अपरिचित पलँग पर पड़े, दोनों अपने-अपने दुख समेटे, सोने-जागने की बारीक रेखा को एक दूसरे से छुपाते रहे।

''आशा, क्या सोच रही हो?'' गई रात रवि ने करवट बदलते हुए मुलायम-सी आवाज़ में पूछा।

''कुछ नहीं।''

''कुछ तो ज़रूर चल रहा है तुम्हारे दिमाग में?''

''और आपके?''

''वही जो तुम्हारे दिमाग में....'' रवि ने प्यार से उसे अपनी बाँहों में भर लिया।

स्नेह, सहानुभूति का स्पर्श पाते ही आशा रवि से लिपटकर सिसकने लगी। अतीत की यादें जगर-मगर नाचने लगीं।

कितनी खुश थी उस दिन वह?-दो बेटों की माँ! कैसे उचककर नर्स के पूछने से पहले ही दोनों बच्चों के नाम बता दिए थे उसने-'लव' और 'कुश'। यही तो दो नाम किशोरावस्था से सोचती आई। लव आगे-आगे और दस मिनट बाद कुश पीछे-पीछे। लव शांत, शालीन-कुसका तक नहीं। और कुश-तेज़ चुलबुला-चैन से लेटा तक नहीं। मुँह मचोड़-मचोड़ कर अंगड़ाइयाँ ले रहा था।

लव को प्यार से सहलाते रवि झट से बोला, ''बड़ा बेटा बाप पर गया है।''

''नहीं-नहीं, यह तो अपनी शरीफ माँ पर गया है। कुश है आपके जैसा, शरारती।''

सब हँस पड़े थे।

रात के आठ बज रहे थे। रवि तो घर चले गए थे दिनभर दफ्तर के थके-हारे। आशा ने देखा लव बहुत देर से हिला डुला नहीं था। दूध पीते समय साँस लेने में अजीब-अजीब-सी आवाज़ें कर रहा था। घबराकर उसने नर्स के लिए घंटी बजाई। नर्स ने लव को देखते ही डॉक्टर को ब्लीप किया। मिनटों में वहाँ डाक्टरों-नर्सों की भीड़ लग गई। लव को वह तुरंत आई.सी.यू. में ले गए। आशा अनहोनी आशंका से काँप उठी। आशा जानने के लिए छटपटा रही थी कि बेटे को हुआ क्या है। उसका कलेजा तड़पकर बाहर आ रहा था। बार-बार नर्सों को पूछती। नर्सें टालती रहीं। उसने एक-दो बार उठने की कोशिश की किंतु पोस्टनैटल हेम्रेज के कारण उसे चलना-फिरना मना था। नर्स उसे हल्की-सी नींद की गोली देकर चली गई।

सुबह होते ही रवि को इत्तिला दे दी गई थी। आशा की हालत देखकर उसने भी आशा को कुछ बताना ठीक नहीं समझा। लव को एक हृदयरोग था; जो हज़ारों में एक बच्चे को जन्मजात होता है। उसके हृदय का बायाँ कोष्ठक अविकसित रह गया था और इसका इलाज लगभग नामुमकिन था। रवि ने यह आघात अकेले झेला। डॉक्टर लव के नन्हे से हृदय पर अपनी समस्त योग्यता और खोज खर्च करते रहे।

इधर आशा व्यथित हो उठी। सबकी चुप्पी और टाल-मटोल उसे विह्वल किए डाल रही थी। चौबीस घंटे हो गए थे लव को आई.सी.यू. में गए पर कोई खबर नहीं थी। आशा की बेचैनी बढ़ती गई। माँ जो थी वह। ....खुद को रोक ना पाई। आख़िर आधी रात को नर्सों की आँख बचाकर वह दबे पाँव आई.सी.यू. की ओर बढ़ी मगर कमज़ोरी और घबराहट में चक्कर आ गया। वह अपना संतुलन खोकर वहीं फर्श पर लुढ़क गई। वह कई दिनों तक सेमी कोमा में पड़ी रही थी। यही उसे बताया गया था।

यही सब याद करते-करते कब उसकी आँख लग गई उसे पता नहीं चला। अगले दिन एक कुरमुरी सुबह थी। खिड़की से झाँकते सूरज ने उसे जगाया। कुश भी माँ-बाप के साथ वहीं नाश्ता मँगवाकर आ बैठा। वह देर तक गपशप करते रहे। पश्चात् सुभाष और सिमरन से विदा लेकर वापस अपने घर न्यू कासल के लिए चल पड़े।

तीन वर्ष और गुज़र गए। कुश ने फेलोशिप भी हासिल कर ली। चारों ओर से बधाई संदेशों का अंबार लग गया। दूर-दूर तक दोस्तों को मिठाई बाँटी। कॉलेज के डीन की ओर से बधाईपत्र के साथ ही फेलोशिप की अवॉर्ड सेरेमनी के डिनर व डांस का निमंत्रण था। सुबह शिक्षार्थियों का सम्मानोत्सव, रात को डिनर व डांस, अगले दिन रविवार को कॉलेज की नई प्रयोगशाला का उद्घाटन व प्रदर्शनी। पढ़ते ही दोनों खुशी से उछल पड़े। बेटा उनके स्वप्नों से भी आगे पहुँच गया था। उनके उत्साह की सीमा ना रही।

''आशा, तुम डिनर डांस के लिए अपनी गुलाबी शिफॉन की साड़ी ज़रूर पैक कर लेना। बहुत फबती है तुम पर!'' रवि ने मनुहार से कहा।

''हाँ-हाँ....आप भी अपनी नई डिनर शर्ट, काली ट्रिमिंग वाला टॅक्सीडो और मैचिंग बो टाई पहनना। कुश को अच्छा लगेगा।''

''कुश को?....और तुम्हें नहीं?'' रवि ने चुटकी ली।

वह दिन भी आ गया। उन अनमोल क्षणों को कैद करने के लिए रवि ने नया कैमकॉर्डर खरीदा था। उत्सुकता और उत्साह दोनों के कारण रातभर ठीक से नींद भी नहीं आई। सुबह दफ़्तर जाते वक्त रवि कह गया, 'दो बजे तक तैयार रहना। शुक्रवार है टैफिक ज़्यादा होगा। एडिनबरॉ पहुँचने में चार के पाँच घंटे भी लग सकते हैं। और सुनो....कैमकॉर्डर रखना मत भूलना।'

घड़ी की सुई बढ़ती ही ना थी। उसे अभी घर भी बंद करना था। पैंकिग किसी तरह पूरी की। कैमकॉर्डर रखने लगी तो फिर वही ख़याल उसे अवसाद के गहबर में धकेल गया। रवि ने लव और कुश के कितने फोटो उतारे थे। कहाँ गए सब? कभी दिखाता क्यों नहीं? बस उसकी सारी हँसी आँखों की कोरों में भाप बनकर अटक गई। जब भी पूछती है वही पुरानी कहानी दोहरा देता है उत्तर में।

तुम कोमा में थी। उस रात कितनी बर्फ पड़ी थी! साइबेरिया बन गया था न्यूकासल, इतना हिमपात। चारों ओर बर्फ की मोटी तह और मोटी होती जा रही थी। तीन दिन इंतज़ार किया फिर चर्च की ज़मीन में दफना डाला। जगह याद नहीं।

झूठ! क्या बिना निशान की कब्रें भी होती हैं? उसका तो नाम था। कितने दिन जिया मेरा लाल? कुछ है जो मुझसे छुपाया गया। सिवा रवि के और कौन बताए?

उन दोनों का मौन भी कभी चुप ना रहा। रवि मन ही मन बोलते, ''आशा, भलीभाँति

जानता हूँ तुम्हारे प्रश्नों का उठना....तुम्हारा यूँ बिफर जाना भी सही है....मगर उस पल में जो सबसे ठीक लगा मैंने किया....।''

आशा सोचती, ''तुम नहीं समझोगे....सब कुछ अधूरा-अधूरा अज्ञात के भँवर में फँसा हुआ लगता है। क्यों लव के बिना कुश भी अधूरा लगता है?....बिना पूरा सच जाने मुझे सदा यह क्यों लगता रहा कि मेरा बच्चा अभी है....मुझे आवाज़ दे रहा है....दूध के लिए प्यासा है....।

रवि के घर पहुँचते ही आधे घंटे के अंदर ही दोनों एडिनबरा के लिए निकल पड़े। मोटरवे पर जाते ही उसने कार की गति को तेज़ कर दी। कार नब्बे मील की गति से भागने लगी। बेटे की सफलता के नशे में मस्त न जाने कब एडिनबरा आ गया पता ही नहीं चला।

रवि बोला, ''आशा, माँ-बाप के लिए इससे अधिक गर्व की बात और क्या बात हो सकती है....? सच मानों बच्चों की सफलता ही माँ-बाप की सफलता है। आज मैं....रवि भल्ला अपने को सफल पिता घोषित करता हूँ।'' रवि गर्व से चिल्लाया।

''अकेले ही सारा श्रेय ले लोगे क्या? माँ तो पहली शिक्षक होती है।'' आशा ने खिले गुलाब-सी मुस्कराहट के साथ कहा। उसके मन में अनायास कुश की पहली मुस्कान कौंध गई। वह अतीत से खुशियाँ के मोती उठा-उठा कर माला पिरोने लगी-कुश का पहला दाँत, पहला कदम, पहला शब्द, पहला जन्मदिन, पहला स्कूल का दिन....अंत ही नहीं था। कितने वर्षों से सहेजती आ रही थी इन सुखदायी क्षणों को, पर कभी खुलकर उनका उत्सव नहीं मनाया....आज भी नहीं....।

कार चलाते हुए रवि ने उसकी मुस्कान को तिरोहित होते हुए महसूस किया। उसकी निर्बाध खुशी पर जैसे तुषारापात हो गया हो। एकदम से झल्लाकर बोला, ''कम से कम आज तो विदा कर दो अपनी व्यथा को! क्या मिल गया जो अब मिल जाएगा? जो जीवित है, तुम्हारे सामने खड़ा है, क्या तुम उसके सुख के लिए उमड़ते बादलों को दबाकर मुस्करा नहीं सकतीं....? हर खुशी के अवसर पर नई मुश्किल खड़ी करके उसे किरकिरा कर देती हो।....क्या कुश को खरे सोने के जैसा शुद्ध आशीर्वाद नहीं दे सकतीं? उसने हमें जो दिया उसके बदले यह खोट मिली नकली मुस्कान? माँ हो-अब सिर्फ उसकी माँ!

''क्या करूँ-कोख अपना हक माँगती है।''

''किससे? रोक सकती थी क्या तुम उसे? या मैं रोक लेता? सँभालो अपने आप को। हमारा कुश....तुम्हारा जाया-दो क्या आज दस के बराबर है। अब से हर पल उसकी खुशी के लिए जीना ही तुम्हारा धर्म है। इससे ज़्यादा और क्या महत्त्वपूर्ण है तुम्हारे लिए?''

कुछ पल दोनों में मौन वार्तालाप का सिलसिला जारी रहा। आशा मन ही मन में बड़बड़ाती रही।

''हाँ-हाँ... पूछूँगी... बार-बार पूछूँगी... हर बार वही पुरानी मनगढ़ंत कहानी सुना देते हैं, तुम कोमा में थीं..... चारों ओर बर्फ ही बर्फ जमी थी..... बल्ला....बल्ला इत्यादि।

रवि भी मन ही मन बड़बड़ाते रहे, ''आशा, मैं अच्छी तरह जानता हूँ तुम्हारे प्रश्नों का उठना, बिखर जाना ही सही है।''

''तुम नहीं समझोगे, सबकुछ अधूरा-अधूरा अज्ञात के भँवर में फँसा लगता है।''

''निकलो उस भँवर से, बहुत हो गया।''

रवि ने अपना बायाँ हाथ आशा के हाथ पर रखा। आशा ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर चूम लिया। आज पहली बार आशा को अपनी कमज़ोरी का दु:ख हुआ। 'नहीं....अब नहीं रोऊँगी। जो ज़िंदा है उसके लिए जिऊँगी, खुशी से।'

रवि ने उसकी मूक प्रतिज्ञा को जैसे पढ़ लिया।

दोनों एक-दूसरे की ओर मुस्करा दिए।

कार कॉलेज के अहाते में आकर रुकी। सामने से कुश आता नज़र आया। दोनों ने उसकी पीठ थपथपाई और शाबाशी दी। आते-जाते अनजान लोग उन्हें बधाई कह रहे थे। दूसरी सुबह समारोह निश्चित समय पर शुरू हुआ। अनगिनत श्रोता। पूरी फैकल्टी अपने काले गाउन और हैट लगाए परेड करती हुई जब अपने-अपने स्थान ग्रहण करने लगी तो स्कॉटिश बैग पाइप बैंड ने स्वागत धुन बजाई। आशा को झुरझुरी आ गई। इसके बाद शिक्षार्थियों को उनकी सफलता के प्रमाणपत्र दिए गए। आशा और रवि के हाथ कसकर एक मुट्ठी में बँध गए। खुशी के आँसू बह निकले। सामने कुश को प्रथम श्रेणी का विशेष मैडल भेंट किया गया। विभिन्न जातियों, विभिन्न देशों, विभिन्न भाषा-भाषियों से हॉल खचाखच भरा था परंतु आज इस वेला में वह सब समान रूप से इस वैश्विक परिवार के सदस्य थे। सबका एक रुतबा था, एक जात थी-वह सब सफलता के सर्वोत्तम शिखर पर खड़े चिकित्सकों के अभिभावक थे-गर्व और आत्म सम्मान के अधिकारी!

समारोह के बाद रवि ने कुश से पूछा, ''आगे क्या करने का इरादा है बेटे?''

''पापा, मैं पढ़ाना चाहता हूँ। प्रोफ़ेसर बनना चाहता हूँ। डॉक्टरी और मरीज़ों का इलाज तो साथ-साथ चलता ही रहेगा।''

शाम को डिनर के लिए रवि और आशा अच्छे-से सज-बनकर तैयार हुए।

''वाह, यह हुई ना बात! कभी हमारे लिए भी ऐसे तैयार हो जाया करो....!'' रवि ने आशा को खुश करने के लिए कहा।

''आप भी ना!....'' आशा शरमाकर मुस्करा दी।

डिनर हॉल की सजावट अद्वितीय थी। दोनों आश्चर्यचकित रह गए। इतनी ख़ातिरदारी, इतनी गहमागहमी-पहले कभी नहीं देखी थी। प्रत्येक मेहमान को यह अहसास दिलाया गया कि वही खास मेहमान है। नम्रता व नफ़ासत, दिखावा और शराफत सब भरपूर। क्या शान थी!

दावत के बाद कॉलेज की टीम की ओर से डीन ने सभी अतिथियों को धन्यवाद दिया और नई प्रयोगशाला के उद्घाटन का उद्घोष किया। अगले दिन सुबह दस बजे सबको उद्घाटन समारोह के लिए आमंत्रित किया।

''मेरा आप सबसे अनुरोध है कि आप सब पधारें और देखें कि आपके बच्चों को इस मुकाम तक पहुँचाने में पर्दे के पीछे कितने लोगों का सहयोग रहा है। आपके

यहाँ आने का शुक्रिया। अब आप बाकी शाम का आनंद लीजिए....''

बारह बजते ही तीनों अपने-अपने होटल की ओर चल दिए। रवि की रात धज्जी-धज्जी गुज़री। रातभर उसके मस्तिष्क में वही काली रात घूमती रही।

उसके मन में अलग ही सागर मंथन चलने लगा। हमेशा आशा की भावनाओं को महत्त्वहीन करार देकर क्या वह अपने दिल में बसे चोर को भगा पाया कभी? आशा का मूक आश्वासन उसे अपने अपराधबोध से लड़ने के लिए छोड़ गया। कितना कमज़ोर था वह जो इतने सालों तक उसे सच बताने का साहस न कर पाया! किससे डरता था? आशा से-कि वह सहन नहीं कर पाएगी? या अपनी उस झूठी महानता से जिसकी झोंक में उसने अपने नन्हे से नवजात को मानव-सेवा के लिए अर्पण कर दिया? उफ! क्या गुज़री होगी उस नाज़ुक-से शव पर? किस-किस ने चीर-फाड़ की होगी? क्यों उसने डा. फग्र्युसन का प्रस्ताव ठुकराया। लव को जन्मजात हृदयरोग था जो हज़ारों में एक को होता है। लव चिकित्सा शास्त्र के लिए एक अमूल्य उदाहरण था। उस पर अन्वेषण करके बहुत कुछ सीखा जा सकता था।

उस वक्त आशा अपने कक्ष में थी नीम बेहोश। रवि लव के पास आई.सी.यू. में भागा था। डॉ. फग्र्युसन उस नन्हीं सी जान को ऑक्सीजन चढ़ाते रहे। दो अन्य प्रोफ़ेसर-उनके वरिष्ठ चिकित्सक वहाँ आ गए हालाँकि रात के ग्यारह बज रहे थे। सभी प्रयोग विफल रहे। चारों ओर नलियों में लव की नन्हीं जान अटकी थी। डॉक्टर फग्र्युसन ने उसका कंधा थपथपाया! दुविधा में उनकी आँखों में आँसू थे। क्षोभ के, असफलता के, विवशता के। रवि उनकी छाती से लिपटकर फफक उठा।

''रो मत! ईश्वर ही इस सारे नाटक का रचयिता है मित्र! उसने इस मंच पर आज यह अपनी नई रचना भेजी थी। शायद इसलिए कि हम ऐसी अजीब रचना को समझ सकें और भविष्य में इससे सबक ले सकें।''

''सीख लिया डॉक्टर? क्या सीखा? उसकी माँ को सिखा पाओगे?'' रवि हताश-सा पूछ बैठा।

''नहीं, पर जाने कितने और डॉक्टर उससे अनुभव ले सकेंगे अगर तुम चाहो तो।''

''क्या मतलब?''

''तुम चाहो तो तुम्हारा बच्चा अमर रहेगा। इसे बेजान हीरो बना डालो। इसे चिकित्साशास्त्र को उपहार दे दो। युगों-युगों तक अनेक विद्यार्थी तुम्हारे आभारी रहेंगे और यह मरकर भी ज़िंदा रहेगा। हमारे पास समय बहुत कम है।'' डॉक्टर फग्र्युसन उसके सामने एक फार्म रखकर चला गया, बहुत आत्म-मंथन के पश्चात् उसके मन में उपकार की किरण फूटी। आशा से बात करना चाहता था, पर आशा होश में कहाँ थी जो कुछ पूछता या बताता। यह उसके जीवन की सबसे कठिन परीक्षा थी। उस वक्त उसने कैसे लव की सभी नलियाँ उतारीं....उस फार्म पर हस्ताक्षर कर चुपचाप घर चला गया। यह वह भी नहीं जानता, गुनहगार हूँ आशा का। मैं भी तो उसी आग में जल रहा हूँ। आज तक न ही उस शून्य को भर पाया और न ही उसे प्रकट करने की हिम्मत ही जुटा पाया। कितनी आसानी से आशा उसे हृदयहीन करार देती है। उस दिन कैसे वह अपने हृदय और हाथों में खालीपन का एहसास लिये लौटा था। यही सोचते-सोचते न जाने कब उसकी आँख लग गई।

अगली सुबह कुश जल्दी ही वहाँ आ पहुँचा। तीनों समय से रिबन काटने के समारोह में उपस्थित हुए। इसके बाद एक वरिष्ठ प्रोफ़ेसर उन्हें निर्देश देते हुए अंदर ले गए। चारों ओर शीशे को बड़ी-बड़ी आल्मारियों में हड्डियों के मानव ढाँचे, फोरमेलीन में सुरक्षित मानव शरीर अत्यंत सफाई से दर्शनार्थ सजाए गए थे। प्रोफ़ेसर का धीर गंभीर स्वर ऊँची छत वाले विशाल हॉल में गूँज रहा था।

''यह म्यूज़ियम है मानवता का। इसे मृत्युकक्ष न समझा जाए। यह मानवता के वह पुजारी हैं जिन्होंने सहर्ष अपना शरीर चिकित्सा शोध के लिए दान कर दिया। इन अवयवों को जो छोटी-छोटी शीशमहलों में सुरक्षित हैं। आप एक संपूर्ण नागरिक के रूप में पहचानें जिनके आप ही के जैसे माँ-बाप थे या शायद अभी भी हैं। जो रोते और हँसते थे, नाचते और गाते थे, खाते और पीते थे। अपनी मौत में भी यह अमर हैं और हम इनके तहेदिल से आभारी हैं क्योंकि प्रोफ़ेसर आए और गए मगर यह वर्षों से आपके बच्चों को चिकित्सक बनाने में अपना अमूल्य सहयोग दे रहे हैं। ....कृपया उन्मुक्त मन से इन्हें अपनी श्रद्धांजलि दीजिए।''

तालियों की कर्णभेदी गडग़ड़ाहट रवि को सुनाई नहीं पड़ी। वह अतीत में खोया इन्हीं शब्दों को वर्षों पीछे से सुन रहा था। यह नहीं हो सकता....कहाँ न्यू कासल कहाँ एडिनबरा....पच्चीस साल का अंतराल....प्रो. फग्र्युसन?

सहसा उसकी नज़र एक छोटे से जार पर अटक गई। मुश्किल से दो इंच का एक हृदय उसमें तैर रहा था अपने समस्त स्नायु संस्थान से चिपका। नीचे उसके जन्म की तारीख और बीमारी का नाम लिखा था, बस। यह भी लिखा था कि यह नन्हा बालक जन्म से ऐसा था और कुछ घंटे ही जीवित रह पाया।

यह देखते रवि सुन्न का सुन्न रह गया। उसका कलेजा धक् -धक् करने लगा। वह मन ही मन में गायत्री मंत्र का जाप करने लगा।

रवि ने देखा आशा तेज़ी से आगे बढ़ती जा रही थी। वह अचानक एक शीशी को देखकर ठिठकी....फिर आगे बढ़ गई। रवि की साँस में साँस आई। न जाने क्या सोच आशा पीछे मुड़ी और उसी शीशी के सामने जा खड़ी हुई जिस पर लिखा था 12.2.1989। तारीख देखते ही उसकी आँखें उस पर गड़ी की गड़ी रह गईं....पाँव वहीं जम गए....उसका सिर चकराने लगा....उसे धुँधला-धुँधला-सा दिखाई देने लगा। उसके मस्तिष्क में डॉक्टर के वही शब्द गूँजने लगे अनडेवेलप हार्ट....जो शीशी पर लिखा था। उसने अपनी आँखें मलकर फिर गौर से देखा....उसे कुछ क्षण दृष्टि स्थिर करने में लगे। आगे वह न पढ़ सकी। वह समझ नहीं पा रही थी कि वह थी या नहीं? यह होना न होना क्या होता

है, उसने अपने को च्यूँटी काटी, उसकी ममता कराह रही थी। उसकी छातियाँ अकड़ने लगीं। उसके अतीत की सिसकियों की आवाज़ ऊँची हो गई। वह भूल गई थी कि वह कहाँ खड़ी थी। रो-रो कर वह उस शीशे के खरोंचती....ठोंकती....चूमती.... पुचकारती रही, बड़बड़ाती रही, 'मेरे लाल....मेरे लाल....मेरे जिगर के टुकड़े....तू यहाँ?....क्यों....? तेरी यह हालत....कैसे?' रवि और कुश ने उसे गिरते-गिरते बचा लिया। रवि उसे कमरे से बाहर ले गया। उसे समझाने की कोशिश करता रहा। आशा क्रोध से रवि को कालर से पकड़कर झिंझोड़ती बोलती जा रही थी, ''तुम तो कहते थे लव को वर्तमान से नहीं अतीत से संबोधित किया करो। वह देखो लव तुम्हारे सामने है मेरा बेटा....यहाँ कैसे....?....क्यों....क्या तुम नहीं जानते....मरकर भी आदमी मरता नहीं जब तक उसकी अंतिम चीज़ों को पूरा नहीं कर देते। यह देखो, लटक रहा है हमारा बेटा....न जियों में....न मरों में।'' उसका चेहरा कटुता से तमतमा रहा था।

रवि निःशब्द था। उसके गले में दोष भावना की गुठली ऐंठने लगी। वह नहीं जानता, आशा के बिलखते मन को कैसे शांत करे। रवि ने प्यार से आशा को गले लगाकर सहलाया। उसकी सिसकियाँ शांत होते ही बोला, ''गुनहगार हूँ तुम्हारा, तुम्हीं दोनों बेटों को प्रोफ़ेसर बनाना चाहती थीं। देखो न, लव तो कुश से पहले ही प्रोफ़ेसरों का प्रोफ़ेसर बनकर कितने प्रोफ़ेसर बना चुका है।''

तीनों शांत थे। केवल रवि ही जानता था कि वह भी उसी आग में जलता रहता है। यह उसके जीवन का कठिन और कठोर फैसला था।

लव का कोमल चेहरा अभी तक उसके भीतर चुभन-सी ला देता है। बाप तो वह भी है।

जाते-जाते आशा की नज़रों से आँख चुराकर उसने पीछे मुड़कर लव पर दृष्टि डाली, और बोला, ''आशा, सुना तुमने....उसने तुम्हें पुकारा, 'मम्मी।'

****

लघुकथा

डॉ. पूरन सिंह

बचा लो उसे

पूरे दिन डेलीगेट्स के साथ डील करते-करते थक कर चूर हो गया था मैं। होटल के अपने कमरे में आया तो आते ही मैनेजर को फ़ोन कर दिया, 'माल भेजो।' ठीक बीस मिनट बाद एक बेहद सुन्दर सी लड़की मेरे कमरे में थी। उसने मेरी तरफ देखा और बिना कुछ कहे सुने ही एक-एक कर अपने सारे कपड़े उतार कर बेड पर रख दिए और बेड पर लेट गई थी।

मैं चाहता था कि वह मेरी पत्नी की तरह पहले मुझे प्यार करे बाद में... लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने मैनेजर से तय किए गए नोटों की गड्डी निकाल कर टेबुल पर रख दी और कहा, 'पैसे ले लो, कपड़े पहनो और जाओ।' उसने कपड़े पहने और बिना पैसे लिए ही चल दी तो मैंने उसे रोकते हुए पूछा, 'आपने पैसे नहीं लिए।'

'आपने जो किया ही नहीं उसके पैसे कैसे...।' फिर एक पल रूककर बोली, 'मैं बेईमान नहीं हूँ, लेकिन...।' और फिर चलने लगी थी। 'लेकिन का क्या मतलब।' अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया था।

'मेरे भाई का आज आपरेशन है ...उसका मेरे सिवाय इस दुनिया में कोई नहीं है... उसके लिए पैसे चाहिए थे। आपरेशन न हुआ तो वह...। आपने... ठीक... नहीं... किया।' उसकी पलकें भीग रही थीं। 'आपरेशन कौन से हॉस्पिटल में है। क्या नाम है आपके भाई का।'

'लाइफ़ सेवर हॉस्पिटल में मेरा भइया राकेश...।' उसने कहा और हवा के झोंके की तरह कमरे से बाहर निकल गई थी।

बाद में, वह हॉस्पिटल पहुँची। डॉक्टर के पास गई और पूरी ताकत लगाकर रो पड़ी थी, 'डॉक्टर मैं पैसे का इंतज़ाम नहीं कर पाई... डॉक्टर, मेरा भाई... मेरा भाई।'

'रोते नहीं बेटा... आपके भाई का आपरेशन चल रहा है। पूरा पेमेंट तो आपके मित्र ने कर दिया... भई मान गए... आज के ज़माने में ऐसे लोग भी हैं... आप बहुत खुशनसीब है जो आपको इतना अच्छा मित्र मिला।' डॉक्टर तो न जाने और क्या-क्या कहता रहता कि उसने रोक दिया था, 'कौन है वह।' 'वहाँ ...वहाँ बैठा है वह।' मेरी ओर इशारा करके डॉक्टर चला गया था।

वह भागकर आपरेशन थियेटर के पास बने इंतजार कक्ष में आ गई थी। उसने मुझे देखा और मुझसे लिपट गई थी। उसके होंठ कंपकंपाए थे, 'आपने एक औरत को रंडी बनने से बचा लिया। ...मैं आपका यह... ए ह...सा...न।' मैंने उसके होंठों पर हाथ रख दिया था। अपने-अपने पेशेंट के ठीक होने की आस लगाए बैठे लोग हम दोनों को देखे चले जा रहे थे।

****

अंधा रास्ता

वाहन इतनी तेज़ी से चल रहे थे कि सड़क पार करना बहुत ही कठिन काम लग रहा था फिर ऐसे में कोई अंधा व्यक्ति...। मुझसे नहीं रहा गया सो भागकर उनके पास पहुँच गया था मैं और उनका हाथ पकड़कर बोला था, 'चलिए।'

'अंधा हूँ बेटा, कुछ दिखाई नहीं देता। तुम मिल गए सड़क पार करवा रहे हो भगवान् आपका भला करें...।' फिर कुछ देर रूककर वह अंधा व्यक्ति बोला था, 'क्या नाम है आपका।'

'एम. पी. सिंह जाटव।' अब हम बीचोंबीच सड़क पर थे। उस अंधे व्यक्ति ने मेरा हाथ झटक दिया था और बहुत ही बेरूखी से बोला था, 'मैं रास्ता पार कर लूँगा।' और अपने गले में पड़े भगवान् राम के पैंडल को चूमते हुए '...राम राम ...शिव शिव ...हे राम ...हे राम' जपने लगा था।

मुझसे रहा नहीं गया सो बिलबिलाया था, 'अंधे हैं आप... सड़क पार नहीं कर सकते... रास्ता नहीं दिखाई देता आपको लेकिन.... लेकिन जाति... जाति दिखाई देती है।'

उस अंधे व्यक्ति ने मेरी एक न सुनी थी। वह अब भी सड़क के बीचोंबीच खड़ा 'हे राम ...हे राम' जप रहा था।

****

वसंत लौट रहा है

कविता विकास

धनबाद, झारखण्ड की स्वतंत्र लेखिका कविता विकास के लक्ष्य और कहीं कुछ रिक्त है, दो कविता संग्रह और साझे कविता संग्रह, हृदय तारों का स्पंदन, खामोश, ख़ामोशी और हम, शब्दों की चहलकदमी और सृजक प्रकाशित संग्रह हैं। दैनिक समाचार पत्र-पत्रिकाओं, साहित्यिक पत्रिकाओं व लघु पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ, लेख और विचार प्रकाशित। ई-पत्रिकाओं में नियमित लेखन। विशिष्ट हिन्दी सेवी सम्मान, भारत गौरव सम्मान, रंजन कलश शिव सम्मान, नारायणी साहित्य अकादमी अवार्ड, राजीव गाँधी एक्सीलेंसी एवार्ड, प्रभात खबर प्रतिभा सम्मान, दैनिक जागरण संगिनी सम्मान, राज भाषा सम्मान, तथागत साहित्य सम्मान, सरस्वती सम्मान से सम्मानित कविता जी डी.ए.वी. संस्थान, कोयलानगर, धनबाद में कार्यरत हैं।

संपर्क:डी. - 15, सेक्टर - 9, पी ओ - कोयलानगर, ज़िला-धनबाद, पिन - 826005, झारखण्ड

09431320288

ईमेल kavitavikas28@gmail.com

वह मुझसे आठ साल छोटा था। जब किसी बात पे ज़िद करता तो लगता एक अबोध बालक अपनी माँ से बातें मनवा रहा है और जब किसी बात पे सलाह देता तो लगता एक बुज़ुर्ग बाप अपनी बेटी को समझा रहा है। हम दोनों के बीच एक अद्‌भुत रिश्ता था; जो प्रेम से भी ऊँचा था। बात हम हर रोज़ करते पर एक शहर में होने के बावजूद ज़्यादा मिल नहीं पाने की विवशता थी। नौकरी और परिवार की ज़िम्मेदारियाँ। अपने-अपने परिवार से हम जुड़े हुए थे पर एक भावनात्मक लगाव की जो कमी अपने-अपने जीवन साथी में थी, उसकी पूर्ति हमें एक-दूजे में हो जाती थी।

उससे मिलना भी एक संयोग था। उस दिन हमारे अपार्टमेंट के सामने ठेले पर सब्ज़ी बेचने वाला नहीं आया था। मुझे पता चला कि अब वह अपना ठेला चौराहे के पास की क्रॉसिंग पर लगाता है। मैं हाथ में झोला ले कर पैदल ही चल पड़ी। करीब तीन-चार सालों से उसके पास से सामान वगैरह लेते रहने के कारण वह काफी मुँहलगा हो गया था। बड़े अधिकार से कह देता, थोड़ा रुकिए, पहले अमुक-अमुक को दे कर विदा कर दूँ। उस दिन भी वह एक सज्जन के लिए आलू तौल रहा था। मैंने उससे दो बार आलू के भाव पूछे और फिर भिंडी के। बड़े अनमने भाव से उसने उनके दाम बताए। कुछ और ग्राहकों में वह आदतन व्यस्त हो गया। मैं अपनी बारी का इंतज़ार कर रही थी कि एक आवाज़ सुनाई दी,''कितनी मिठास है आपकी आवाज़ में, एकदम मिश्री घुली हुई सी।''

मैंने चौंक कर देखा, वह मुझसे ही कह रहा था।''ओह. .हाँ,''मैंने बस इतना ही कहा और सब्जी का झोला उठा कर चल पड़ी। शाम के पाँच बजे थे। सौरभ के लिए नाश्ता बनाने का वक़्त था; जब भी वह खेल कर आता, सूजी का हलवा खाना उसे खूब अच्छा लगता। कभी-कभी तो मुझसे लिपट कर कह उठता,''मम्मी यू आर ग्रेट।'' फिर साढ़े छः बजे पतिदेव के आने का समय होता। अब तो सौरभ बारहवीं में चला गया था, अन्यथा छोटी कक्षाओं में उसका होमवर्क भी करवाना मेरा ही काम था। घर- बाहर की ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए पिछले अट्ठारह सालों से मेरा अपना वज़ूद कहीं खो गया था। पाँच साल पहले सासु माता का देहांत हुआ, नहीं तो खिड़की पर मेरा खड़ा होना या देर तक छत पर बाल सुखाने पर भी पाबंदियाँ थीं। मैं मशीन बन गई थी, इसलिए जब रात को सारे काम निबटा कर सोने जाती, तब गज़ब की नींद आती। पर आज तो नींद कोसों दूर थी। एक अजनबी ने मुझे बीते दिनों की याद दिला दी थी।

कॉलेज के दिनों में मैं अपनी मीठी आवाज़ के लिए जानी जाती थी। पापा ने मुझे पढ़ाई के साथ-साथ संगीत की भी तालीम दिलवाई थी। मैं रेडियो स्टेशन में अक्सर गाने जाती और मास्टर्स के पहले वहीं उद्‌घोषिका भी बन गई थी। सौरभ के जन्म के पहले मैं अपने ऑफिसर्स क्लब के फंक्शन में अक्सर गाती। मेरे चलते रोहित अपने बॉस के प्रिय बन गए थे। मुझे आस-पास के बड़े-छोटे सभी कार्यक्रमों में बतौर जज बुलाया जाता। धीरे-धीरे मैं अपने शहर की प्रसिद्ध गायिका बन गई। पर यहीं से मेरे जीवन का संघर्ष शुरू हुआ। सास और बेटे के बीच जाने क्या संवाद हुआ कि रोहित ने एक दिन अप्रत्याशित घोषणा कर डाली,''बहुत हो गया गाना-वाना का चक्कर, तुम्हे कोई फिल्म में नहीं गाना है कि उसके

पीछे अपना घर-बार झोंक दो। माँ की तरह घर के काम सँभालो और तीज-त्यौहार में समय बिताओ।''

मैंने कहा भी,''मैं व्रत-त्यौहार करते हुए संगीत के शौक को बरकरार रखूँगी, इससे कोई खलल नहीं आएगा हमारे गृहस्थी में, प्लीज़ मेरा यह शौक मत छुड़वाओ।'' पर नहीं, उन्हें इस बात का बहुत डर था कि कोई अन्य संगीत प्रेमी मेरे निकट न आ जाए।

पहले मेरा क्लब जाना छुड़वाया गया। फिर संगीत मास्टर को छुड़वा दिया गया और फिर तो बात-बात पर व्यंग्य बाण ऐसे चलने लगे जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी।

''अमुक ने उस दिन तुम्हारी इतनी तारीफ़ क्यों की? और मिस्टर खोसला तुम्हें ध्यान से क्यों देख रहे थे? तुम उन्हें देख मुस्कुराई क्यों ?'' आदि-आदि, फ़िज़ूल की बातें। पिछले अट्ठारह वर्षों का इतिहास मानों आज स्मृति-पटल से हटने का नाम नहीं ले रहा था। रात गहराती जा रही थी। मुझे सुबह जल्दी उठना होता था। मैंने सब विचारों को एक झटके में हटाना चाहा, मुझे उसी नवयुवक की याद आ गई जिसने मेरी आवाज़ की तारीफ़ कर मेरे जेहन में खलबली मचा दी थी। देर से नींद आई,वह भी उधड़ी हुई सी। सुबह आँख खुलते ही रसोई में भागी। दिन चढ़ चुका था। मैं खुद को नियंत्रित करना चाह रही थी। अभी हाल में ही कपड़े तह करते हुए महरी की बातों को याद कर मुस्कुरा पड़ी तो रोहित पीछे ही लग गए। ''किसने क्या कहा, कब कहा, क्यों कहा ?' उफ़,मुस्कुराना भी एक जुर्म है यहाँ। अपने जीवन के सबसे खास पलों में जब वह संतुष्ट व खुश होते तो भावुकता से कहते,'उम्र बढ़ रही है और तुम जवान होती जा रही हो। तुम्हें देख कर कोई पागल ही हो जाए उस पर से ऐसी दिलकश आवाज़। तुम भी तो इन्सान ही हो, देखो कभी कुछ ऐसी-वैसी हरकत कर भी लेना किसी के साथ तो, मुझे मत बतलाना, नहीं तो या मैं खुद मर जाऊँगा या तुम्हें मार डालूँगा।'' यह बात उसने एक बार नहीं अनेक बार दुहराई थी। मैं चुपचाप मुस्कुरा पड़ती। आख़िर दिया ही क्या था तुमने रोहित! बेहद स्वार्थी हो तुम, तुम्हारे स्वार्थ का पता तो मुझे अपनी सुहागरात में ही चल गया था।

मैं एक सच्चे दोस्त की भाँति अपनी सारी खुशियाँ रोहित के साथ बांटना चाहती थी। अपने अरमान पूरा करना चाहती थी। संगीत की दुनिया में नाम कमाना चाहती थी। अपनी वेदना-संवेदना पहली रात में ही न्योछावर कर देना चाहती थी। पर रोहित ने चंद पंक्तियों में मेरी इन सभी आशाओं पर पानी फेर दिया था। ''तुम वही करोगी जो माँ चाहेंगी। चूल्हा-चौकी कल से ही सँभालो। सम्भ्रान्त कुल की बहुएँ कोठे वाली की तरह गा-गा कर औरों को रिझाया नहीं करतीं। एक साल के अंदर माँ पोते का मुँह देखना चाहती हैं। ''

''क्या ? अभी शादी ही हुई है और बच्चे-वच्चे की ज़िम्मेवारी मैं नहीं लूँगी। फिर आपने तो पापा को कहा था मुझे नौकरी भी करने देंगे।''

''क्या बच्चों जैसी बातें कर रही हो ?क्या कहा हुआ बदल नहीं सकता ? ''

''नहीं,आपने पापा के साथ-साथ मुझे भी धोखा दिया।'' मैं पहली ही मुलाक़ात में टूट चुकी थी। जब तक अपने को सँभालती, तब तक वह दूसरी ओर करवट करके वे सो चुके थे।

ख़याल हैं जो हटने का नाम ही नहीं ले रहे थे। बमुश्किल अनमने ढंग से नाश्ता पैक कर रोहित को दिया। उनके जाने के कुछ देर बाद सौरभ भी ट्यूशन के लिए निकल गया। उसके जाने के बाद मैंने नहा-धो कर सुन्दर सी साड़ी पहनी और मेरे पैर अनायास ही दरवाज़े की ओर बढ़ गए। ठेले वाले के पास जैसे ही रुकी, उसने पूछा,''अरे मालकिनी, कल की सब्जियाँ बड़ी जल्द ख़त्म हो गईं। मेहमान आए हुए हैं क्या ?' मैंने उसे आलू तौलने को कहा। सब्ज़ी लेना तो एक बहाना था। मेरी आँखें किसी और को ढूँढ़ रही थीं। बड़ी निराशा हाथ लगी। दस मिनट तक यूँ ही सब्ज़ियाँ उलटने-पलटने के बाद मैं चल पड़ी। मन को समझा रही थी कि कोई भला क्यों मुझसे मिलने आएगा। यह तो इत्तिफ़ाक़ था कि किसी को मेरी आवाज़ भा गई और उसने तारीफ़ कर दी। सड़क पर चलते हुए आते-जाते कितने लोगों के साथ दुआ-सलाम होता रहता है।

अभी दस कदम ही बढ़े होंगे कि एक पहचानी सी आवाज़ आई,''आज फिर आलू ले आईं ?'' पेड़ की छाँह में वही युवक मुस्कुराता हुआ अपनी कार से निकल रहा था। अपनी व्यग्रता छुपाते हुए मैंने पूछा,''आप को पहले नहीं देखा इधर। नए हैं क्या ?''

''जी, भतीजी को यहीं कोचिंग सेंटर में डाला है। उसे इस समय रोज़ छोड़ने आता हूँ। मेरा नाम शब्द है। बैंक में कार्यरत हूँ।''

''मैं मिसेज़ पायल सक्सेना, सेक्टर सिक्स में रहती हूँ। ''

''जी, किसी संगीत स्कूल में टीचर होंगी ज़रूर। ''

''नहीं-नहीं, हाउसवाइफ हूँ, पर संगीत शौक है मेरा।''

मैंने सोचा बात आई- गई हो गई। पर नहीं, उससे और बातें करने की तमन्ना कायम रही। घर पहुँचते ही दिल ज़ोरों से धड़क उठा। रास्ते में कोई पहचान वाले ने देख न लिया हो। अभी तो बेटे को लंच के लिए आने में बहुत देर थी। रोहित लंच लेकर जाते थे। मैंने किताबों की अलमारी से अपनी पुरानी डायरी निकली। क्लासिकल गानों से भरी इस डायरी का पहला गाना, 'काहे न मनवा रैन पाये रे' मेरे प्रिय गानों में से एक था। मैंने इसे गाना आरम्भ किया, पर कुछ ही पंक्तियाँ गाने के बाद मुझे वर्षों से छूटे रियाज़ की कमी दिखाई देने लगी। मैंने डायरी एक ओर रख दी। इन तमाम वर्षों में मैं केवल रोहित की पत्नी और सौरभ की माँ हो कर रह गई थी। मैं जो पायल सक्सेना थी, उसका अपना कोई नामो-निशाँ नहीं था। इतने दिनों में मुझे पता चल गया था कि पति-पत्नी केवल पति-पत्नी होते थे, एक-दूसरे को देह सौंपने वाले रजिस्टर्ड व्यापारी। जब भी वह रोहित से अपने मन की कोई इच्छा ज़ाहिर करना चाहती, उसे चुप करा दिया जाता। वह इंग्लिश में एम.ए. थी और संगीत में ग्रेजुएट। रोहित के मर्ज़ी के खिलाफ वह नहीं जाना चाहती थी, इसलिए रेडियो स्टेशन में कभी कोशिश नहीं की; स्कूल ज्वाइन करना चाहती। रोहित को

उसमें भी ऑब्जेक्शन था।

''बस में कितने लोगों के साथ देह से देह टकरायेगी। किसी भी संस्था में काम करने वाले स्त्री-पुरुष बेतकल्लुफ से बातें करते हैं, हँसी-मज़ाक करते हैं, मुझे नहीं पसंद कि तुम भी करो।'' उसने प्रत्युत्तर में कहा था,''अपनी संस्था में तुम भी तो ऐसा करते होगे, मैंने तो इस बेतकल्लुफी से कभी परहेज़ नहीं किया। रोहित, अपनी सोच ऊँची रखें, शक-शुबहा से दूर ज़िन्दगी को जियो।''

''अपनी औकात में रहो। अकल नहीं किससे बात कर रही हो,'' लगभग चिंघाड़ते हुए रोहित मेरी तरफ लपके थे। अगर पीछे से सास ने हाथ नहीं पकड़ा होता तो शायद एक झन्नाटेदार तमाचा लग गया होता। सास और बेटे की राजनीति खूब पलती। जब तक मेरे पेरेंट्स ज़िंदा थे, उन्हें डर था मैं बगावत कर सकती हूँ। इसलिए मुझ पर सहने भर तक की ही चालाकी से जुल्म ढाये जाते। बीच-बीच में यह जतला दिया जाता कि मेरे भाई-भाभी मुझे थोड़े रखेंगे। माँ-पापा अक्सर बीमार रहते हैं, दोनों ने मेरी शादी करके गंगा नहा लिया है। यही उलाहना मेरी तमाम दलीलों पर भारी पड़ जाता और मैं सोचती, जब तक अपने पैरों पे खड़े होने का साहस न कर लूँ,उनकी हर बात माननी होगी। ख़यालों में काफी समय गुज़र गया। सौरभ के आने से पहले लंच तैयार करना था। मैं किचन के कामों में लग गई। सौरभ इस बार बारहवीं की परीक्षा देगा। ज़्यादातर वह कोचिंग और ट्यूशन में ही रहता। काफी मेहनती था। घर में बाप के दबदबा का असर अक्सर देखता। कभी-कभी तो उसकी फ़िज़ूल की ज़िद नहीं पूरी करती तो पिता के समान धमकी भी देता। पर फिर भी वह मुझे बहुत मानता। एक बार उसके स्कूल में पेरेंट्स नाईट का आयोजन था। उसमें पेरेंट्स के लिए भी एक प्रोग्राम था। लकी ड्रा में जिसके चिट में जो करने कहा गया, सो करना था। मैंने बहुत स्मार्टली अपने चिट के अनुसार गाना गाया। मुझे पुरस्कृत किया गया। उसके दोस्त-यार जब भी इस बात को छेड़ते, वह बहुत प्राउड महसूस करता। कभी कभी तो अपने पिता का मेरे प्रति दुर्व्यवहार देख कर मेरा पक्ष भी लेता। पाँच साल पहले मेरी सास का देहांत हो गया। उनके मरने के बाद रोहित की अनुपस्थिति में मुझ पर नज़र रखने वाला कोई नहीं रह गया। इससे हमारे झगड़े में भले ही कमी आई हो पर रोहित का शक करने की बीमारी और बढ़ गई।

समय से सौरभ घर आ गया। उसके साथ लंच लेते समय मैंने उससे कहा,''बेटा, दिन आजकल गुज़रता नहीं, तुम पापा को कहो न, मेरे लिए एक गाना मास्टर का इंतज़ाम कर दें, या शर्मा आंटी जिनसे सीखती हैं, मैं उनके पास ही एक घंटा चली जाऊँ। घर के काम तो दस बजे तक निबट जाते हैं फिर मैं बोर होती रहती हूँ।'' सौरभ को यह प्रस्ताव अच्छा लगा। उसने अपने पापा को रात के समय यह बात बतलाई। रोहित को पता चल गया कि मैंने ही उससे यह कहलवाया है। उन्होंने सिरे से बात ख़ारिज कर दी। पर सौरभ ने आँख मार कर मुझे तसल्ली दी कि वह उन्हें मनवा लगा।

अब तो शब्द के ख़याल अक्सर आने लगे। सुबह में गज़ब की फुर्ती आ गई थी। फटाफट सारे काम निबटा कर कोचिंग सेंटर की ओर जाने को मन करता। बीच में संडे आ जाने से बड़ी कोफ्त होती। उस दिन भी मैं नियत समय पर सेंटर पहुँच गई। पर पूरी वीरानगी दिखी। साइकिल-बाइक की कतार भी नहीं थी। मैं अंदर घुस गई। चपरासी मुझे देखते ही निकल आया। मैंने पूछा,''आज कोई नहीं दिख रहा।''

मेरे प्रश्न का जवाब देते हुए कहा,''तीन दिनों की छुट्टी है। पर आप सक्सेना आंटी हैं क्या ?''

''जी ''

''अच्छा तो एक साहब ने यह पुर्ज़ा आपको देने कहा था।'' कहते हुए उसने एक कागज़ पकड़ा दिया।

मैंने खोला। वह शब्द का मैसेज था।

''तीन दिन के लिए सेंटर बंद है,भतीजी को लेकर भैया के पास रोहतक जा रहा हूँ। आप इस नंबर पर फ़ोन कर सकती हैं।'' शब्द से ना मिलने की निराशा तो थी पर उसका मोबाइल नंबर मिल जाने की ख़ुशी भी थी। अब रोज़ दिन यहाँ नहीं आना होगा। फ़ोन पर बात कर भी तसल्ली हो जाएगी। वापस लौटते हुए मैंने उसको फ़ोन मिलाया।

''जी, मुझे पता था अब आपका कॉल आएगा। दिल को दिल की राह होती है। मैंने इसीलिए तो अपना नंबर दिया था।''

''जी,'' छूटते ही मैंने पूछा,''कब आएँगे ?''

''कल, लेकिन मिलूँगा परसों; क्योंकि मैं डायरेक्ट बैंक चला जाऊँगा।''

मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि और क्या बात करूँ! उसने परसों शाम को एक दूर के मॉल में बुलाया था। घर पहुँच कर मुझे लग रहा था कि एक अजीब सी बेचैनी हो रही है। मैं अपने-आप से पूछ रही थी! वह मुझे इतना अच्छा क्यों लग रहा है ? क्या मुझे मात्र एक-दो मुलाक़ात में प्यार हो सकता है? या महज़ एक आकर्षण?''

शब्द साधारण कद-काठी का युवक था। यूँ भी रंग-रूप कभी मुझे मोहित नहीं करता। आदमी की विद्वता और व्यवहार की मैं कायल थी। इसलिए रोहित की मुझसे कम हाइट और गंजेपन से कभी कोई काम्प्लेक्स नहीं हुआ। पर उन्हें होता था; इसलिए क्लब के कपल्स गेम में मैं स्टेज पर होती और उनका नाम बार-बार बुलाया जाता लेकिन वो नहीं आते। झुँझला कर मैं उतर जाती। मार्केट जाने या सैर करने समय भी अक्सर वो मुझसे चंद कदम आगे रहते। मेरी सासु माँ चाहती कि पति के ऑफिस वालों के सामने मैं इंग्लिश में बात करूँ और घर में उनके और रोहित के गलत-सही सभी बातों में 'हाँ' से 'हाँ' मिलाती फिरूँ। पहली बार जब मैं गर्भवती हुई थी तो छल से मुझे बहला-फुसला कर मेरा गर्भपात करवा दिया गया था; क्योंकि मेरे गर्भ में लड़की पल रही थी। मैंने बहुत मना किया था रोहित को इस पाप से बचने के लिए ; लेकिन मेरी मिन्नतों का कोई असर न था उनपर। मेरी तबियत उसके बाद से लगातार ख़राब रहती, कमज़ोरी भी बेहद। लेकिन हर रात रोहित दैहिक तुष्टि के लिए आतुर रहते। मैं मना करती तो भी ज़बरदस्ती कर अपनी बात मनवाते। यही वह समय था जब उस अहंकारी व्यक्ति से मेरा मन पूरी तरह

टूट गया। उसी कमज़ोरी में मैंने फिर कंसीव किया। मैंने ठान लिया था कि इस बार अगर फिर लड़की हुई तो मैं भाभी के घर चली जाऊँगी और सदा के लिए रोहित से अलग हो जाऊँगी। पर इस बार लड़का था। रोहित के मन की मुराद पूरी हो गई थी। मुझे अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना था। माँ फ़ोन पर सीख देतीं कि अच्छी बात सोचना, टेंशन में नहीं रहना, इससे बच्चे का अच्छा विकास होता है। मैं खुश रहने का यत्न करती। फिर सौरभ के जन्म के बाद तो उसकी परवरिश और घर-गृहस्थी में ऐसी व्यस्त हुई कि क्रांतिकारी, स्मार्ट और कोकिल-कंठ पायल का अस्तित्व पूरी तरह मिट गया।

मॉल में हम नियत समय पर पहुँच गए। एक रेस्तरां के कोने वाली सीट पर हम आमने सामने बैठ गए। उसने कॉफ़ी का आर्डर किया। आज मैं शब्द के परिवार के बारे में जानना चाहती थी। मैंने पूछा,''आपके परिवार में कौन-कौन हैं?''

''पत्नी और एक तेरह साल का बेटा। मेरी पत्नी और बच्चे में कोई कमी नहीं है पायल जी। शायद मैं ही उनके लायक नहीं हूँ। पत्नी के पिता बड़े पोस्ट पर सरकारी अफसर थे। उसने पैसों के बीच ज़िन्दगी गुज़ारी है। इसलिए आदमी के मनोभाव और उसके ज़ज़्बातों की कोई कीमत नहीं है उसके पास। वह चाहती है मैं दिनोदिन करोड़पति बन जाऊँ।'' एक साँस में शब्द ने कह डाला।

''आपने उन्हें समझाया नहीं कि पैसे से बड़ा शांत और सादगी भरी ज़िन्दगी होती है। ''

''नहीं समझा पाया। पिछले सोलह सालों में उसने मुझे निकम्मा, दरिद्र और ज़ाहिल सिद्ध करने का कोई मौका नहीं छोड़ा। उसके साथ उसके माँ-पापा भी खड़े होते हैं और मैं एक अपराधी की भाँति चुपचाप बॉस की नज़र में ऊँचा उठने की उनकी सलाह पर मौन अभिव्यक्ति देता रहा; पर कभी उन्हें अपना नहीं पाया। आप को उस दिन देखा तो जाने क्यों खींचा चला आया। आपके साथ आज पहली बार इतना लम्बा समय बिताया है,लगता है जैसे वर्षों से हमारी दोस्ती है।''

मैंने आहत भरे स्वर में कहा,'' शब्द जी,मेरी माँ कहा करती थी कि लाखों-करोड़ों में कोई एक ऐसा मिलता है जिसका मानों जन्म-जन्म से इंतज़ार होता है। वह पति या पत्नी के रूप में मिले, कोई ज़रूरी नहीं। मुझे लगता है यह इंतज़ार हमारा अब ख़त्म हो रहा है। मैं अपनी ज़िन्दगी ढो रही थी। अब जीने को मन करता है। आप से मिलकर दिल को सुकून मिलता है।''

अपनी ज़िन्दगी के कुछ वाकया मैंने भी सुनाए। इस बीच कॉफ़ी आ गई और जाने कब शब्द ने अपने हाथों का भार मेरे हाथों में दे दिया,पता ही नहीं चला। बहुत खुशनुमा शाम थी यह। एक-दूसरे से विदा लेने को जी नहीं चाह रहा था।

घर पहुँच कर मैंने अपने लिए चाय बनाई। अपने में एक नई ऊर्जा का संचार महसूस कर रही थी। माँ पुनर्जन्म में विश्वास करती थी। किसी अंजान व्यक्ति से मात्र संयोग मिल जाना, जुड़ जाना और आत्मीय बन जाना किसी पुनर्जन्म के रिश्ते को ही इंगित करता था। हम हर दिन बात करते, कभी मोबाइल पर,कभी वाट्सअप पर। बड़ी एहतियात से बातों को डिलीट भी कर देते। पहले बात-बात पर झुँझलाने वाली मैं अब किसी बहस में शरीक नहीं होती। रोहित की बातों को अनसुना कर मस्त रहने का यत्न करती। रोहित इस परिवर्तन को महसूस कर रहे थे। वह सोचते कि मैं सम्पूर्णत: उनकी गुलाम बन गई हूँ; इसलिए पहले जिन बातों का विरोध करती थी, उन्हें भी अब मान रही हूँ। सच तो यह था, शब्द की अनुपस्थिति में भी लगता कोई रक्षा कवच मुझे सुरक्षा दे रहा है। मेरा आत्मविश्वास बढ़ रहा था। मुझे किसी के दम्भ-उपालम्भ से कोई परेशानी नहीं हो रही थी।

एक दिन ऑफिस से आकर रोहित ने बतलाया कि उसका ट्रांसफर भैरूगढ़ हो गया है। उन्हें दो दिन के अंदर ज्वाइन करना है। पशोपेश की स्थिति में थे वह। सौरभ का बारहवीं बोर्ड था, तो सौरभ के लिए कम से कम चार-महीने तो यहाँ रहना ही है फिर जब तक उसका दाखिला किसी टेक्निकल कॉलेज में नहीं हो जाता, उसे यहाँ रहना होगा। मुझ पर बेतरहा शक करने वाला आदमी रात भर करवटें बदलता रहा। रात में जब भी मेरी नींद खुलती, मैं उन्हें कुछ सोचते हुए पाती। सुबह उठने पर उन्होंने अप्रत्याशित घोषणा की,''तुम मिसेस शर्मा के यहाँ जाकर संगीत की शिक्षा लेना आरम्भ कर लेना, नहीं तो बेवजह खिड़की पे खड़ी होकर इधर-उधर देखती रहोगी।

मेरे तो पंख लग गए जैसे, रोहित की दलील पर मन ही मन हँसी भी आ रही थी। कितना डरे हुए थे रोहित तुम ! संगीत की शिक्षा लेना भी तुमने इसलिए स्वीकार किया ताकि मैं और कहीं नहीं जा पाऊँ। इतनी छिरोरी सोच तुम ही रख सकते थे। ढेर सारी नसीहतें देने के बाद वो दूसरे दिन भैरूगढ़ के लिए रवाना हुए। सौरभ को भी मन लगा कर पढ़ने और हर दिन फ़ोन पर बात करने की हिदायतें दीं।

शब्द से बीच-बीच में बात होती रहती। हम मिलते भी। अकेले में अपना-अपना दु:ख-सुख बतियाते हुए हम करीब भी आ रहे थे। इसका अनुमान मुझे तब लगा जब एक दिन कार में बैठे हुए ही उसने मुझे अपने सीने से सटा लिया। मुझे लगा जैसे मरुस्थल में पानी वाले बादल छाने लगे हैं। मैंने बमुश्किल उससे स्वयं को अलग किया। गज़ब का संयम था उसमें। ऐसे ही एक अन्य मौके पर मैंने उससे पूछा था,''क्या हम अपने परिवार वालों का विश्वास नहीं तोड़ रहे ?''

कुछ सोचते हुए उसने कहा,''नहीं, हम दोस्त हैं। अपने-अपने परिवार के प्रति हर ज़िम्मेवारी को निभा रहे हैं। भौतिक सुख-सुविधा तो हमने खूब भोगा, पर मानसिक स्तर पर, अपने ज़ज़्बातों को समझने वाला अब जा कर कोई मिला है। तुमने भी पति की हर ज़रूरत पूरी की और मैंने भी अपनी पत्नी की हर ज़रूरत पूरी की; लेकिन हमारी ज़रूरतें हम ही पूरा कर रहे हैं, न तुम्हें तुम्हारे पति ने समझा और न मुझे मेरी पत्नी ने।''

सौरभ का बोर्ड आरम्भ होने वाला था। वह सेल्फ स्टडी कर रहा था। ज़्यादातर घर में ही रहता। मेरा भी बाहर जाना छूट गया था। शब्द की भतीजी भी बारहवीं की परीक्षा दे रही थी। रोहित को भैरूगढ़ गए दो-तीन महीने गुज़र गए थे। वह पंद्रह-बीस दिनों में

एक बार आ जाते। उस समय मेरा ध्यान केवल उन पर रहता। उनके पसंद का खाना बनता और खूब ख़ातिरदारी करती। फिर भी वह जतला देते कि उनके सामने मेरी इच्छा-अनिच्छा का कोई मोल नहीं। सौरभ की परीक्षा के समय उन्होंने लगातार बीस दिनों की छुट्टी ले ली। सौरभ को सेंटर पर ले जाना और ले आना वही करते। देखते-देखते महीना बीत गया। सौरभ की परीक्षा ख़त्म होने के बाद वह वापस लौट गए। अब सौरभ का सारा ध्यान प्रतियोगी परीक्षाओं पर था। इस बीच मैंने शब्द से मुलाक़ात की। एक-डेढ़ महीने से हमारे बीच ठीक से बातें नहीं हुईं थीं, सो काफी देर तक हम ने साथ वक़्त बिताया। समय किसी के रोके भला रुका है ! कभी-कभी स्वार्थी बन जाती। सोचती जब तक सौरभ है, बिना किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती के यहाँ हूँ। एक बार उसके बाहर जाने पर क्या पता रोहित अपने साथ ले जाने की ज़िद करें। एक-दो महीने की सौरभ की व्यस्तता के बाद आख़िर उसे भी सुकून मिल गया। बैंगलोर के एक नामी कॉलेज में उसे दाखिला मिल गया। बैंगलोर जाने के पहले मैंने रोहित को कहा,''चलिए एक बार भैरूगढ़ चलते हैं। सौरभ को भी चेंज हो जायेगा '' रोहित ने बड़े अनमने ढंग से कहा, ''मैं ट्रांजिट कैंप में रहता हूँ। एक कमरे में दो लोग। तुम लोग कैसे रहोगे ?'' यह बात मैं जानती थी पर इसी बहाने मैं टोहना चाह रही थी कि सौरभ के बैंगलोर जाने के बाद वह मेरे बारे में क्या सोचते हैं ? उन्होंने दो टूक शब्द में कह दिया कि वहाँ क्वार्टर उन्हें नहीं लेना है। तीन साल यूँ ही आते-जाते कट जाएँगे, फिर यहीं ट्रांसफर की कोशिश करेंगे।

सौरभ को बैंगलोर पहुँचाने हम दोनों गए थे। रास्ते भर रोहित ने उसे खूब नसीहत दी मसलन पैसे नहीं खर्च करना। पढ़ाई में मन लगाना। बाहर का नहीं खाना आदि-आदि। मैं भी उनकी बातों का समर्थन करती।

उसे छोड़कर वापस दिल्ली आने पर रोहित एक दिन यहीं रहे। इस बार बड़े चुप-चुप से थे। लगता था कि मुझे लेकर थोड़ा चिंतित हैं। मैंने उनके जाने के पहले खाना पैक करते हुए पूछा,''कब आएँगे अब ?''

''क्यों ? जब मन करेगा आऊँगा। तुम घर की साज-सफाई में ध्यान देना और ज़्यादा बाहर-वाहर नहीं निकलना।'' मन तो किया कह दूँ कि इस नसीहत के पीछे क्या कहना चाह रहे हैं, बखूबी जानती हूँ पर सिरफिरे आदमी का क्या ठिकाना क्या कर बैठें,सो चुप लगा गई। उनके जाने के बाद जैसे कोई काम ही नहीं था। अकेला घर और सन्नाटा। मैंने जम कर रियाज़ किया। फ़ोन पर शब्द को अपना गाना भी सुनाया। वह फ़ोन पे ही अपनी पसंद के गाने की फरमाइश करता। कभी तारीफ़ करता। कभी गलतियाँ बतलाता। कई बार तो मैं ज़बरदस्ती अपनी तारीफ़ करवा लेती ...बोलो न मैंने अच्छा गाया, बोलो न मैं कैसी लग रही हूँ ..आदि-आदि। उसे किसी पार्टी-समारोह में जाना होता तो मुझसे पूछता कि किस रंग का शर्ट पहने, कौन सा परफ्यूम लगाए आदि-आदि। पसंद-नापसंद की बातों से होते हुए हम कब इतने करीब आ गए कि पता ही नहीं चला। अब तो कभी-कभी बिस्तर पर पड़े -पड़े रोमांटिक बातें भी होने लगीं थीं; जब उसकी पत्नी घर पर नहीं होती। हालाँकि आमने-सामने पड़ने पर हम एक-दूजे का खूब आदर करते। मेरे संगीत के गुरुजी आस - पास के समारोहों पर मुझे गाने की ब्रेक देना चाहते थे। मैंने रोहित से इसकी अनुमति लेनी चाही। पर उसने डाँटते हुए इसे नकार दिया। मुझे यह ज़रा भी नहीं भाया। यह पहला मौका था जब मैंने उसकी आज्ञा के विरुद्ध एक समारोह में गाना गाया। मुझे बहुत प्रशंसा मिली, पर मैंने इसकी खबर रोहित को नहीं दी। मेरे गुरु की अपनी संस्था थी, जहाँ पर शहर में त्यौहार या विशेष अवसरों पर कार्यक्रम होते। मैंने उनके साथ हर कार्यक्रम में भाग लेने की ठान ली। इससे मेरा अकेलापन भी चला जाता और मेरा अपना टैलेंट भी निखरता। इस बार एक महीने के पश्चात रोहित आ रहे थे। कार्यक्रम के फोटोज़ तो मैंने छिपा दिए लेकिन कुछ ट्रॉफी-मैडल आदि नहीं छिपाए। मैं आने वाले तूफ़ान का सामना करने को तैयार थी। बहुत सहा था मैंने, अब और नहीं।

मेरा अंदेशा सही थी। सुबह दस बजे रोहित आ गए। फ्रेश होने के बाद उनकी निगाह नाश्ते के टेबल पर पड़ी एक फ्रूट-बास्केट पर पड़ी जो मुझे गिफ्ट में मिला था। इधर-उधर के हाल-समाचार लेने के बाद उन्होंने ड्राइंग रूम में रखी एक ट्रॉफी के बारे में पूछा। मैंने कहा, ''समूह गान प्रतियोगिता में गुरुजी की टीम प्रथम आई थी, जिसमे सभी प्रतिभागियों को यह दिया गया था। ''

''तुमने मुझसे तो इसमें जाने का परमिशन नहीं लिया था?''

''नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं समझी मैंने।'' इस उत्तर की आशा नहीं थी उन्हें। सो दो टूक फैसला सुना दिया,''अब नहीं सीखना है गाना-वाना। देह में पर निकल आए हैं।''

''मैं तो सीखूँगी,आप रोक नहीं सकते।''

''... क्या ? ज़ुबान चलने लगी है ... वेश्या हो क्या..गाना गाओगी, फिर दस लोग पैसे उछालेंगे तुम पर। यही तो तुम जैसी औरतों का शौक है,'' कहते हुए उन्होंने थप्पड़ लगाना चाहा। उनके हाथ को पकड़ कर मैंने एक झटके से पीछे ठेलते हुए कहा,''आप चाहें तो मुझे छोड़ दें, सौरभ का पालन-पोषण मैं कर लूँगी, लेकिन ऐसे व्यक्ति के साथ हरगिज़ नहीं रहूँगी; जिसके लिए मैं मात्र एक वस्तु हूँ। इतनी गन्दी सोच रखने वाले से क्या उम्मीद रखी जा सकती है ''

मेरे बदले हुए इस रूप पर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। काफी देर तक बहस छिड़ी रही। अब मैं सती- सावित्री बन कर सब कुछ सहने वाली नहीं थी। पर घर में हो-हल्ला मचा रहता। इसलिए चुपचाप खाना बना कर अपनी एक सहेली के यहाँ निकल गई। वहीं से मैंने शब्द को फ़ोन मिलाया। वह ऑफिस में था। मेरी पूरी बात सुनकर उसने कहा,''वापस जाओगी तो फिर किसी तरह का हमला तो वह नहीं करेंगे न ? अगर कोई डर हो तो कहना मैं रात कहीं और ठहरने का इंतज़ाम कर दूँगा।''

मैंने कहा,''नहीं शब्द, मैं उनके पास रह

कर ही सिद्ध करूँगी कि मैं अपने लिए जो कर रही हूँ, उसे करने का पूरा हक़ है मुझे।''

''फिर भी, जब भी मेरी ज़रूरत पड़े,बतलाना।'' यही दिलासा तो जीवन के हर उस मोड़ पर मुझे चाहिए था जब मेरे स्वाभिमान के साथ-साथ मेरी आत्मा को कुचलने में मेरी सास और पति ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। उनके हर गलत फैसले को भी मैं सह जाती अगर एक बार भी रोहित ने मुझे अपनी बाँहों में भर कर प्यार व ढाँढ़स दिया होता। नौकरी छुड़वाने से लेकर गर्भपात करवाने तक तथा उसके शौक की बलि दिलवा कर गृहस्थी की आग में झोंककर सासु माँ जब भी विजयी मुद्रा में मुस्कुराती, वह अंदर ही अंदर तिलमिला जाती। उसके बचपन की दोस्त टीना गाने के एक टी. वी. शो में जज बन कर आती थी। वह जब भी उसे देखती, मन मसोस कर रह जाती।

उस रात रोहित नहीं गए। यूँ भी वह अपने लौटने की तिथि कभी नहीं बतलाते। हमने अलग-अलग कमरे में रात बिताई। सुबह उठने पर सर भारी-भारी सा रहा। बदन भी गर्म था तथा देह में दर्द था। मैंने आए दिन की तरह रसोई में जाकर चाय बनाई और उसके कमरे में पहुँचा दी। मुझे पता था रोहित अपनी ओर से कभी बोलने की पहल नहीं करेंगे, पर मैं भी नहीं बोलने जाऊँगी। नाश्ते में पोहा बनाकर मैंने टेबल पर ढँक कर रख दिया और स्वयं जा कर लेट गई। नाश्ते के बाद उन्होंने डाइनिंग रूम से ही आवाज़ लगा,''मैं आज शाम की बस से जा रहा हूँ, मेरे कपड़े प्रेस कर दो।''

मैंने रूखे स्वर में जवाब दिया,''मेरे सिर में बहुत दर्द है। मैंने गोली भी ली पर कोई फायदा नहीं हुआ। आप अपने से कर लीजिए।''

''क्या ? मैं खुद से कर लूँ और तुम सोई रहोगी ?क्या पता सचमुच दर्द हो भी रहा है या बहाना कर रही हो ?''आहत मन से मैं चोट खाई शेरनी की तरह गुर्राई,''शर्म नहीं आती तुम्हें, बीस साल से तुमने पहचाना नहीं मुझे क्या! अपनी हर बात मनवाते रहे, और आज मेरी तकलीफ़ पर बहाना बनाने की बात कर रहे हो ?'' कहते हुए मैं उसके कन्धों को झिंझोड़ने लगी। रोहित को इस उत्तर की आशा नहीं थी, उसने आव देखा न ताव और दो थप्पड़ रसीद दिए। भद्दी सी गालियाँ देते हुए चिल्लाने लगे,''अकेले रहते हुए मनमानी करने की आदत हो गई है। आज तुम भी मेरे साथ भैरूगढ़ चलोगी।''

''नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। ज़रूरत पड़ेगी तो कोर्ट तक तुम्हें ले जाऊँगी। जिसने आज तक मेरी कद्र नहीं की। उसके साथ तो अब बाकी ज़िन्दगी साथ रहने का सवाल नहीं उठता है।

''अब तक सुस्त पड़ी जान में अचानक से जोश आ गया। पल भर के लिए मैं सर दर्द और कमज़ोरी सब भूल गई। वह बड़बड़ाते हुए सोफे पर बैठ गए। मैंने बाथरूम में अपने आप को बंद कर लिया और देर तक खुली नल के नीचे बैठी रही। आँखों से पानी निकलता रहा जब तक की थक कर चूर न हो गई। शाम के तीन बज रहे थे। रोहित की बस पाँच बजे जानी थी। उनके जाने के समय मैं घर में नहीं रहना चाहती थी। पर्स में कुछ पैसे रख कर मैं चुपचाप बाहर निकल गई। अपार्टमेंट के गार्ड को फ़्लैट की चाबी रख लेने की हिदायत दे कर मैं रिक्शा लेने के लिए खड़ी हो गई। मुझे पता नहीं था कहाँ जाना है। घर से थोड़ी दूर पर एक नर्सरी स्कूल था; जहाँ पर टीचर की ज़रूरत का इश्तेहार लगा हुआ था। वहाँ पहुँच कर मैंने व्यवस्थापक से बात की। मैडम ने कई सवाल पूछे और दूसरे दिन मिलने को कहा। मुझे विश्वास था कि मुझे वहाँ नौकरी मिल जाएगी।

वहीं से शब्द को फ़ोन मिलाया। हम उसी पुराने मॉल में मिले; जहाँ अक्सर मिला करते थे। इन सब काम में अच्छा समय निकल गया। छह बज रहे थे, रोहित ने जाने से पहले कोई कॉल नहीं किया। मैंने गार्ड को ही फ़ोन मिलाकर पूछ लिया। उसने बताया रोहित साढ़े चार बजे निकल गए हैं और फ़्लैट की चाबी उसे दे गए हैं। शब्द ने मेरे चेहरे से पढ़ लिया था कि कल से मैं बेहद परेशान रही हूँ।

उसने कहा,''चलिए, एक अच्छी जगह ले चलता हूँ। आप पुरसुकून से आराम करिए, नहीं तो तबियत और बिगड़ जाएगी।'' उसने शहर के एक अच्छे होटल में कमरा बुक करवा लिया था। मैं पहली बार इस तरह किसी के साथ आई थी। मेरी हिचक उसने भाँप ली, कहा,''हम पहली बार तो अकेले नहीं मिले हैं। आपने अपनी भावनाओं और ज़ज़्बातों को हर बार मेरे सामने खोल कर अपने आप को हल्का किया है। आपको आराम की सख्त ज़रूरत है। बताएं न, क्या हुआ है ? क्या कहा है रोहित ने ?'' कहते हुए वह मेरे बगल में आ गया और मेरा हाथ अपने हाथों में ले लिया। मैंने उसे तमाम घटनाओं के बारे में बतलाना आरम्भ किया। अपने अपमान का ज़िक्र करते हुए मैं रो पड़ी। उसने कसकर अपनी बाँहों में जकड़ लिया। प्यार की इस गर्मी में मेरे अंदर जमा बर्फ़ का पहाड़ पिघलने लगा। जाने कब शब्द ने लाइट ऑफ कर दी। मेरे रोम-रोम में सिहरन हो रही थी। हम दोनों की साँसें एक हो रहीं थीं। हम अलग-अलग नहीं थे। एक हो चुके थे। पतिव्रता स्त्री का लबादा ओढ़े एक मुद्दत से अपनी आत्मा को मार चुकी थी। मेरा वसंत लौट रहा था। आज उन सूखी डालियों पर नई कोपल खिल जाने को आतुर हो रहीं थीं। मुझे सौरभ की याद आने लगी। अनायास ही मेरे हाथ माफ़ी माँगने की मुद्रा में जुड़ गए। रोहित का धुँधला सा चेहरा सामने आया। मेरे मन में कोई अपराध-बोझ नहीं था। मेरी इच्छा के विरुद्ध जाकर भी जब रोहित अपनी दैहिक तुष्टि कर लेते तो विजयी भाव से कहते, ''उम्र बढ़ने के साथ-साथ तुम जवान हो रही हो। आख़िर तुम भी तो इंसान हो। कभी किसी के साथ ऐसी-वैसी हरकत कर भी लेना तो मुझे न बताना .....।''

देखा रोहित! अहं के बोझ तले क्या बोल जाते थे! तुम्हें पता ही नहीं चलता था। तुम्हारी बात आज भी मान रही हूँ। कभी नहीं बताऊँगी तुम्हें!

बाँहों की जकड़न कम हुई तो देखा शब्द भी गहरी निद्रा में डूब चुका था...। लगता था अरसे से वह भी इस सुख की तलाश में था।

****

किस ठाँव ठहरी है-डायन ?

प्रेम गुप्ता 'मानी'

किसी व्यस्त बाज़ार में घर होने के ढेरों फ़ायदे हैं तो नुकसान भी कम नहीं हैं...। फ़ायदे की बात हो तो एक अकेलेपन का अहसास नहीं होता, दूसरे जब जिस चीज़ की ज़रूरत होती है, बस दो कदम चल कर लिया जा सकता है...। घर के नीचे ही, सड़क के किनारे ज़मीन पर ढेरों सब्ज़ीवाले बैठे होते हैं तो किनारे तरह-तरह के सामानों से लैस ठेले भी खड़े होते हैं...। आसपास कपड़े, सौन्दर्य-प्रसाधन, बर्तन और रोज़मर्रा के सामानों की दुकानें तो हैं ही...। पॉश इलाके में आख़िर है क्या? दूर-दूर बने विशाल...आलीशान बँगले जिनमें रहनेवालों को अपने अड़ोसी-पड़ोसी के सुख-दु:ख से कुछ लेना-देना नहीं होता, तिसपर अगर किसी चीज़ की अचानक ज़रूरत पड़ जाए तो आठ-दस किलोमीटर का सफ़र करो, तब मिलेगा सामान...। जिनके घर नौकर-चाकर और गाड़ी है, उन्हें तो तब भी सहूलियत है पर जिनके पास नहीं है, वे क्या करें...? घर की तलाश करते वक़्त अन्या अपना यह तर्क देकर विकास का दिमाग़ ही जैसे खा जाती थी, पर अब...?

आसपास चौबीसों घण्टे एक अजीब-सा कोलाहल...आते-जाते टैम्पुओं व सवारियों की चिल्लपों...आलू-मटर-गोभी लेने की गुहार...दुकानदार और ग्राहकों की तकरार और कभी-कभी सिर-फुटौव्वल...। छज्जे और दरवाज़े पर एक मिनट खड़ा होने की कौन कहे, शोर-शराबे के कारण रात बारह बजे से पहले सोना भी मुश्किल...। कभी ताज़ा हवा के झोंके से खुद ताज़ादम होने के के लिए छज्जे पर खड़ी हो भी जाती है, तो आने-जाने वालों की तीखी नज़रें उसे भीतर तक भेद जाती हैं...तिस पर सामने जो पान की दुकान है, वहाँ खड़े मनचले फ़ब्तियाँ कस कर उसे कमरे में जाने को मजबूर कर देते...।

कभी-कभी वह काफ़ी परेशान हो जाती पर अपनी परेशानी वह विकास से बाँट भी तो नहीं सकती थी। उस दिन को वह भूली नहीं है जब शिकायत करने पर विकास ने गुस्से में उसे बुरी तरह झिड़क दिया था, ''मुझे तुम्हारी कोई भी बात नहीं सुननी...। भीड़ भरे इलाके में तुम्हीं को घर लेने का शौक़ था न, अब भुगतो...। मुझे क्या, मैं तो सुबह नौ बजे ऑफ़िस निकल जाता हूँ और सात-आठ बजे ही आता हूँ...। रही अम्मा-बाबूजी की बात, तो वह तो गाँव छोड़ कर यहाँ आना ही नहीं पसन्द करते...। कभी आएँगे भी तो देखना, इस शोर-शराबे से घबरा कर भाग ही खड़े होंगे...।'' झिड़कन के बीच भी न जाने क्यों विकास को हँसी आ गई। वह खिसियाई सी खड़ी रह गई। क्या कहती विकास से...ग़लती तो उसी की थी...और उस ग़लती की सज़ा उसे ही भुगतनी होगी, वहाँ रहने की आदत डाल कर...। वह अभ्यस्त हो भी रही थी कि तभी...

दिन के यही कोई तीन-सवा तीन बज रहे होंगे, वह खा-पीकर पलंग पर लेटी ही थी कि सहसा एक लहर की तरह उठी चीख ने उसे चौंका ही दिया। उसके घर की सीध में सड़क के उस पार सोनकर का घर था और उनकी बगल में वर्मा जी और उनके बड़े भाई का मकान था...। चीख सोनकर के घर की दीवारों को भेद कर सड़क के इस ओर तक आ रही थी। उससे लेटा नहीं गया। उठ कर छज्जे में गई तो आवाज़ और स्पष्ट हुई। कोई ज़ोर-ज़ोर से रोते हुए किसी को गाली दे रहा था। रोने-पीटने की आवाज़ से मोहल्ले के कुछ लोग

कानपुर की प्रेम गुप्ता 'मानी' की लगभग सभी विधाओं में रचनाएँ प्रकाशित। मुख्य विधा कहानी और कविता है। प्रेम जी के अनुभूत, दस्तावेज़, मुझे आकाश दो और काथम संपादित कथा संग्रह, अंजुरी भर और लाल सूरज कहानी-संग्रह, शब्द भर नहीं है ज़िन्दगी, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो कविता संग्रह, सवाल-दर-सवाल लघुकथा संग्रह, यह सच डराता है संस्मरणात्मक संग्रह प्रकाशित हैं। प्रेम गुप्ता 'मानी' ने कथा-संस्था ''यथार्थ'' का गठन कर 14 वर्षों तक लगातार हर माह कहानी-गोष्ठी का सफ़ल आयोजन किया। इस संस्था से देश के उभरते व प्रतिष्ठित लेखक पूरी शिद्दत से जुड़े रहे।
सम्पर्क: एम.आई.जी-292,कैलाश विहार, आवास विकास योजना सं-एक, कल्याणपुर, कानपुर-208017(उ.प्र)
ई-मेल:
premgupta.mani.knpr@gmail.com
दूरभाष:09839915525

वहाँ इकठ्ठा होने लगे थे। उन्हें देख कर सोनकर साहब तहमद लपेटे ही बाहर निकले और भीड़ से कुछ कह कर वर्मा जी का दरवाज़ा पीटने लगे। उन्हें ऐसा करते देख कर भीड़ भी उग्र होने लगी थी।

वैसे भी इस बाज़ार में चलते-फिरते लोगों के कारण ऐसा तमाशा आम बात थी, पर सोनकर का यह व्यवहार उसे कुछ अजीब लगा। उस मोहल्ले में आए उसे मात्र कुछ महीने ही हुए थे। किसी को ठीक से जानती भी तो नहीं थी। बस घर के नीचे सब्ज़ी बेचने वाली माई से कभी-कभार सबके बारे में जानकारी लेती रहती थी, वह भी विकास से छिप कर...। घर के अगल-बगल दुआ-सलाम जैसा थोड़ा बहुत व्यवहार था, पर वह भी नाकाफ़ी था सबको पूरी तौर से जानने के लिए...।

सोनकर और उसके परिवार की महिलाओं को आते-जाते तो उसने देखा था। कभी-कभार वर्मा जी के भाई-भाभी भी दिख जाते थे, पर वर्मा जी और उनकी पत्नी को उसने कभी नहीं देखा था...। जब सोनकर और उनके परिचितों ने वर्मा जी का दरवाज़ा पीटना शुरू किया, तब सबका माथा ठनका...आख़िर बात क्या है...?

सोनकर के घर की औरतों का रोना बदस्तूर ज़ारी था। उससे रहा नहीं गया तो छज्जे से ही उसने माई को आवाज़ दी,''माईऽऽऽ...।''

''क्या है बिटिया...?''

''क्या हो गया...? सोनकर साहब के घर में यह रोना-पीटना क्यों मचा है...? और वर्मा जी को ये लोग गालियाँ क्यों दे रहे हैं...?''

उसकी आवाज़ सुन कर माई कमर पर हाथ रख कर खड़ी हो गई,''अरे क्या बताएँ बिटिया...। सोनकर भैया की ग्यारह महीने की बिटिया थी...। खूब गोरी-चिट्टी...सुन्दर-सी...। सुबह से ठीक थी, पर दोपहर को माँ ने जैसे ही चम्मच से मुँह में दूध डाला, उसने उगल कर आँख उलट दी...। डॉक्टर को दिखाया तो पता चला प्राण तो कब के निकल गए...।'' माई ने अपनी सूखी आँखों पर आँचल रख कर ऊपर उसकी ओर देखा तो वह ऊँची आवाज़ में बोल उठी,''अरे माईऽऽऽ...मैने कहीं पढ़ा था कि यह तो डिप्थीरिया के लक्षण हैं...। बच्ची की तबियत पहले से खराब रही होगी पर वे लोग समझ नहीं पाए होंगे...।''

''नहीं बिटियाऽऽऽ...ऐसा कुछ नहीं था...। अच्छी-भली थी बच्ची...।'' माई के चेहरे पर घृणा की परत चढ़ गई,''अरे, अच्छी-भली बच्ची को वह हरामज़ादी वर्मा की मेहरारू खा गई...। मुँह झौंसी का बेड़ा गर्क हो...। बेऔलाद मरेगी कुतिया...। अरे, बड़ी मान-मनौती के बाद सोनकर भैया के घर लक्ष्मी आई थी...उसे भी खा गई वो कुलच्छनी...।''

माई हाथ मटका-मटका कर जिस तरह वर्मा की पत्नी को कोस रही थी, वह उसे अच्छा नहीं लग लगा पर फिर भी उसने विरोध नहीं किया। दूसरे के पचड़े या बदनामी से उसे क्या लेना-देना...। फिर अगर विकास ने उसे इस तरह माई से पूछताछ करते देख लिया तो जो नाराज़ होंगे, सो अलग...। वह चुपचाप भीतर जाने के लिए मुड़ी ही कि तभी कोई ज़ोर से चीखा,''अरे सही मौका है...। इसका मरद घर पर नहीं है...मार डाल साऽऽऽलीऽऽऽ को...।''

भीड़ में अब वर्मा के भाई-भाभी भी शामिल हो गए थे,''अरे, कितनी बार रजतवा से कहे हैं कि झोंटा पकड़ के निकाल बाहर करे ससुरी को...ऐसी कुलच्छनी को रख के काहे आफ़त मोल लेते हो, पर वो हमारी सुने तब न...। वो तो इसके परेम में अइसा आन्धर है कि उसे कुछ दिखइ,ए नहीं देता...। भुगते अब...हमें क्या...।''

''तो सोचना क्या फिर...आप लोग भी साथ हैं न...? आज ही इसका निपटारा कर देते हैं...।'' भीड़ में से कोई चीखा,''आज सोनकर की बिटिया को खा गई...कल हमारे बच्चों पर निगाह डालेगी, क्या पता...?''

''कोई बल्लम तो लाओ...ससुर दरवाज़ा ही तोड़ देते हैं...।''

कमरे में जाने को मुड़े उसके पाँव किसी को मारने की बात से ही जैसे ज़मीन से चिपक गए...। उफ़! ये क्या हो रहा है...? एक नि:सहाय औरत, जिसका पति घर पर नहीं है, जेठ-जेठानी ने साथ छोड़ दिया है, वह इस समय घर के भीतर अपनी मौत के आगम की कल्पना मात्र से किस कदर काँप रही होगी...? भीड़ जिस तरह उग्र हो रही थी, उससे उसकी मौत निश्चित है...। आख़िर कोई उसकी सहायता क्यों नहीं करता...? उस बेचारी का कसूर क्या है...? कोई किसी को कैसे खा सकता है...? यह इक्कीसवीं सदी का शहर है, फिर भी उस अकेली औरत का इस अत्याचार से कोई रक्षक नहीं...?

दुनिया में अगर कठोर लोग हैं तो कुछ सहृदय भी...। भीड़ की उग्रता देख कर कुछ लोगों ने बीच में पड़ कर उन लोगों को समझाने की कोशिश की भी तो उनको बुरी तरह झिड़क दिया गया,''क्यों बेऽऽऽ...तेरी माँ-बहन लगती है क्या...तू क्यों मरा जा रहा है...? तेरे घर का कोई मरता तो तुझे अच्छी तरह पता चलता...।'' समझाने वाला इतनी फ़ज़ीहत करा के चुपचाप किनारे खिसक लिया...। दूसरे के पचड़े में अपनी गर्दन क्यों फँसाई जाए...। पगलाई भीड़ आख़िर किसी की सुनती है क्या...?

''भईऽऽऽ...आज तो इस औरत को कोई नहीं बचा सकता...। इसका मरद घर होता तो वो भी नहीं...। देख नहीं रहे, लोग कितने गुस्से में हैं...।''

''अरे, वर्मा की जगह मैं होता तो खुद ही मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा देता साली को...और तब तक तमाशा देखता जब तक जल कर कोयला न हो जाती...।'' भीड़ में से ही कोई गुर्राया।

घर के ठीक सामने खड़ी उग्र भीड़ की आवाज़ इतनी तीखी थी कि आते-जाते वाहनों के शोर को भी भेद रही थी। उस आवाज़ के साथ औरतों का रोना भी तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा था।

और इधर, अपने छज्जे पर खड़ी अन्या भय से काँप रही थी। आगे आने वाले दृश्य की कल्पनामात्र ने उसे दहला दिया था...। ऐसी ही एक घटना से वह बचपन में रूबरू हो चुकी थी जब उसके गाँव की रज्जो ताई को भरी भीड़ में घर से बाहर खींच लिया था। वे चीखती रही थी...लोगों से मदद की

गुहार करती रही थी, पर उन्हें बचाने के लिए कोई भी आगे नहीं आया...खुद उनका पति पीछे के रास्ते से भाग गया था। पूरा गाँव एकजुट होकर एक अकेली औरत की दुर्दशा का तमाशा देख रहा था। निरंकुश भीड़ में से किसी मनचले ने आगे बढ़ कर उनका कपड़ा फाड़ दिया, तो किसी दूसरे ने उनके मुँह पर कालिख मल दी और फिर उसी स्थिति में पूरे गाँव में घुमा कर उनपर मिट्टी का तेल डाल कर आग लगा दी। वह चीखती रही...रो-रो कर कहती रही...हमने कुछ नहीं किया भैया...हमें मत मारो...पर भीड़ एकदम बहरी...। राख बनती उस औरत की चीख भी राख की तरह हवा में उड़ गई। यह सब देख कर वह इतनी दहशत में आ गई थी कि बरसों घर की चौखट लाँघने में भी घबराती थी। उसकी यह हालत देख कर उसे उसकी मौसी के पास शहर भेज दिया गया। बाद में उसकी ज़िद पर शहर में ही उसकी शादी भी की गई, पर शहर...?

यह शहर भी उसके गाँव से कौन सा कम है? वहाँ रज्जो ताई थी, तो यहाँ वर्मा की पत्नी निशाने पर है...। वर्मा की पत्नी का कसूर क्या था, यह वो अभी नहीं जानती, पर रज्जो ताई तो एकदम बेकसूर थी...। पड़ोस के लम्पट रामओसरे ने उसे अकेली पाकर उसकी इज्ज़त तार-तार कर दी थी और उसकी पत्नी ने पति को बचाने के लिए पूरे गाँव में शोर मचा दिया कि रज्जो ताई औरत नहीं, डायन है...जो जादू-टोने से दूसरे मर्दों को बाँध लेती है...मरद अपने होश में नहीं रहता...। बस फिर क्या था...जिन औरतों के पति रज्जो ताई की ओर आकर्षित थे, वे तो उन्हें रास्ते से हटाने के लिए पागल हो ही गई थी, उनके साथ कुछ उन मर्दों ने भी मोर्चा सम्हाल लिया था जो सिर्फ़ दिन के उजाले में ही पाक़-साफ़ थे, पर काले अन्धेरे की चादर ओढ़ कर बहुत कुछ हासिल करना चाहते थे...और रज्जो ताई उनसे बचती आ रही थी...। मासूम रज्जो ताई का कसूर क्या सिर्फ़ इतना था कि वह एक नामर्द की पत्नी होने के साथ एक भरी-पूरी औरत भी थी...और यह औरत होना ही उनका कलंक था...? ऐसे मर्द के साथ रहते हुए खुश दिखना उनका फ़रेब था और ऐसी फ़रेबी औरत समाज के लिए ख़तरा थी...। आसपास ख़तरा मंडराए तो उससे निज़ात पाना ज़रूरी हो जाता है...। सबने निज़ात पा लिया था...। उफ़! आज शहर में भी क्या वही कहानी दोहराई जाएगी...? कोई स्त्री क्या है, इसे कोई कैसे साबित कर सकता है...? उसे अच्छा या बुरा साबित करने का हक़ इन्हें किसने दिया और उसे मारने का निर्णय सुनाने वाले ये कौन होते हैं...?

सहसा ही बचपन की वह घटना उसकी आँखों के आगे साकार हो उठी। क्या इस ज़ालिम समाज के कारण शक़ की वेदी पर एक और औरत की बलि दी जाएगी...? उसे लगा जैसे गाँव की उस राख से रज्जो ताई बाहर निकल आई हैं और उससे मिन्नत कर रही हैं अपने को बचाने के लिए...।

रज्जो ताई की उस मर्मान्तक चीख ने उसके पूरे वजूद को कँपा दिया है...। वह लगभग तन्द्रिल अवस्था में भीतर गई, मोबाइल उठाया और सौ नम्बर डायल कर दिया...। डायल करते समय उसकी उँगलियाँ ज़रा भी नहीं काँपी...। उसे उस समय न विकास का भय था, न भीड़ की परवाह...परवाह थी तो बस एक ज़िन्दगी की, जिसे कानून के कटघरे में खड़ा किए बिना ही मौत की सज़ा सुना दी गई थी...। फ़ोन करने के थोड़ी देर बाद उसने बाहर झाँक के देखा और सकून की साँस ली। पुलिस ने आकर न केवल भीड़ को भगा दिया था, बल्कि दो पुलिसवालों की वर्मा के घर के बाहर ड्यूटी भी लगा दी थी...। वह आकर चैन से पलंग पर लेट गई...शक़ की ज़मीन पर एक क़ब्र को बनने से उसने रोक जो दिया था...।

एक तूफ़ान तो उसने रोका था पर दूसरा तो बाकी था...। शाम को विकास आए तो बिफ़र पड़े उस पर,''क्यों, दोपहर तुमने ही फ़ोन किया था न पुलिस को...? बहुत बड़ी समाज-सेविका बन गई हो...? मैंने मना किया था न किसी के मामले में पड़ने से...। तुम्हारी इस हरकत के कारण मुझे कितना कुछ सुनना पड़ा...और यही क्यों, अब बेवज़ह सोनकर के परिवार से जो दुश्मनी हुई, सो अलग...।''

''अरेऽऽऽ...पर वे लोग उसे मार डालते न...।'' विकास का गुस्सा देख कर डर के मारे सिर्फ़ इतना बोल कर उसकी आवाज़ रुँध गई।

''तो तुमने क्या सबका ठेका ले रखा है...? तुम्हारे बीच में पड़ने से क्या सब कुछ ठीक हो जाएगा...? मौका पाकर कोई-न-कोई तो उसे मार ही देगा...। हम दिल्ली-बम्बई जैसे बड़े शहर में नहीं रह रहे अन्या...बहुत छोटा शहर है ये...। यहाँ आग फैलते देर नहीं लगती...। और एक बार तुमने ही अपने गाँव की उस घटना का जिक्र किया था न...तब बचा लिया था क्या तुम्हारे परिवारवालों ने उस औरत को...?''

गुस्से में पैर पटकते हुए विकास बाथरूम में घुस गए तो उसकी आँखें भर आई। शायद विकास भी उस भीड़ से अलग नहीं हैं...। उनके भीतर भी संवेदना का स्रोत सूख गया है...। एक औरत, जिसका पति घर पर नहीं था, उसे बचाने के लिए किसी को तो आगे आना चाहिए था न...। वह आ गई तो ऐसा क्या ग़ुनाह कर दिया कि विकास इतना गुस्सा हो गए...?

वातावरण में एक अजीब सी कड़वाहट घुल गई थी। उसने डबडबाई आँखों में ठहरे आँसुओं को हथेली के सोख़्ते में ही सोख लिया और फिर चाय बनाने के लिए रसोई में घुस गई। थोड़ी देर बाद चाय-नाश्ता लेकर आई तो विकास सोफ़े पर ही अधलेटे से बैठे थे। इस समय उनकी आँखों में गुस्से का एक ज़र्रा भी नहीं था बल्कि एक अजीब-सी चिन्ता झलक रही थी। उसने चाय की प्याली उनकी ओर बढ़ाई तो विकास ने हाथ पकड़ के उसे अपने पास बैठा लिया,''तुम मेरी बात समझने की कोशिश करो...। किसी की सहायता करना बुरी बात नहीं है, पर यहाँ मामला दूसरा है...। हम लोग अभी किसी को ठीक से जानते नहीं। एक-दो लोग बता रहे थे कि सोनकर ठीक आदमी नहीं है...कुछ गुंडा किस्म का आदमी है...। उससे पंगा लेना ठीक नहीं है, फिर यहाँ मौत का मामला है...उसकी बच्ची मरी है...। इस समय दुःख और गुस्से से उसका पूरा परिवार पागल है...। रही वर्मा की पत्नी

की बात, उसे भी हम लोग कितना जानते हैं...?''

वह सनाका-सा खाई विकास की बात सुन रही थी कि तभी विकास ने उसे ठुनकियाया,''मेरी बात समझ में आ रही है न...?''

''अब ऐसी ग़लती नहीं होगी...।'' उसने कहा तो सहज होकर विकास ने टेलीविज़न ऑन कर दिया... टी.वी पर कोई नई फ़िल्म चल रही थी।

कोई और दिन होता तो विकास के साथ बैठ कर वह भी फ़िल्म देखती, पर इस समय माहौल दूसरा था...। घर के सामने एक मासूम बच्ची की मौत हुई थी और घर के मर्द उसे दफ़ना कर लौटे नहीं थे। पल भर वह चुपचाप टी.वी की तरफ़ देखती रही, फिर उठ कर रसोई में घुस गई।

उस रात दोनों से ही खाना नहीं खाया गया। उसने तो हाथ तक नहीं लगाया और विकास ने भी किसी तरह एक रोटी खाकर प्लेट किनारे खिसका दी...। बिना कुछ कहे भी उसे बहुत कुछ समझ में आ गया था...। ऊपर से कठोर दिखने वाले विकास के भीतर भी संवेदना का स्रोत सूखा नहीं था। सुबह जाकर उन्होंने न केवल सोनकर से माफ़ी माँगी, बल्कि उनकी बच्ची के लिए शोक भी जताया।

मोहल्ले में मामला लगभग शान्त हो चला था पर उसके भीतर एक अजीब सी हलचल थी। रात-दिन उठते-बैठते उसकी आँखों के सामने रज्जो ताई आकर खड़ी हो जाती। वह घबरा कर कमरे की घुटन से पीछा छुड़ाती तो बाहर सड़क के उस पार हाथ जोड़े खड़ी ताई उससे अपने को बचाने की गुहार करती मिलती...। वह इन दिनों एक अजीब सी बेचैनी से घिर गई थी...। इस बेचैनी ने उसका जीना मुहाल कर दिया था...। वह समझ नहीं पा रही थी कि इससे कैसे पीछा छुड़ाए...।

दिन-ब-दिन गिरते उसके स्वास्थ्य ने विकास का ध्यान भी आकर्षित किया था। उसे शारीरिक व मानसिक रूप से व्यस्त रखने की गरज़ से ही कई कामों से विकास ने अपना हाथ खींच लिया,'' इधर ऑफ़िस में मुझ पर काम का बहुत बोझ है अन्या...। मैं बुरी तरह थक जाता हूँ। तुम दिन भर वैसे भी बोर होती हो अक्सर...। एक काम करो...ये घर के सौदा-सुलफ़ अब तुम ही ले आया करो...। लगे हाथ बिजली वगैरह का बिल भी भर दिया करो...।''

''ठीक है...।'' छोटा-सा उत्तर देकर वह बाकी कामों में व्यस्त हो गई।

कहते हैं न कि व्यस्तता तन को तो थका देती है, पर मन के आकाश पर अगर काले बादलों-सा बोझ आ बैठता है तो बरस जाने के बाद भी अपना अंश छोड़ ही जाता है। विकास के बार-बार समझाने के बावजूद वह उस बवाली प्रकरण से खुद को अलग नहीं कर पा रही थी। जब कभी उधर नज़र जाती, सारा दृश्य फिर उभर कर उसकी आँखें नम कर देता, तिस पर नीचे सब्ज़ी वाली माई...।

वो तो जैसे आग में घी डालने का काम करती रहती...। वह जब भी सब्ज़ी लेने जाती, उसका प्रलाप चालू हो जाता,''बिटिया, कित्ते साल हुई गए सादी के...?''

''दो साल हो गए माई...'' वह छोटा सा उत्तर देकर थैली में सब्ज़ी डलवाने लगती।

''कौनो बच्चा-वच्चा कियो नाही कि हुआ ही नाही...?''

''अभी किया नहीं...।''

''तब ठीक है बिटिया...पर एक बात के लिए होसियार रहना...। ऊ वर्मा की मेहरारू है न, ओसे वास्ता न रखना...। अरे, घोर अघोरिन है...। आपन जेठानी के दुई बच्चे खा गई...। जेठ पर तो जादू-टोना कर रखा है...। ऊ तो ओके देखे खातिर पागल भया रहता है...। बेचारी जेठानी कित्ता दु:खी रहती है। बड़ी मुस्किल से तो आपन मरद के सम्हाले रहत है...।''

''इसमें उस बेचारी का क्या कसूर माई...? जेठ आवारा-बदचलन होगा...। उसकी जेठानी इस बात को समझती क्यों नहीं...?''

उसने कहा ही था कि माई ने उसकी बात काट दी,''अरेऽऽऽ, आवारा-शावारा कुछ नहीं बिटिया...ई सब जादू-टोने का प्रभाव है...। अइसा न होता तो उसका खुद का मरद इतने टंटे के बाद ओके छोड़ न देता...? पर नाही...आपन मरद को भी पागल कर के रखे है न...। ओकरे सिवा कौनो दीखता ही नाही...। महतारी-बाप...भैया-भौजाई...कछु नाही...। बस है तो वही मुँहझौंसी...ससुरीऽऽऽ...करमजली...। अरेऽऽऽ, इत्ते बच्चन के खाए के बाद भी निपूती ही मरेगी...।''

माई का अनर्गल प्रलाप चल ही रहा था, पर वो हर बात अनसुनी कर रही थी। इस गंवार औरत की बदज़ुबानी पर उसे विश्वास की जगह गुस्सा ही आ रहा था...। उसका तो जी हुआ कि इस बकवास के बदले वो भी उसे खरी-खोटी सुना डाले, पर विकास की नाराज़गी की बात सोच कर वह अपना गुस्सा मन में ही दबा कर आगे बढ़ गई...।

वक़्त के साथ ज़िन्दगी भी अपनी रफ़्तार पर पकड़ बनाए हुए थी, पर बावजूद इसके अक्सर उसका जी घबराने लगता...कई बार तो बहुत ज़्यादा...। उस दिन भी जब ज़्यादा ही घबराहट महसूस हुई तो घर में ताला लगा वह रिक्शा करके छ:-सात किलोमीटर दूर बने पार्क में चली गई। कइयों के मुँह से उसकी तारीफ़ सुन कर यहाँ आने का तो वो बहुत बार सोच चुकी थी, पर आ कभी नहीं पाई थी...। आज सीधे उसने यहीं का रिक्शा कर लिया। निकलने से पहले उसने विकास को फ़ोन करके पूछ लिया था। वैसे भी उस दिन वे देर से ही आने वाले थे।

सकून की तलाश में वहाँ पहुँचे हुए अभी उसे कुछ मिनट ही हुए थे कि तभी...बहन जी, नमस्तेऽऽऽ...सुन कर चौंक उठी। सामने करीब चालीस-पैतालीस बरस के एक सज्जन खड़े थे। उसे अजनबी नज़रों से अपनी ओर देखते पाकर बोले,''आप मुझे नहीं पहचानती पर मैं आपको अच्छी तरह से जानता हूँ...। मैं योगेन्द्र वर्मा...आपके घर के सामने वाले मकान में...सोनकर के बगल वाला घर मेरा है...।''

सुनते ही वह घबरा के उठ खड़ी हुई,''आप मुझे जानते हैं तो मैं क्या करूँ...? आप मुझसे क्या चाहते हैं...? इस तरह यहाँ आकर बात करने का मतलब...?''

उसकी घबराहट देख कर वर्मा भी

सकपका गया, ''बहन जी, घबराइए नहीं...। हम लोग कोई अपराधी नहीं हैं...। मैं तो बस आपको यहाँ देख कर धन्यवाद कहने आ गया। उस दिन अगर आप सही समय पर पुलिस न बुलाती तो वे लोग तो मेरी पाखी को मार ही डालते...।''

''पाखी...? पाखी कौन...?'' वह अब भी अचकचाई हुई थी।

''पाखी...मेरी अभागिन पत्नी...जो बिना कोई अपराध किए ही अपराधी बना दी गई। क्या करूँ...कुछ समझ नहीं आता। कभी-कभी तो लगता है, यह नौकरी छोड़ कर इसे ले कहीं दूर चला जाऊँ...। पर फिर इसे खिलाऊँगा कहाँ से...यही सोच के रुक जाता हूँ...। जात-पाँत की परवाह किए बिना इससे प्यार करना और फिर शादी करना इतना बड़ा ग़ुनाह बन जाएगा, यह मैंने नहीं जाना था...। अगर जानता तो खुद मर जाता, पर इसे इस तरह घुट-घुट के मरने न देता...।'' कहते-कहते वो फफक पड़ा तो अन्या का मन भी भर आया,'' आप जी छोटा न कीजिए...इस तरह रोइए नहीं...। प्यार करना कोई ग़ुनाह नहीं...और आपने तो उसे एक पवित्र बन्धन में बाँध के उसकी सच्चाई और पवित्रता ही साबित की है...।''

घर लौटने में अन्या को अभी वक़्त था। उसे लगा कि वह कुछ करे या न करे, पर किसी इंसान का दु:ख बाँट लेने में हर्ज़ ही क्या है...? वर्मा जी की बातों से उसे पता चला कि उन्होंने उस घटना के बाद सोनकर के बगल वाला अपना पुश्तैनी मकान छोड़ कर यहीं पार्क के पास एक कमरा किराये पर ले लिया है। फिलहाल कुछ दिन चैन से गुज़रे हैं। वो दोनों अभी बहुत सी बातें कर ही रहे थे कि तभी एक सुन्दर सी युवती आ कर उनके पास खड़ी हो गई,''चलिए न...बहुत देर हो गई है...।''

वह चौंक कर मुड़ी कि ठगी रह गई। ऐसा लगा जैसे अभी-अभी आकाश से कोई अप्सरा उतर कर आई हो। सफ़ेद...दूधिया रंग पर तीखे नाक-नक्श...बड़ी-बड़ी कज़रारी आँखें...कद औसत, पर घुटने से नीचे तक घने-काले बाल...करीने से पहनी गई लाल बॉर्डर वाली क्रीम कलर की साड़ी...। खूबसूरती की कोई ऐसी मिसाल भी हो सकती है, यह उसने कभी सोचा भी नहीं था। वर्मा ही क्या, ऐसे रूप-सौन्दर्य पर तो कोई भी मर मिटेगा...।

''बहन जी...यह मेरी पत्नी है, पाखी...कलकत्ता की है...। इससे प्यार के मेरे अपराध के कारण इसके माता-पिता ही ने नहीं, बल्कि मेरे सगे-सम्बन्धियों ने भी हमें त्याग दिया...। बस, एक भैया ने ही नहीं त्यागा था, पर न जाने क्यों अब वो भी दुश्मन बन बैठे हैं...।''

पार्क में हल्का अन्धेरा घिरने लगा था। इस बीच वर्मा ने बहुत कुछ कह दिया था। विकास के डर से उसने उनसे दुबारा न मिलने को कहा तो डबडबाई आँखों से उसकी ओर देख कर पाखी ने बस इतना ही कहा,''दीदीऽऽऽ...मैं उस मोहल्ले में अब कभी नहीं आऊँगी...आपसे भी नहीं मिलूँगी, पर एक बात कहना चाहती हूँ...फिर मौका मिले न मिले...। दीदीऽऽऽ...मैंने कुछ नहीं किया है। शादी के पाँच साल बाद भी बच्चा नहीं हुआ तो इसमें मेरा क्या कसूर...? मैंने किसी के बच्चे को नहीं मारा...भला मैं क्यों मारूँगी...? मेरी जेठानी ने जाने क्यों मेरी ऐसी बदनामी कर दी है कि किसी भी दरवाज़े पर फूल, चावल, बताशा कोई और रखता है और नाम मेरा लग जाता है...। मैं क्या करूँ...? मुझपर विश्वास कीजिए। मुझे जादू-टोना कुछ नहीं आता...। मैं तो...।'' आगे वह बोल नहीं पाई, बस फफक कर रो पड़ी...।

उसे इस कदर रोता देख कर वह इतना घबरा गई कि उसके मुँह से सांत्वना के दो बोल भी नहीं फूटे। विकास के आने का वक़्त हो गया था। इसलिए वह उनसे विदा ले बड़ी तेज़ी से घर आ गई। घर आकर वह इस तरह काम में मशगूल हो गई जैसे कभी किसी से मिली ही न हो...।

विकास से छिप कर तो उसने बहुत कुछ कर लिया था पर अपने आप से कैसे छिपती? दिन भर तो काम में उलझी रहती थी पर रात में...? पाखी की याचनाभरी आँखें या तो सारी रात जगाती या गहरी नींद में भी झकझोर देती,''दीदीऽऽऽ...मुझसे नफ़रत न करना...। मैंने कुछ नहीं किया है...। मुझ अभागिन की गोद नहीं भरी तो इसका मतलब यह नहीं है कि मैं दूसरों की गोद सूनी करूँगी...।''

पाखी की रुँधी आवाज़ देर तक उसका पीछा करती और वह न चाहने पर भी अक्सर चीख उठती,''उसे छोड़ दो...उसे मत मारो...उसने कुछ नहीं किया...।''

जब कई बार उसने ऐसा किया तो विकास चिन्तित हो गए,''क्या हो गया है तुम्हें...? सामने ऐसा-वैसा देख लिया तो उसे दिल से ही लगा बैठी...?'' उसने विकास की किसी बात का उत्तर नहीं दिया, पर उसकी आँखों के नीचे बढ़ते काले घेरे और गिरते स्वास्थ्य से घबरा कर विकास ने गाँव से अपनी माँ को बुला लिया।

माँ ने सारी बात सुनी तो उसको गाँव ले जाने की ज़िद करने लगी पर वह जाती कैसे? रज्जो ताई की आँखों ने भी कहाँ अब तक उसका पीछा छोड़ा था...। नौकरी के सिलसिले में विकास भले ही शहर में बस गए थे, पर उनका घर भी तो उसके मायके जैसा गाँव ही था। रज्जो ताई अपने पूरे वजूद के साथ उसकी आत्मा में इस कदर बस गई थी कि शादी के बाद उसने ससुराल के गाँव की ओर भी कभी कदम नहीं रखे। जब कभी एक-दूसरे की याद आती तो अम्मा-बाऊजी ही आ जाते शहर...उससे मिलने...।

अम्मा ने आकर बहुत कुछ सम्हाल लिया था। गृहस्थी फिर अपनी रफ़्तार से चलने लगी थी। दिन भर अम्मा के साथ लगे रहने से छज्जे पर उसका जाना कम हो गया था...लगभग न के बराबर, पर एक दिन सहसा ही, जब भोर की उजास पूरी तरह फूटी भी नहीं थी कि बाहर के भीषण शोर ने सबके साथ-साथ उसे और विकास को भी हड़बड़ा कर जगा दिया था। वे दोनों छज्जे पर गए तो बाहर का दृश्य देख कर चौंक गए। सोनकर के घर के बाहर पुलिस की जीप खड़ी थी। दस-पन्द्रह पुलिसवालों ने सोनकर और वर्मा के भाई के घर को घेर रखा था। उनके सम्बन्धी हंगामा कर के शोर मचा रहे थे, पर पुलिस ने अपनी कार्यवाही नहीं रोकी। घर में घुस कर सोनकर और वर्मा के भाई को घसीट कर बाहर ले आई और जीप में पटक दिया, ''सालोंऽऽऽ...

हरामज़ादोंऽऽऽ...बहुत बड़े गुण्डे हो तुम लोग...? पुलिसवालों से ज़ोर-आजमाइश करते हो...? थाने चल...फिर बताता हूँ, किसमें कितना दम है...।''

सोनकर लगातार चीख रहा था,''बिना सबूर्त के तुम लोग किसी को ऐसे गिरफ़्तार नहीं कर सकते...। पहले जुर्म साबित करो, फिर जो करना है करो...।''

''सबूत भी मिल जाएगा साऽऽऽले...हरामखोर...। जिसके साथ ग़लत किया है न...उसी के मरद ने चीख-चीख कर तुम दोनों का नाम लिया है...।'' दरोगा ने एक ज़ोरदार तमाचा मारा तो दोनों सन्नाटे में आ गए...।

सामने का यह दृश्य देख कर अन्या सन्नाटे से ज़्यादा दहशत में आ गई थी...। कुछ-कुछ उसकी समझ में आ रहा था। पुलिस की जीप चली गई तो बतकही का दौर शुरू हो गया। उसके घर के नीचे उसके सारे पड़ोसी इकट्ठा थे। खरे साहब ने पान-मसाला चबाते हुए कहा, ''उसका यह अंजाम तो होना ही था न...। दरोगा बता रहा था कि पार्क के पीछे जो घनी झाड़ियाँ हैं, वहीं उसकी लाश मिली है...क्षत-विक्षत और निर्वस्त्र...। शायद आठ-दस लोग थे...। बलात्कार तो किया ही...दुर्दशा भी बहुत कर दी...।''

''अरेऽऽऽ...वो तो डायन थी भैया...डायन...। डायन को अपने कर्मों की सज़ा तो मिलनी ही थी न...मिल गई...। मरी तो बहुत बुरी मौत है...।''

''पर भैयाऽऽऽ...बेचारा उसका आदमी तो जैसे बेमौत मर गया...। कोई बता रहा था...पगला गया है एकदम...। उस डायन की लाश गोद में लेकर बैठा है...। छोड़ कर उठ ही नहीं रहा...। पोस्टमार्टम के लिए भी ले जाने नहीं दे रहा था...।''

''अरे, छोड़ेगा कैसे...? मरने के बाद भी डायन ऐसे ही जकड़े रहती है...। देखना...लिख कर रख लो मेरी बात...वो उसको भी अपने साथ ले जाकर ही मानेगी...।''

''अरे मैं तो कहता हूँ, ले ही जाए तो ज़्यादा अच्छा...। इतनी बदनामी झेल कर कोई कैसे जी पाएगा...? तिस पर औरत की अस्मत लुटी तो समझो सब कुछ लुट गया...।''

''मैं क्या करूँ दीदी, इसे समझा-समझा के हार गया पर यह है कि मानती ही नहीं...। बच्चे के लिए पगलाई रहती है। दिन-रात पूजा-पाठ...मन्दिर-मस्जिद के चक्कर लगाना...। किसी का बच्चा देखती है तो लपक पड़ती है...। इसे यही समझाता हूँ कि जब अपनी किस्मत में औलाद का सुख न हो तो दूसरे का देख कर ललचाया भी न कर...और फिर वैसे भी जब इस पर बाँझ का ठप्पा लगा ही है, तो लोग तो अपनी औलाद इससे दस गज़ दूर ही रखेंगे न...।''

''दीदीऽऽऽ...मैं बाँझ ज़रूर हूँ, पर मेरे भीतर बहुत ममता भरी हुई है...। मैं किसी के बच्चे को कैसे नुकसान पहुँचा सकती हूँ...। आप तो मेरा विश्वास करेंगी न दीदी...? मुझ पर विश्वास करना दीदी...।''

सहसा, पाखी की कातर आवाज़ उसके भीतर उथल-पुथल मचाने लगी। उसकी आँखों के आगे हल्का अन्धेरा घिरने लगा और तन...लगा, जैसे नसों में बहते खून ने अपनी रफ़्तार तेज़ कर दी हो...। विकास को झिंझोड़ते हुए वह चीखी,''वह निर्दोष है...उसे बचा लो...।''

''अन्याऽऽऽ...होश में आओ...। वह मर चुकी है...। अपने आप को सम्हालो तुम...।'' विकास की आवाज़ उसके सुन्न होते कानों तक नहीं पहुँची और वो जब तक उसे सम्हाल पाता, वह धम्म से छज्जे पर ही गिर पड़ी।

थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया तो वह अन्दर बिस्तर पर थी...। एक अजनबी, जो शायद डॉक्टर था, उसके ऊपर हल्का-सा झुका पूछ रहा था,''अब कैसा महसूस कर रही आप...?''

उसने उत्तर नहीं दिया। बस फटी-फटी आँखों से सबको देखती रही...। अम्मा और विकास के चेहरे पर उगी चिन्ता की रेखाओं को वह स्पष्ट देख रही थी, पर समझ नहीं पा रही थी कि वे सब इतने परेशान क्यों हैं...? उसकी तबियत तो अक्सर खराब होती रहती है, तो इस बार क्या हुआ?

उसने उठने की कोशिश की तो डॉक्टर ने उसे थपथपाया,''अभी लेटी रहिए...'' और फिर विकास को लेकर बाहर चला गया।

सहसा उसे बेहद कमज़ोरी महसूस हुई और आँखें फिर मुंदने लगी...। थोड़ी देर बाद उसे नहीं पता की वह सोई कि नहीं, पर जब उठी तो उसके भीतर एक अजीब-सी आग जल उठी...। उसके पायताने सब्ज़ी वाली माई बैठी हुई थी। वह उसके पाँवों को सहला रही थी कि तभी उसने चीखते हुए एक भरपूर लात उसकी छाती पर मारा,''नीच औरतऽऽऽ...उसे बदनाम करने में तेरा भी कम हाथ नहीं था...।''

सब लोग हक्का-बक्का रह गए। अपनी छाती को पकड़े माई काफ़ी दूर जाकर गिरी,''हाय दैय्या रे दैय्याऽऽऽ...बहुरिया तो हमको मार डाली रेऽऽऽ...हम तो भला करने आए थे...और ई हमको लात मारी...।''

घबरा कर अम्मा ने दौड़ कर उसे उठाया और छाती सहलाते हुए बोली,''बुरा मत मानो माई...बहू अपने होश में नहीं है...। तुम्हारे सामने ही तो डॉक्टर गया है न...।''

माई ने सहसा ही चीखना बन्द कर दिया,''अब बुरा मान के क्या करना है अम्माऽऽऽ...। हम तो पहिले ही कह रहे थे कि उस डयनिया ने बहुरिया के भीतर पूरी तरह कब्ज़ा जमा लिया है...। ई लात इसने नहीं, उस डायन ने मारी है...।''

''इसे अन्दर किसने आने दिया...? यह दुबारा दिखी तो मैं इसे मार डालूँगी...।'' दहाड़ते हुए वह बुरी तरह हाँफ़ गई। अम्मा उसे शान्त करते हुए सँभालने में लग गई तो माई ऐसे भागी कि पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा...।

थोड़ी देर बाद जब विकास आए तो सारी घटना सुन कर परेशान हो गए...। बहुत प्यार से उसका माथा सहलाते हुए, उसे फुसला कर उन्होंने किसी तरह उसे दवा खिलाई तो थोड़ी ही देर में वह दुबारा जैसे नीम बेहोशी में चली गई...। अम्मा और विकास लगातार उसके पास बने रहे, चिन्ता से लबरेज़...। उनके साथ-साथ घर भी हर तरह से अस्त-व्यस्त हो गया था...।

उसे पूरी तौर से सोया जान कर विकास

ने धीरे से अम्मा को किनारे आने का इशारा किया। विकास कुछ कहते कि उससे पहले अम्मा ही बोल पड़ी,''मैं जानती हूँ बेटा कि डॉक्टर ने क्या कह है...। यही न कि इसे बहुत गहरा सदमा पहुँचा है...दवा से ठीक हो जाएगी...। पर बेटा, इस तरह दवा खाकर यह दिन भर सोती ही रही तो ठीक कैसे होगी...? तुम मानों न मानों...पर मुझको माई की बात पर यकीन हो रहा...। ज़रूर उस डायन ने इस पर कब्ज़ा कर लिया है...वर्ना देखा है कभी इसको ऐसा कुछ करते...?''

''पर माँ...'' विकास माँ की बात को काट नहीं पा रहे थे।

''मैं जानती हूँ कि तुमको इन सब बातों पर भरोसा नहीं...। तुम डॉक्टर की दवा करते रहो...मैं कब मना कर रही हूँ, पर मुझे भी अपना उपाय करने दो...देसी उपाय...। बचपन में जब तुम नज़रा कर बुरी तरह बीमार पड़ जाते थे, तब उस देसी उपाय से ही ठीक होते थे...। बस एक बार बहू के लिए भी कर लेने दो...।''

विकास चुप हो गया। माँ की आँखों में एक अजीब-सा आत्मविश्वास था।

वक़्त बड़ी तेज़ी से बीतता है, पर इस घर में तो जैसे वक़्त थम-सा गया था...। विकास ने अन्या के माँ-बाऊजी को भी गाँव से बुला लिया था...। वे भी विकास की माँ के साथ-साथ ओझाओं और पंडितों से सलाह-मशविरा कर रहे थे।

कुछ दिन बाद ठहरे हुए वक़्त ने हल्की सी करवट ली। उस दिन उसकी तबियत और दिनों की तुलना में थोड़ी बेहतर लग रही थी। माँ ने उसे नहला-धुला कर कपड़े बदले और शैम्पू किए हुए बालों को यूँ ही खुला छोड़ दिया। पलंग पर वापस न लेट कर वह सोफ़े के बैक पर सिर टिका कर बैठ गई। कमज़ोरी इतनी आ गई थी कि आँखें अपने आप मुँदने लगी, पर नींद से ऊबी हुई वह जबरिया उन्हें खुला रखने की कोशिश कर रही थी।

इस कोशिश के बीच सहसा ही उसकी आँखें फैल सी गई। सामने लाल किनारी वाली साड़ी पहने, खुले बालों के साथ विकास की माँ खड़ी थी। उनके हाथ में बड़ी-सी थाली थी जिसमें ढेर सारे फूल, चावल, लाल ईंगुर और सरसों के दानों के साथ आटे की बनी अजीब-सी आकृति थी। वे उसके चारों ओर फेरे लगाते हुए मुँह में कुछ बुदबुदा रही थी...। जाने क्यों उनकी आँखें हल्की सी लाल हो रही थी। अन्या ने अम्मा का यह रूप पहले कभी नहीं देखा था...।

उसे समझ नहीं आया कि सासू माँ को यह क्या हो गया है...? कहीं सच में वे भी तो...? उसकी आँखों के आगे हल्का अँधेरा-सा छाने लगा, पर उस अँधेरे के बीच एक अजीब सी रोशनी और गन्ध थी...। अचानक उसे लगा, भीड़ ने अम्मा को भी डायन समझ लिया है...जादू-टोना करने वाली डायन...। तो क्या पाखी के बाद अब अम्मा की बारी है...?

अम्मा विकास से कह रही थी,''आज रात को बारह बजे जाकर इसे बिल्कुल बीच चौराहे पर पर रख आना...और तुरन्त वापस चल देना...। बस ध्यान रखना, कुछ भी हो, पीछे मुड़ कर न देखना...। बाबाजी ने कहा है, कल सुबह बहू बिल्कुल ठीक होकर उठेगी...।''

''अम्माऽऽऽ...'' वह पूरी ताकत से चीखी थी। अँधेरा पूरी तरह से घिरने लगा था उस अहसास का लबादा ओढ़ कर.....।

वो साफ़ देख रही थी...निर्वस्त्र, जलती हुई अम्मा को भीड़ ने घेर रखा था और वे सबसे दया की भीख माँग रही थी...। थर-थर काँपती अन्या ने एक भयानक चीख के साथ अम्मा की पकड़ी हुई थाली पर एक भरपूर हाथ मारा। थाली में रखा सारा सामान कमरे में बिखर गया...।

अम्मा खाली हाथ हक्का-बक्का खड़ी थी।

विकास हतप्रभ थे और अन्या की माँ ज़ार-ज़ार रो रही थी,''रज्जो ताई की परछाईं से बचा कर बिटिया को सहर में ब्याहे थे, पर हमको का पता था कि सहर में भी डायनें होती हैं...। इसने तनिक उससे एक-दो बार बोल का लिया, ऊ डायन तो इसके भीतर ही ठहर गई...।''

****

लघुकथा

गोविंद शर्मा

अच्छा दोस्त

महफिल में बैठे उससे पूछ लिया गया- आपके अच्छे दोस्त कितने हैं ?

एक भी नहीं।

एक भी नहीं ? कोई एक तो होगा?

नहीं, एक भी नहीं।

सब उस पर हँस पड़े। महफिल के बाद एक ने उससे कहा- तुम्हें जवाब देना नहीं आया और अपनी हँसी उड़वा ली। तुम्हारी जगह मैं होता तो कहता, हाँ मेरा एक ही सबसे अच्छा दोस्त है, वह खुद मैं हूँ।

वही तो मैं नहीं हूँ। अगर मैं खुद का अच्छा दोस्त होता तो मुझे कितने ही अच्छे दोस्त मिल जाते।

****

भोले लोग

पुस्तक विक्रेता के पास प्रकाशक का फ़ोन आया-मैंने तुम्हारे यहाँ के लेखक की किताब की दस प्रतियाँ भेजी थी। कितनी बिकी ?

'अभी बताता हूँ...' कहते हुए उसने मोबाइल फ़ोन को कान और कंधे के बीच दबाए रखा। एक जगह रखी किताबों को गौर से देखकर बोला - सर, अभी तो एक ही बिकी है। अब मैंने किताब पर छपा लेखक का फ़ोटो देखा है। यह किताब तो आज थोड़ी देर पहले स्वयं लेखक ही खरीद कर ले गया है। कितने भोले होते हैं ये लेखक लोग। कोई ढंग की किताब खरीदता....मेरे पास तो बहुत किताबें हैं।

****

संपर्क : ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया-335063 मोबाइल : 9414482280

भाषांतर

कवि,कहानीकार और आलोचक के रूप में तेलुगु साहित्य में अफसर का काफी नाम है। इनकी कृतियों को साहित्य पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं।

वृत्ति अध्यापन। पेन्सिल्वानिया विश्वविद्यालय में दक्षिणी एशिया के साहित्य एवं संस्कृति पर केंद्रित पाठ्यक्रम का अध्यापन करते हैं। अबतक चार कविता संग्रह और दो आलोचना ग्रंथ प्रकाशित हैं। उनका एक ग्रंथ, ' The Festival of Pirs:Popular Islam and Shared Devotion in South India' ऑक्स्फर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, अमेरिका द्वारा प्रकाशित है। अब अफसर अपनी तेलुगु कहानियों को एक संग्रह के रूप में प्रकाशित करने जा रहे हैं। तेलुगु की एक साप्ताहिक वेब पत्रिका, सारंगा का संपादन भी कर रहे हैं।

संपर्क :
South Asian Studies Department
255 S.36th St. 820 Williams Hall,
University of Pennsylvania
Philadelphia,PA 19104
Email : afsartelugu@gmail.com

शांता सुंदरी, 506, वेस्टेंड अपार्टमेंट्स,
मस्जिद बांदा कोंदापुर, हैदराबाद 500084
मोबाइल : 9409033043

मुस्तफा की मौत

तेलुगु कहानी : अफसर

अनुवाद : आर.शांता सुंदरी

''बस,उस कमरे में झाँकना भी मत बेटा!'' अतीत में से फातिमा फूफी की आवाज़ बार-बार कानों में गूँज रही थी।

''अब्बाजान का दसवाँ रोज़ मना रहे हैं।'' तीन दिन पहले मुनीर भाई ने फ़ोन करके बताया था, तबसे फूफीजान की वह आवाज़ न जाने कितनी बार सुनाई देती रही मुझे !

आज सुबह पहली बस पकड़कर दोपहर तक गाँव पहुँच जाऊँगा तो दसवीं तक वहाँ पहुँचकर मुनीर भाई से, फूफीजान से और गोरी माँ से बात भी हो सकेगी, यह सोचकर मैं चल पड़ा। बात करनी है, बहुत सी बातें करनी हैं। खासकर उस कमरे के बारे में।

अब जब मुनीर भाई के अब्बा मुस्तफा अल्लाह को प्यारे हो गए तो उस कमरे का क्या होगा? वह कमरा तो उनकी वसीयत थी। क्या मुनीर उसे पा लेगा? और वैसे भी मुनीर घर का बड़ा बेटा है। अपने अब्बा की मौत का उसपर क्या असर हुआ, यह भी मैं नहीं समझ सका। पिता के ज़िंदा रहते वक्त भी इतने बड़े परिवार का बोझ उसने अकेले अपने कंधों पर ले लिया था। अब वह क्या करेगा? मुस्तफा के दिखाए रास्ते पर चलने वाले सैंकड़ों भक्तजन अब क्या करेंगे? इस तरह के कई सवाल मेरे मन में हैं। पर मेरा हर सवाल उसी कमरे से शुरू होता है और वहीं आकर खत्म भी होता है। देखते ही देखते कई रंग बदलनेवाली उलझी हुई तसवीर सी ज़िंदगी थी मुस्तफा की। वह तसवीर अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग रंगों में नज़र आती है। कौन सा रंग मुस्तफा की ज़िंदगी को उभारता है यह मेरे लिए हमेशा एक पहेली जैसी ही लगती थी।

वैसे तो सारा गाँव यही समझता था कि मौत बाबा मुस्तफा के पास फटक नहीं सकती। उसकी कहानियाँ सुनकर, उसकी बातों में आकर लोग बिना सोचे उन बातों पर यकीन करने लगे थे। गाँव की ये बातें सुनकर और इन कहानियों को दूर-दूर के गाँवों तक फैलते देखकर मैं भी अंधाधुंध उनके चपेट में आ गया और यकीन करने लगा। सैंकड़ों

लोगों को पक्का यकीन हो गया कि अगर कयामत तूफ़ान की तरह आएगी तो मुस्तफा उसके सिर चढ़कर नाचेंगे। अगर वह आग बनकर आएगी तो वह उस आग से खेलेंगे। उन बातों पर मैं यकीन नहीं करता। मौलाना का मतलब मेरे लिए मुनीर के अब्बा हैं, फातिमा फूफी के शौहर हैं। मेरे साथ बचपन में खेलने वाले मुनाफ, मुजफ्फर, मुमताज, मोमिन, महमूदा के अब्बा हैं। सबसे ज़्यादा मैं जिन गोरी माँ से प्यार करता हूँ, उनकी नज़र में कुछ वक्त इज़्ज़त पानेवाले शख्स हैं। गोरी माँ की बातों में कहना हो तो,'दीन की मालूमात रखनेवाला, इबादत का सही मतलब जाननेवाला' है।

पर आख़िर उन्होंने इन हुनरों को बचाकर नहीं रखा। सबको ठुकराकर चले गए... उस अँधेरे कमरे में! जब मुनीर भाई ने कहा कि अब्बा नहीं रहे। तब मैं कुछ तय नहीं कर पा रहा था कि जाऊँ या नहीं जाऊँ, अगर चला भी गया तो लगभग मेरे परिवार जैसा मुनीर के परिवार के लोगों से मिल सकूँगा या नहीं। मन कह रहा था मुस्तफा को आख़िरी नज़र एक बार देख लूँ, पर उससे ज़्यादा यह चाहा कि मुनीर से, जिसने अपना पिता खोया है, मिलना ज़्यादा ज़रूरी है। पर मौत को अपने सामने देखने की हिम्मत मुझमें नहीं थी।

मुनीर मेरा जिगरी दोस्त है। बचपन में हमारे घर दूर थे पर हम दोनों दिन में ज़्यादातर साथ ही रहते थे।एक ही क्लास में थे तो पढ़ाई भी साथ ही करते।

'क्या तुम दोनों जुड़वाँ हों?' लोग कुछ मज़ाक में और कुछ जलन की वजह से यही कहते थे। मैं ने गाँव बदला, पर उससे दोस्ती नहीं बदली। हाँ इतना फर्क है कि दोनों के बीच खबरें अब इतनी तेज़ी से नहीं पहुँचतीं!

एक दिन शाम को मैं मुस्तफा के चबूतरे पर बैठकर उस सफेद परदे को धीरे से खींचने

लगा तो मोमिन ने देख लिया और ज़ोर से चीख उठी,''अम्मी! अफू भाई अब्बजान के कमरे में जा रहे हैं अम्मी!'' अंदर कहीं से फातिमा फूफी दौड़ती आईं और ''ना बेटा, ना! वो देखेंगे तो मार डालेंगे...'' कहकर मुझे वहाँ से खींच ले गईं।

सच पूछिए तो उनके घर में मेरे लिए कोई रोक टोक नहीं है। ऐसे में यह बात एक दो बार सुनी तो मुझे अजीब लगा। वह नई बात मेरे अंदर वजह जानने की इच्छा को बढ़ाती गई। वैसे क्या है उस कमरे में? मुनीर भाई का घर है तो छोटा, और बहुत पुराना भी। ऐसे में एक कमरा उसके अब्बजान के लिए अलग रखने से जैसे हमारे हमेशा भागनेवाले पाँव बाँध दिए गए थे। तीन कमरों वाले घर में अब बचे थे दो कमरे। दो कमरों में आधे दर्जन लोगों का रहना मतलब एक दूसरे से टकराते रहना, गुस्सा आने पर एक दूसरे को कोसना...बस ! हमारा खेल कूद बंद, कूदना फुदकना बंद। नतीजा यह हुआ कि मुनीर के साथ मैं और उसकी बहनें और भाई बाहर जाकर पेड़ों के नीचे या सड़कों पर खेलने लगे, पर इसकी आदत डालने में हमें काफी वक्त लगा।

तभी हमें बाहर की दुनिया भी समझ में आने लगी। इस बाहर की दुनिया में मुस्तफा का बाबा में तबदील होना भी समझ में आने लगा। देखते ही देखते मुस्तफा पूरी तरह उस कमरे का होकर रह गए। वही उनकी दुनिया हो गई। वह उसी में पूरी तरह समा गए।

मुस्तफा का कमरा मेरे लिए न समझ में आनेवाली मिस्टरी था। उस कमरे के राज़ को पर्दाफाश करने का सपना मुझे रातों को सोने नहीं देता था। और फिर हम बच्चों को उस कमरे में जाने नहीं दिया जाता तो मैं और भी उतावला होने लग गया।

उन्हीं दिनों गोरी माँ ने हमें कुरान पढ़ाना शुरू किया। हमारे मुसलमानों में यह माना जाता था कि ग्यारह साल पूरे होने से पहले कुरान पूरा करना ज़रूरी है। अरबी की पहली किताब 'अलिफ लाम मीम' खत्म करने के बाद उन्होंने कहा,'' बच्चे, इस जुम्मे के दिन नमाज़ के बाद घर आना। बेल्लम फातिहा पढ़ा कर कुरान- ए -शरीफ शुरू कर दूँगी।'' तो एक नई बात सीखने की मन में उमंग जागी। अरबी की पहली किताब पढ़ने के बाद वह मेरे लिए अदरख का मुरब्बा बन गया। अच्छा, इस मुरब्बा की कहानी भी बाद में बताऊँगा आपको-सुबह की चाय से पहले मीरा मियाँ का अदरख का मुरब्बा नहीं खाया तो हमारी सुबह शुरू होती ही नहीं थी। कुरान पढ़ने से पहले ही गोरी माँ ने हमें कुछ सूरह याद करा दिए। अरबी मुरब्बा की तरह वे हमारी जबान से बह जाते। हर जुम्मे के दिन नमाज़ के वक्त मस्जिद में मौलाना के मुँह से अरबी भाषा सुनना भी अच्छा लगता था। जगने की रातों में सिर्फ उनकी आवाज़ सुनने के लिए हम रात भर मस्जिद में ही रह जाते। पर देखते ही देखते सब कुछ बदल गया. मुस्तफा की आवाज़ बदल गई। तौर तरीका बदल गया। लगा कोई नया शख्स उनके बदन में आकर बस गया।

मस्जिद के बाहर मुस्तफा ने जो नई दुनिया बसाई उसमें हमारे लिए जगह नहीं रही...उस कमरे के साथ-साथ।

''उस कमरे में न जाओ तो ही बेहतर है। तुम्हारी सोहबत ऊपरवाले अल्लाह से है, नीचे बैठे इस शैतान से नहीं!'' एक दिन गोरी माँ ने बिना मतलब हमें समझाया था। उस दिन से हम लोगों ने तय कर लिया कि उस कमरे में जाकर ही रहेंगे।

2

क्या है उस कमरे में? इसी बात को जानने के लिए बेताब रहते थे हम।

उस कमरे में छुपे राज़ के बारे में सोचते-सोचते हमारी नन्ही दुनिया जितनी कल्पना कर सकती थी उतनी करके लौटते थे। उस सफेद परदे को हटाकर अंदर कदम रखने से क्या क्या दिखाई देगा? फूफी जान हर रात उस परदे को धोकर सुखाती और सुबह-सुबह फिर कमरे के दरवाज़े पर लटका देतीं।

''क्यों ऐसा करती हो फूफी जान?'' मैं भी लगभग रोज़ पूछ लेता।

''सनकी हो गए हैं बेटा...जब शैतान सिर पर चढ़ कर बैठ जाता है तो सब कुछ टेढ़ा ही दिखाई देता है। तेरे फूफा का रवैया भी ऐसा ही है!'' फूफी कहतीं।

मुनीर मुझसे दो तीन साल बड़ा था पर उसकी समझ में भी यह पूरी तरह नहीं आता था। लेकिन उसकी बातों से भी इस मामले के बारे में नापसंद ही झलकती थी। घर में सबकी अपनी-अपनी सोच अलग हो गई। वह कमरा हमारे ज़ेहन में इस कदर समा गया कि रातों को मैं उसी के सपने देखने लगा था। सपनों में मुस्तफा खुद हमें उस कमरे में ले जाते और वहाँ के अजीब-अजीब नज़ारे दिखाते। हम उनकी बातों को हैरान होकर सुनते और वहाँ की चीज़ों को छू-छूकर देखते। इन सपनों के बारे में एक दूसरे को बताते भी थे। हमारी बातें सुनकर मुनीर कहता,'' तुम लोग तो पगला गए हो! उस कमरे में ऐसा कुछ है ही नहीं भई!''

''तुमने अंदर जाकर देखा?''

''नहीं,अब्बा किसी को आने नहीं देते।''

''फिर तुम्हें क्या मालूम ?''

''कुछ नहीं मालूम, और मैं मालूम करना भी नहीं चाहता!'' कहकर वहाँ से वह चला जाता।

गोरी माँ से पहली बार पूछा तो बोलीं,'' मुस्तफा बहुत ज़्यादा जानता है, यही उसका रोना है ! बेकार की ख्वाहिशें पालकर सपनों में जीने लगा है। इस तरह के रवैये को अल्लाह कभी माफ़ नहीं करेगा।'' और उस रोज़ सूरह अल बकरा हमें उन्होंने याद करवाया। गोरी माँ की खासियत यह है कि सिर्फ याद कराके चुप नहीं रहतीं। उनका मतलब भी समझाती हैं। फिर भी हमें पूरा यकीन था कि उनके बताए मतलब से ज़्यादा नायाब दुनिया उस कमरे में है!

हमें लगता कि हमारी समझ में न आनेवाला कुछ अनोखा खज़ाना उस कमरे में छुपा है। हमसे उम्र में बड़ा मुनीर भाई इन बातों को कुछ-कुछ समझने लगा था। पर खुलकर कुछ नहीं बताता था। हमारा यह उतावलापन खत्म होने से पहले मुस्तफा का घर पाक जगह बन गया। धीरे-धीरे लोगों की गिनती बढ़ने लगी। एक दो महीने बाद उनके चेलों में से किसी ने घर से कुछ ही दूर एक कमरा बनवाया। एक दिन सुबह हम उठे तो देखा कि उनका सारा सामान उस कमरे में ले जाया गया। उस कमरे के सामने एक पेड़ था जिस पर एक हरे रंग का झंडा फड़फड़ाता दिखाई दिया।

''इनकी शामत आ गई !'' कहकर

फूफीजान सिर पीटने लगी।

''वह क्या कर रहा है, यह खुद मुस्तफा भी नहीं जानता!'' इतना कहकर गोरी माँ ने चुप्पी साध ली। पर मैं चुप नहीं रह सकता था। एक बेचैन समंदर मन में हिलोरें लेने लगा। जैसे काले बादल घिर आए और धड़ाधड़ बरसने को हैं। जैसे कुछ अनहोनी हो रही हो और सारा गाँव उस्के चपेट में आकर डूब जाएगा, ऐसा एक अनाम डर।

यह सब हो रहा था तभी मेरे अब्बा की बदली दूसरी जगह हो गई। गाँव के पास के उस शहर में हम गरमी के मौसम में पहुँच गए। उसके बाद गाँव सिर्फ एक याद बनकर रह गया। मुनीर भी सिर्फ बचपन का एक दोस्त था। पर वह कमरा मेरे मन के किसी कोने में ज्यों का त्यों था। कमरे के दरवाज़े पर लगा सफेद परदा और कमरे के सामने पेड़ पर लगा हरा झंडा कभी-कभी आँखों के सामने लहरा जाते।

मुस्तफा बाबा के बारे में कभी किसी के मुँह से कोई बात भर सुन लेते थे। कभी क्भार मुनीर फ़ोन कर देता था। गाँव की खबरें सुनाता। पर अपने अब्बा के बारे में बिल्कुल बात नहीं करता। गाँव में रहते वक्त ही मैंने गौर किया था कि वह अपने अब्बा की शख्सियत को धीरे-धीरे मन से मिटाने की कोशिश कर रहा था। हमारे शहर आने के बाद जब वह अब्बा का नाम तक नहीं लेता तो मुझे अजीब नहीं लगा।

मुनीर की नज़र में वह कमरा एक दुश्मन था। कुछ भी न जानने या बहुत ज़्यादा जानने से बना एक घेरा है वह कमरा। आख़िर मुस्तफा उस कमरे में क्या करते थे? पर एक बात तो सच है, वह कमरा ही उनके अंदर की और बाहर की दुनिया की चौखट था। उससे आगे न उनका कोई परिवार था, न ज़िम्मेदारियाँ, न मस्जिद, न घर, न घरबार और न बाल बच्चे। बस थे तो सिर्फ वे लोग जो उन्हें खुदा मानते थे। उनके भक्त पूजा और व्रत करते थे।* और उनके लिए मुस्तफा खुदा से जो बातें करते थे, वे बातें बस।

हर बार उनके भक्त आते और अपनी स्मस्या कहते। फ़ौरन मुस्तफा उस कमरे में अकेले जाते और आधे घंटे के बाद बाहर आते। उस आधे घंटे में मुस्तफा की करामत के बारे में भक्त जन तरह-तरह की कहानियाँ बनाते।

मुस्तफा के लिए भजन और पूजा दिन ब दिन बढ़ते जाने लगे तब गोरी माँ ने कई बार उन्हें आगाह किया,'' मुस्तफा, कयामत के दिन अल्लाह के सामने जवाब देने के लिए तेरे पास कुछ भी नहीं रहेगा। तुम गलत कर रहे हो। यह सब इसलाम में कहीं नहीं बताया गया था। तुम पाप की गठरी बाँध रहे हो ! पर मुस्तफा सुने तब ना? पर मुस्तफा में एक अच्छाई ज़रूर थी, उन्हें पैसे का लालच नहीं था। वे सोचते थे कि वे जो कर रहे हैं वह बड़ा ही पवित्र और ऊँचा काम है।

पर इससे परिवार का नुक्सान ज़रूर हुआ था। जब से मुस्तफा बाबा बन गए, परिवार का सारा बोझ मुनीर के सर पर आ गया। इस बोझ तले दबकर मुनीर छटपटाने लगा। यह उससे नहीं हो पा रहा था और एक और नतीजा यह हुआ कि सारा परिवार मुस्तफा से नफ़रत करने लगा।

''असल में इबादत का मतलब क्या परिवार को बेसहारा करना है?'' गोरी माँ ने कई बार समझाने की कोशिश की पर मुस्तफा के पास हमेशा एक ही जवाब होता,''यही मेरा रास्ता है, मुझे इसी पर जाने दो।'' इतना कहकर वे अपने कमरे में चले जाते। उस कमरे का भूत सवार होने से पहले मुस्तफा पाँचों वक़्त नमाज़ पढ़ते थे। उनके माथे पर पड़ा काला धब्बा अल्लाह की दस्तख़त लगता था, उसकी श्रद्धा की निशानी की तरह।

रमज़ान का महीना शुरू होते ही मस्जिद में मुस्तफा की तकरीर सुनने का इंतज़ार करते रहते थे। उनकी आवाज़ में कुरान का पाठ सुनना बड़ा अच्छा लगता था। ऐसा लगता था, कुरान न पढ़ सकने वाली ज़िंदगी भी क्या ज़िंदगी है ! गोरी माँ भी उन दिनों मुस्तफा को बहुत मानती थी और गाँव में तो उनकी बात को सब सर आँखों पर रखते थे। अचानक मुस्तफा किसी आध्यात्मिक चिंतन मनन में चले गए और उन्हें बीतते वक्त का भी ख़याल न रहा। उसके बाद वही उनकी राह बन गई। ''वह बिना सोचे समझे उसी को भक्ति का मार्ग समझकर रास्ता भटक गया। अब हम कुछ भी नहीं कर सकते।'' गोरी माँ ने एक दिन कहा था। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया। लगा मुस्तफा ने उस कमरे में खुद को ज़िंदा दफना लिया।

पर इस सवाल का जवाब जानने से पहले हम गाँव छोड़कर चले गए। कभी-कभार मुनीर फ़ोन कर देता या उसके दोस्तों से उसकी खबर मिलती रहती। पर फ़ोन पर की गई एकाध बातों से मुनीर भाई को जानना कहाँ मुनासिब होता? अब अपने अब्बा की मौत को मुनीर ने किस तरह समझा यह मैं सही तरीके से नहीं जान पाया। मुस्तफा के कमरे के राज़ की तरह यह भी एक राज़ ही रहा।

जब मैं बस से उतरा तो मुनीर को वहाँ मेरे इंतज़ार में खड़ा पाया।

3

क्या कहूँ कुछ समझ में नहीं आया? मुनीर के ग़म के बारे में नहीं, मैं उस कमरे के बारे में ही सोच रहा था।

''चाय पीकर चलते हैं,'' पहले उसी ने कहा। बस स्टैंड पर चाय की दूकान का राजू मुझे पहचानकर पूछ बैठा,''क्या हाल है साब?''

''ठीक हूँ !'' कहा और मुनीर के साथ पेड़ के नीचे खड़े होकर चाय पीने लगा। जब तक चाय पीते रहे मुनीर मेरे बारे में ही पूछता रहा। अपने बारे में कुछ नहीं बताया। मैंने भी मिलते ही पूछना ठीक नहीं समझा। सोचा, वहाँ से निकलते वक्त पूछ लूँगा।

मुनीर वैसे भी कम बोलता था। उसे देखकर लगा अब और भी चुप-चुप रहने लगा है। उसका चेहरा देखकर लगा काफी थक गया है। चेहरा पिचका हुआ दिखा। सिर के बाल आधे सफेद हो गए। कमज़ोर भी बहुत हो गया। लगा सब तरह से निढाल हो गया है। मुस्तफा ने बाबा बनकर इन्सान के रूप में बहुत कुछ खो दिया था, इसका जीता जागता नतीजा था मुनीर। परिवार के बोझ तले उसकी कमर सचमुच झुक गई थी।

मुस्तफा की मौत के बारे में बात कहाँ से शुरू करूँ, यह मैं सोचता ही रह गया कि इतने में उसके घर पहुँच गए। फातिमा, मुनीर के भाई, बहनों ने मुझे देखते ही खुशी

जाहिर की।

गोरी माँ भी वहीं थीं। मुझे देखते ही गले लगाकर मेरे सिर पर उसने हाथ फेरा। बहुत दिनों के बाद गोरी माँ को देखकर मुझे जरा तसल्ली सी हुई। उनके चेहरे पर हमेशा सुकून का भाव रहता है।

मैं बरामदे में बैठ गया और मुस्तफा के कमरे को ढूँढ़ने लगा। उस दिन दोपहर को सारी रस्में पूरी हुईं और सभी रिश्तेदार चले गए। तब मुनीर कुर्सी पर ही बैठे-बैठे झपकियां लेने लगा। मैं उसीको देखता रहा।

उसके चेहरे पर सुकून भी था और परेशानी भी थी। एक दु:ख की लकीर भी और तसल्ली भी। कभी-कभी वह मुझे कर्बला का योद्धा दिखाई देता! उस युद्ध में कुछ लोगों की जानें बची थीं पर इस कर्बला के युद्ध में वह हमेशा अकेला लड़ता दिखाई देता है। कितने युद्ध करने पड़ते हैं एक ज़िन्दगी में! इबादत अमन का रास्ता भी हो सकती है और बड़ा युद्ध भी।

पर ज़िंदगी तो लडाइयों की गड़बड़ी है। इतने सारे युद्ध न कर सकने की वजह से ही मुस्तफा ने एक ही युद्ध का सहारा लिया था?क्या मालूम? मुस्तफा की लड़ाई क्या थी, यह मैं नहीं जानता। मुनीर भी नहीं जानता। एक बार गोरी माँ से पूछा तो बोलीं,''रूहानियत (आध्यात्मिकता) मैदान जैसी है। आसमान और धरती का मिलन उस मैदान के आख़िरी छोर पर दिखाई देना चाहिए। इस सँकरे कमरे में वह मुमकिन नहीं होता।'' बस इतना कहकर चुप हो गईं। क्या यह सच है? अल्लाह ने सात आसमानों की बात कही थी, पर क्या सात धरतियों के बारे में कहीं कहा था?मालूम नहीं। बहुत सी बातें मालूम नहीं होतीं।

मुस्तफा ने यहाँ लोगों के लिए एक आसान सी जन्नत बना दी। लोग उसी को जन्नत मानकर मुस्तफा को भगवान् मानने लगे। पर अपनों के लिए तो मुस्तफा शैतान ही रहे ! यह फर्क कैसे आया? मुनीर ने अचानक आँखें खोलीं और कहा,'' ज़रा बाहर घूम आएँ?'' तो मैं अपने ख़यालों से बाहर आया।

''चाय पीकर जाना,'' कहकर हमारे हाँ कहने से पहले फातिमा फूफी ने हमारे सामने चाय के प्याले रख दिए।

फूफी की आँखें हमेशा दो शांत नदियों जैसी रहती थीं। उसमे कभी कोई पत्थर फेंक भी दे तो उसे नदी अपने पेट के अंदर खींच लेती। ऊपर एक भी लहर दिखती नहीं। हालत कैसी भी हो, संजीदगी से उसे मान लेती थीं वे आँखें। इतने साल साथ रहकर इतने सारे बच्चों को जन्म देने वाले शौहर का बदन जब ठंडा पड़ गया तो उनपर क्या असर हुआ? सब औरतों की तरह छाती पीटती, ज़मीन पर हाथ पटक पटककर रोती रहीं? शायद नहीं या एक कोने में बुझे दीये की तरह सिमटकर बैठी रहीं? पर मुझे नहीं लगता ऐसी भी रही होंगी वैसे मैं किसी भी हालत में कल्पना में उन्हें नहीं देख सका!

''चल बाहर चलते हैं,''मुनीर ने चाय खत्म करके कहा।

''यार मेरे मन में एक सवाल है, पर झिझक रहा हूँ कि तू क्या सोचेगा? तेरे अब्बा की मौत की खबर लोगों को नहीं दी?''

''यहाँ के लोग जानते हैं, पर दूसरे गाँवों में खबर नहीं की। जान बूझकर नहीं बताया।''

''क्यों?''

''यह सब हमें पसंद नहीं, तू भी तो जानता है। मैं, माँ और गोरी माँ शुरू से इसके खिलाफ थे।''

''हां, मैं जानता हूँ, फूफी जान को तो बिलकुल भी पसंद नहीं था यह रास्ता। ''

''सच पूछो तो यह कोई रास्ता ही नहीं था। रास्ते में एक मोड़ था, बस। भगवान् एक नकाब था और भक्ति एक धोखा।''

''समझ गया, पर जब वे रहे ही नहीं तो यह सब सोचना बेकार है ना?''

''पता नहीं क्यों यह सब हमें बहुत बेचैन कर गया। सालों से आग पर राख जमी हुई थी। ऐसा वक्त भी आ गया कि हम बर्दाश्त नहीं कर सके।''

इससे ज़्यादा इस मामले में उससे बात करना मुझे ठीक नहीं लगा। वैसे भी इसके बारे में वे सब क्या सोचते हैं, यह तो मुझे पहले ही मालूम था।

''तो फिर वह कमरा?''

''देखना चाहता है? चल दिखाता हूँ!'' कहते हुए उस कमरे के पास, और उस पेड़ के पास ले गया, जिस पर झांडा लहराता था। मैंने आते ही गौर किया था कि वहाँ कमरा नहीं है। पर मुझे लगा मुझे ठीक से याद नहीं रहा होगा, इसलिए कुछ भी नहीं पूछा।

''कमरा यहीं रहता था,'' उसने वह जगह दिखाई पर ऐसा कोई निशान वहाँ नहीं था जो यह बता सके कि कभी वहाँ एक कमरा हुआ करता था। सब कुछ साफ सफाचट था।

''अब्बा के इंतकाल के अगले दिन ही उसे तोड़ डाला हमने,''मुनीर ने कहा।

''अच्छा ? इतनी जल्दी?''

''हाँ हम उसे फौरन खत्म कर देना चाहते थे। हमारे लिए और लोगों के लिए वहीं उस किस्से को खत्म कर देना ठीक लगा।'' मुनीर ने साफ कह दिया।

मैं वहीं पड़ी एक चट्टान पर बैठ गया और कल्पना की कि वह कमरा अभी वहीं है। बचपन से मेरा पीछा करने वाला वह कमरा अब भी सिर्फ एक कल्पना की चीज़ थी। मुझे लगा, दिखाई न देनेवाले उस कमरे के इर्द-गिर्द मुस्तफा का साया मंडरा रहा है।

''चलो यार, अब चलते हैं,'' मुनीर ने मेरी भावनाओं की परवाह न करते हुए कहा। जब कि वह जानता था कि मैं अभी भी उस कमरे के बारे में ही सोच रहा हूँ।

''वह कमरा मेरे लिए तो हमेशा एक अँधेरी गुफा ही रही। मैं भगवान् को मानता हूँ, पर वह ऐसी अंधेरी गुफाओं में, अजीब ओ गरीब तिलिस्मों में, या कमरों में होता है, यह मैं नहीं मानता। जब मैंने वह कमरा तोड़ डाला, तब जाकर मुझे उस अँधेरे से छुटकारा मिला। '' मुनीर ने कहा।

''अच्छा, तो यह किस्सा इस तरह खत्म हुआ था?'' मैंने कहा।

''हाँ, कुछ किस्से ऐसे भी होते हैं जिन्हें हमें जबरन खत्म करना पड़ता है।'' मुनीर ने कहा। उसकी इस बात ने रात भर मुझे सोने नहीं दिया!

****

मुस्तफा जैसे कुछ मुसलमान, पूजा, व्रत और भक्ति को मानते हैं। इस कहानी में हरी झंडी भी इसी विश्वास का द्योतक है।

लन्दन की गलियाँ

शिखा वार्ष्णेय

गर पाने हों मोती सच्चे तो उतरो गहरे सागर में,
जो देखना हो शहर तो गलियों से गुज़र कर देखो।

सभ्यता की शुरूआत में जब शहरों का विकास आरम्भ हुआ होगा तब ये गलियाँ बेशक आवागमन का साधन रही होंगी फिर समय के साथ शहरों में बड़ी-बड़ी इमारतें बनती गईं, चौड़ी -चौड़ी सड़कों का जाल बिछता गया परंतु फिर भी इन गलियों का अपना अस्तित्व बना रहा। ये बसाए रहीं स्वयं में शहर की रूह, समाए रहीं खुद में इसका इतिहास और बखानती रहीं शहर की गाथाएँ।

आज इस दुनिया में कितने ही विकसित और आधुनिक शहर क्यों न हों, हर शहर में उसकी गलियों का अपना ही महत्त्व है। शहर की संस्कृति, इतिहास और लोगों का स्वभाव जानने के लिए इन गलियों से परिचय करना आवश्यक है।

ऐसे ही दुनिया के सबसे आधुनिक और विश्व की आर्थिक राजधानी कहे जाने वाले शहर लन्दन में भी अनेकों प्राचीन गलियाँ है,चलिए ऐसी ही कुछ दिलचस्प गलियों से आज हम गुज़रते हैं-

सबसे पहले चलते हैं सबसे प्रमुख -

डाउनिंग स्ट्रीट पर। व्हाइटहॉल में स्थित इस गली को सबसे अधिक यूके के प्रधानमंत्री और राजकोष के चांसलर के आवास के लिए जाना जाता है। अपनी राजसी आन-बान और शान बघारती ''महारानी की सरकार' की केन्द्र यह सड़क, संसद भवन और बकिंघम पैलेस के बेहद करीब है और यहाँ तक पैदल चलकर आया जा सकता है।

जैसा कि पहले कहा गया गलियाँ अपना इतिहास और जड़ों को सहेजे हुई होती हैं ऐसी ही एक गली है-

पोर्तोबेल्लो रोड - लगभग दो मील लंबी यह गली सीधा नॉटिंग हिल के बीचों-बीच से गुजरती है और एक 'हाट' (प्राचीन तरह के बाज़ार) का गढ़ है जो यात्रियों और स्थानीय लोगों को बेहद आकर्षित करता है। यूँ तो यह हाट- बाज़ार ताज़ा सामान की बिक्री के लिए रोज़ लगता है; परन्तु हर शनिवार को यहाँ सेकेण्ड हैण्ड कपड़े और प्राचीन वस्तुएँ भी बेचीं जाती हैं। तो यदि आप एक विकसित राष्ट्र के विकसित शहर की संस्कृति और मूल को

मोस्को स्टेट यूनिवर्सिटी से टीवी जर्नलिज़्म में परास्नातक करने के बाद कुछ समय भारत में एक टीवी चेनल में न्यूज़ प्रोड्यूसर के तौर पर काम किया। वर्तमान में लन्दन में स्वतंत्र पत्रकारिता और लेखन में सक्रिय। ब्लोगोत्सव और सम्वाद सम्मान द्वारा संस्मरण एवं यात्रा वृत्तांत के लिए वर्ष की श्रेष्ठ लेखिका सम्मान।

ई मेल-
shikha.120@googlemail.com

जानने और समझने में रूचि रखते हैं तो यह गली आपकी मददगार हो सकती है....।

अब चलते हैं एक बेहद दर्शनीय और प्रसिद्ध गली में जिसका नाम है- **दि स्ट्रैंड** - यदि हिन्दी में इसका अनुवाद करें तो होगा - तट या किनारा - इसका यह नाम शायद इसलिए रखा गया होगा क्योंकि यह सड़क थेम्स नदी के किनारे स्थित है और लन्दन शहर को वेस्टमिंस्टर से जोड़ती है। यदि आप लन्दन देखने आए हैं तो इस गली से गुज़रे बिना आपकी यात्रा अधूरी है। कहा जाता है पिछली सात सदियों से यह गली, सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध गलियों में से एक रही है।

अब रुख करते हैं पूर्व की ओर। जी हाँ लन्दन के पूर्व में स्थित यह-**ब्रिक लेन** पश्चिम में भी पूर्व का अहसास कराती है।

कभी इस गली को मलिन बस्तियों और अपराधों के लिए जाना जाता था परन्तु अब इसे बेहतरीन करी, प्राचीन सामानों और विभिन्न रेस्टौरेंट और कैफे के लिए जाना जाता है। दुनिया भर के कलाकारों द्वारा दीवारों पर बनाए गए चित्र और स्वादिष्ट पकवानों के लिए जानी जाने वाली यह गली आज लन्दन की सबसे प्रसिद्ध गलियों में से एक है और आपको पूर्व की सैर करने का मौका देती है।

ब्रिक लेन, बेथेनल ग्रीन से शुरू होकर, स्पिटलफ़ील्ड्स से गुज़रती हुई ह्वाइटचैपल की ओर बढ़ती है। पहले इसे 'ह्वाइटचैपल लेन' के नाम से जाना जाता था परन्तु 15वीं सदी में यहाँ ईंट और टाइल्स के व्यापारियों द्वारा अपनी दुकान लगाए जाने के कारण इसका नाम ब्रिक लेन कर दिया गया। सेन्ट्रल लन्दन से इस ब्रिक लेन तक आसानी से मेट्रो या रेल से पहुँचा जा सकता है और उसके बाद आप साइकिल किराए पर लेकर इस दिलचस्प बाज़ार में आराम से घूम सकते हैं। एक समय कहा जाता था कि यदि आपकी साइकिल चोरी हो गई है तो वह ज़रूर ब्रिक लेन में बिकी होगी और आप वहाँ से उसे फिर से खरीद सकते हैं। परन्तु समय के साथ और लन्दन पुलिस की कोशिशों के परिणाम स्वरूप अब यह गली चोरी की साइकिलों के लिये नहीं बल्कि खाद्य पदार्थों, प्राचीन सजावटी सामानों, फर्नीचर और कला की अन्य वस्तुओं को खरीदने के लिए बेहतरीन स्थान है। खास कर एशियन करी जिसकी खुशबू यहाँ सुबह से ही आने लगती है और जिसकी वजह से इसे सन् 2012 में 'करी कैपिटल' का नाम भी दिया गया। इस करी के इस गली में पचास से भी ज़्यादा रेस्टौरेंट हैं; जिनमें से कुछ तो प्रिंस चार्ल्स जैसे अपने शाही मेहमानों के लिए प्रसिद्ध भी हैं।

ब्रिक लेन, आज इस गली के आसपास के इलाके में रहने वाले मुख्य रूप से बंग्लादेशी हैं; इसलिए इसे लन्दन वासियों द्वारा ''बंग्ला टाउन'' भी कहा जाता है। 20वीं सदी के बाद से, यह इलाका, विशेष रूप से बंग्लादेश से प्रवासियों के लिए सबसे लोकप्रिय स्थानों में से एक रहा है।

ऐसे ही दक्षिण, पूर्व एशियन प्रवासियों की बहुलता लिए लन्दन में कई और गालियाँ हैं जिनमें **इल्फोर्ड लेन, साउथ हॉल, गेरार्ड स्ट्रीट (चाइना टाउन)** आदि प्रमुख हैं; जहाँ आप दक्षिण पूर्व एशिया की संस्कृति, परिधान, खानपान और वातावरण से रू-ब-रू हो सकते हैं और जिन गलियों से गुज़रते हुए एक पल के लिए भी आपको यह महसूस नहीं होता कि आप उस स्थान विशेष में न होकर किसी और देश में हैं। लन्दन में इन बहु संस्कृति गलियों के अलावा कुछ गलियाँ ऐसी भी हैं जिनके नाम बेहद मज़ेदार और अजीब हैं। यह जानना काफी दिलचस्प होता है ये अजीब ओ गरीब नाम आख़िर इन गलियों के कैसे पड़े होंगे-

जैसे **पेटीकोट लेन** - पेटीकोट लेन लंदन का विश्व प्रसिद्ध रविवार बाज़ार है; जहाँ मुख्य रूप से डिज़ाइनर माल और कपड़े मिलते हैं। हालाँकि अब इस गली का नाम पेटीकोट लेन नहीं है। सन् 1886 में किसी भी तरह के अंत: वस्त्रों के नाम के सन्दर्भों से बचने के लिए इसका नाम बदल कर इस इलाके के नाम पर **मिडिलसेक्स स्ट्रीट** कर दिया गया।

इसी तरह एक गली प्रेम के लिए भी है जिसे **लव लेन** ही कहा जाता है - शायद मध्य युग में सेक्स खरीदने के लिए इस गली में आया जाता था।

इसी तरह **गटर लेन, ब्लीडिंग हार्ट लेन, हा हा लेन** जैसी कुछ और गालियाँ लन्दन में हैं; जिनके ये दिलचस्प और अजीब नाम कैसे पड़े इसके बारे में कहानियाँ तो कई हैं परन्तु पक्के तौर पर किसी को नहीं पता; जो भी हो ये गलियाँ आत्मा हैं इस शहर की, जहाँ से इसकी प्राचीन संस्कृति और वातावरण की सुगंध आती है। नागरिकों का रहन -सहन, मानसिकता और समाज का आइना हैं ये गालियाँ, जिनमें झाँककर आप इतिहास के पन्नों तक पहुँच सकते हैं।

****

प्रवासी साहित्य का स्वरूप एवं अवधारणाएँ

सुबोध शर्मा

देश के भीतर और बाहर हिन्दी की श्रीवृद्धि करने में अनेका-अनेक भारतीय अपना महती योगदान दे रहे हैं। भारत से इतर देशों में रह रहे भारतवंशी हिन्दी को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाकर हिन्दी भाषा के विस्तार के साथ- साथ हिन्दी का विकास भी कर रहे हैं। इस कार्य में भारतीय दूतावास के अधिकारी, कर्मचारीगण तो अपना सहयोग करते ही हैं, साथ ही विदेशी विश्वविद्यालयों में नियुक्त हिन्दी भाषा-भाषी प्राध्यापकों की भूमिका भी अहम है। यह तो सरकारी स्तर की बात हुई; इसके इतर कई संस्थाएँ हैं, जो भिन्न-भिन्न कार्यों से हिन्दी का प्रचार और प्रसार कर रही हैं। विदेशों से शुरू हुईं कई वेब पत्रिकाओं ने भी हिन्दी को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाया। अनेक भारतवंशी भी हैं जो अपने नियमित लेखन व अध्यापन से विदेशों में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के काम में जुटे हुए हैं। इन्हीं रचनाकारों में एक नाम सुधा ओम ढींगरा का आता है; जो अपनी रचनाधर्मिता से प्रवासी रचनाकारों में 21वीं सदी के दूसरे दशक में अग्रणी पंक्तियों में खड़ी दिखती हैं। अमेरिका के नॉर्थ कैरोलाइना में निवास करने वालीं सुधा ओम ढींगरा अपनी जीवटता के कारण ही विश्वविख्यात हैं। हिन्दी-चेतना त्रैमासिक पत्रिका की सम्पादिका के रूप में सुधा ओम ढींगरा ने देश-विदेश में रह रहे विश्वभर के तमाम हिन्दी रचनाकारों को एक प्लेटफार्म उपलब्ध कराया है। इस पत्रिका के माध्यम से आज अनेक जाने-माने रचनाकारों को एक बड़ा पाठक वर्ग उपलब्ध हुआ है। आजकल सुधा ओम ढींगरा अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका विभोम-स्वर की प्रमुख सम्पादक और शिवना साहित्यिकी की सलाहकार सम्पादक हैं। विभोम-स्वर पत्रिका अमेरिका और भारत से प्रकाशित होती है। वैश्विक रचनाकारों में एक सेतु का काम कर रही है।

विदेशों में रह रहे प्रवासी रचनाकारों ने अपने नए परिवेश में नई स्फूर्ति, नई चेतना और अपने उत्तरदायित्व को निभाते हुए अपनी मातृभाषा में अपने भावों की अभिव्यक्ति गद्य, पद्य और अन्य कई साहित्यिक विधाओं के माध्यम से की। उनके इन प्रयासों को पाठकों तक पहुँचाने का कार्य सुधा ओम ढींगरा त्रैमासिक पत्रिका हिन्दी चेतना के माध्यम से 2007 से

सुबोध शर्मा
मोहल्ला पंचशील नगर, बाराह, जिला पटना, बिहार 803213
मोबाइल: 8102102905
subodh.sharma2013@gmail.com

2015 तक अनवरत करती आ रही थीं, अब 2016 से हिन्दी चेतना के बाद विभोम-स्वर द्वारा अपनी बात और प्रवासी लेखकों की रचनाएँ विश्वभर में पहुँचा रही हैं। हालाँकि विदेशों की और भी पत्रिकाएँ हैं। यूके से पुरवाई, अमेरिका से विभोम-स्वर के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की विश्वा, हिन्दी न्यास की हिन्दी जगत्, विश्व हिन्दी समिति की सौरभ आदि कई पत्रिकाएँ निकलती हैं। शारजाह की ई-पत्रिकाएँ अनुभूति-अभिव्यक्ति ने तकरीबन सभी प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों को वैश्विक स्वरूप दिया है।

विदेशों में रहने वाले हिन्दी साहित्यकारों के योगदान के कारण आज हिन्दी साहित्य अपनी अपूर्णता की एक कड़ी को अपने में समाहित कर अपने फलक का विस्तार कर रहा है। आज प्रवासी रचनाकारों की रचनाएँ इस कारण महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि उनकी रचनाओं में भिन्न-भिन्न देशों की परिवेशगत परिस्थितिओं का उल्लेख मिलता हैं। लेखक जिस परिवेश, प्रकृति और समाज के बीच रह कर बड़ा हुआ है, उनकी लेखनी में, उस परिवेश का प्रतिबिम्ब तो अवश्य आएगा। हिन्दी साहित्य के अनेक रचनाकारों का सम्बन्ध गाँवों से रहा है। उनके साहित्य में गाँव की सुगन्ध मिलती है। लेखक अपने परिवेश और समाज में जी कर उसे ही अपनी सम्वेदनाओं का आधार बनाता है। इस पर भी लेखक गाँव से शहर, शहर से गाँव, भारत से अमेरिका आदि कहीं की भी सम्वेदनाओं, कथाओं, पात्रों और समस्याओं को अपने साहित्य में स्थान दे सकता है। निश्चय ही सम्वेदनाओं की कोई सीमा नहीं, वे सीमा रहित हैं, उनकी कोई परिधि नहीं, उन पर कोई बन्धन नहीं। जहाँ तक परख का सवाल है, मूल्यांकन में उसका कथांचल, परिवेश के साथ उसका मंतव्य तथा अभिव्यक्ति के स्वरूप आदि सभी को देखना होगा। आलोचना एवं सही मूल्यांकन में सम्वेदना के साथ उसके ट्रीटमेंट दोनों को ही देखना होगा। साहित्य का एक सिद्धांत है-वस्तु ही अभिव्यक्ति के स्वरूप को तय करती है। वस्तु अर्थात् सम्वेदना के स्वरूप के मर्म को जाने बिना उसकी अभिव्यक्ति का मूल्याँकन कैसे हो सकता है ? अत: जब भी हिन्दी के प्रवासी साहित्य का मूल्याँकन होगा, हमें प्रवासी सम्वेदना की कसौटी से ही उसकी परीक्षा करनी होगी। विभिन्न परिस्थितियों को समाहित करने के बाद ही हिन्दी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय विकास होता है और समस्त विश्व हिन्दी भाषा में विस्तार पाता है।

बीसवीं शती के मध्य से भारत छोड़ कर विदेश जाकर बसने वाले लोगों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इनमें से अनेक लोग हिन्दी के विद्वान थे और भारत छोड़ने से पहले ही लेखन में लगे हुए थे। ऐसे लेखक अपने-अपने देश में चुपचाप लेखन में लगे थे पर उनमें से कुछ भारत की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर काफी लोकप्रिय हुए, जिनका लोकप्रियता को भारतीय साहित्य ने स्वीकार किया हैं। ऐसे साहित्यकारों में अमेरिका की उषा प्रियंवदा और सोमावीरा का नाम प्रवासी साहित्य में आदर के साथ लिया जाता है।

विदेशों में रह रहे भारतवंशियों के जीवन के बारे में भारत में रह रहे भारतवासी जानने को उत्सुक रहते हैं। विदेशों के प्रति स्वप्निल कल्पनाएँ जो हम भारत में बैठ कर, कर रहे होते हैं और आए दिन अपने स्वदेश के प्रति जो आक्रोश व्यक्त करते हैं और यदा-कदा यह कहने में भी नहीं चूकते हैं कि यह तो केवल भारत में ही होता है, अमेरिका में ऐसा थोड़े ही होता है। सारे दोषारोपण हम अपने देश पर कर देते है, इसी स्वप्निल मिथक को तोड़ने का काम हमारे प्रवासी रचनाकारों ने किया है और उन रचनाकारों की रचनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का काम दर्जनों पत्रिकाएँ कर रही हैं।

आज प्रवास के प्रति जो स्वप्न था वह टूटने लगा है और इसी कारण निषेधात्मक प्रवृत्तियाँ टूटने लगी है। अत: अब प्रवासियों में अस्वीकार का स्वर गूँजने लगा है। इस बात की पुष्टि सुधा ओम ढींगरा के उपन्यास नक़्क़ाशीदार केबिनेट और सुदर्शन प्रियदर्शनी के औपन्यासिक कृति ''न भेज्यो बिदेस'' से हो जाती है।

यह सत्य है कि विदेशों में रचा साहित्य जब हिन्दी में 'प्रवासी कहानी', 'प्रवासी उपन्यास' या 'प्रवासी कविता' के रूप में आता है तो वह पाठकों का ध्यान ज़्यादा आकर्षित करता है। हिन्दी समाज विदेशों में रहने वाले अपने देशवासियों के जीवन को जानना चाहते हैं, उसे समझना चाहते हैं और स्वाभाविक भी है कि उनके मन में विदेश के प्रति उत्सुकता, जिज्ञासा और ललक बढ़ती है और वह समझने लगता है कि विदेशों में सब कुछ स्वर्ग-तुल्य ही नहीं है। वहाँ का जीवन-संघर्ष कठोर, एकांत एवं काफी अनुशासित है तथा वहाँ डालर पेड़ पर नहीं लगते। उन्हें जीवन को अर्पित करके ही पाया जा सकता है। हिन्दी का प्रवासी साहित्य भारतीय पाठकों को प्रवासी जीवन की कठोर तथा भयावह वास्तविकताओं से परिचित कराता है और इसकी भी अनुभूति कराता है कि उपयुक्त ज्ञान और योग्यता से ही जीवन की उच्चता तक पहुँचा जा सकता है। वहाँ प्रवासी भारतीय में पश्चिम और पूर्व का जो द्वन्द्व है तथा एक सर्वथा नई संस्कृति में जीने की जो विवशता है तथा अपनी अस्मिता और अपनी पहचान खो जाने का जो भय है, वह भी हिन्दी पाठकों की अनुभूति का अंग बनता है और वह अपने देश और संस्कृति के प्रति अधिक समर्पित तथा सम्मान का भाव रखता है। भारत के पाठकों के लिए प्रवासी साहित्य का यह योगदान कम नहीं है और यह तभी संभव है जब हम हिन्दी के प्रवासी साहित्य को प्रवासी-साहित्य के रूप में पढ़ें और समझें। सब कुछ लिखा हुआ साहित्य नहीं है। प्रवासी लेखकों ने भी जो लिखा है वह सब साहित्य ही होगा यह मान लेना कतई उचित नहीं है। प्रवासी साहित्य में जो साहित्य है तथा जो कूड़ा-करकट है, उसकी छटाई उसी तरह से करनी चाहिए जैसे हम भारत के हिन्दी साहित्य में करते हैं।

''प्रवासी संसार के प्रति जिज्ञासा और उसके दु:ख-दर्द को जनता तक पहुँचने के लिए साहित्य का सहारा सबसे पहले प्रसिद्ध लेखक पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिया। कुछ संयोग ऐसा हुआ कि उनकी भेंट 15 जून, 1914 को पं. तोताराम से हुई जो 21

वर्ष फिजी में रहकर लौटे थे। चतुर्वेदी जी ने 15 दिन तक उनके संस्मरण लिखे जो सन् 1914 में ही 'फिजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। इसके उपरांत पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'प्रवासी भारतवासी'(1918), 'फिजी में भारतीय' तथा 'फिजी की समस्या' पुस्तकें लिखीं और वहाँ के प्रवासी भारतीय मज़दूरों की समस्याओं की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया।

यह वह समय था जब 'चाँद', 'मर्यादा', 'माधुरी' आदि हिन्दी पत्रिकाओं में मॉरिशस, फिजी आदि देशों में गए भारतीय मज़दूरों के जीवन के बारे में यदाकदा लेख छपते रहते थे। 'चाँद' मासिक पत्रिका ने अपना जनवरी, 1923 का अंक 'प्रवासी अंक' के नाम से प्रकाशित किया और इसमें मॉरिशस के प्रवासी भारतीय मज़दूरों के यातनामय जीवन पर प्रेमचंद की कहानी 'शूद्रा ' प्रकाशित हुई जो भारत के प्रवासियों पर लिखी गई हिन्दी की पहली कहानी थी। 'चाँद' के इस अंक से तथा प्रेमचंद जैसे विख्यात कहानीकार की कहानी छपने से प्रवासियों को मुख्यधारा में लाने की चेष्टा की गई, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि देश के स्वाधीनता संग्राम आन्दोलन, दूसरे विश्व-युद्ध, गाँधी के 'करो या मरो' आन्दोलन, देश के विभाजन आदि में प्रवासी-संसार कहीं खो गया और काफी समय तक अदृश्य बना रहा। मॉरिशस सन् 1968 में स्वतंत्र हुआ तो लेखकों एवं जनता का उसके प्रति आकर्षण बढ़ा और जब कैप्टन भगवान् सिंह फिजी में भारत के राजदूत बने तो फिजी से संपर्क बढ़ा। इसी प्रकार इंग्लैंड में डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के उच्चायुक्त बनने पर वहाँ के प्रवासी हिन्दी साहित्य के विकास का नया युग शुरू हुआ। भारत सरकार ने डॉ.सिंघवी को प्रवासी भारतीयों की समस्याओं के हल करने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति का अध्यक्ष बनाया और उन्होंने 'डायस्पोरा रिपोर्ट' प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट को सरकार ने स्वीकार किया और 9-11 जनवरी, 2003 को पहला 'प्रवासी भारतीय दिवस' आयोजित किया।'' (वैश्विक रचनाकार: कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ-भाग-2, साक्षात्कार: कमल किशोर गोयनका, साक्षात्कारकर्ती: सुधा ओम ढींगरा, पृष्ट-219)

बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक सैकड़ों प्रवासी भारतीय अलग-अलग देशों में निवास कर रहे थे। वे साहित्य की विभिन्न विधाओं में साहित्य सृजन रत थे। इक्कीसवीं सदी के आरम्भ होने तक अधिकतर साहित्यकार भारत में अपनी पुस्तकें प्रकाशित करवा चुके थे। वेब पत्रिकाओं का विकास हुआ तो ऐसे साहित्यकारों को एक खुला मंच मिल गया और विश्वव्यापी पाठकों तक पहुँचने का सीधा रास्ता भी। अनुभूति-अभिव्यक्ति, वेब दुनिया, और कई ई-पत्रिकाओं में ऐसे साहित्यकारों की सूची देखी जा सकती है; जिसमें प्रवासी साहित्यकारों के साहित्य को रखा गया है। भारत की प्रमुख पत्रिकाओं जैसे वागर्थ, भाषा और वर्तमान साहित्य ने भी प्रवासी विशेषांक प्रकाशित करके इन साहित्यकारों को भारतीय साहित्य की प्रमुख धारा से जोड़ने का काम किया।

प्रतिष्ठित आलोचक डॉ.कमल किशोर गोयनका ने भारत से निकलने वाली पत्रिकाओं - 'साक्षात्कार' (भोपाल), 'शब्द योग' (नई दिल्ली), 'राजभाषा मंजूषा' (नई दिल्ली), 'बुलंद-प्रभा' (बुलंद शहर, उत्तरप्रदेश) आदि के प्रवासी साहित्य विशेषांक निकलवाए हैं।

इस तरह इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में आधुनिक साहित्य के अंतर्गत प्रवासी हिन्दी साहित्य के नाम से एक नए अध्याय का आरम्भ हुआ। हिन्दी साहित्य को उसकी समग्रता में देखना आज के समय की मांग है। जब यह कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, तो हम किस दर्पण की बात करते हैं। दर्पण की एक खास विशेषता यह होती है कि जो चीज़ दर्पण के सामने लाई जाती है; वह उसका हू-ब-हू प्रतिबिम्ब दिखा देता है। लेकिन दर्पण के सामने जब हम वस्तु को लाएँगे ही नहीं तो वह प्रतिबिम्ब किसका बनाएगी। साहित्यिक विकास की बात करते हुए केवल छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद....या भारतेंदु युग, द्विवेदी युग....का नामोलेख मात्र से हिन्दी साहित्य को पूर्णता नहीं मिल जाती है। इसके लिए हमें अपना संकुचित नज़रिये को बदलना होगा। अपने आँचल को फैलाना होगा। आज हिन्दी के कुछ प्रमुख रचनाकार इस बात की अहमियत को भलीभाँति समझ चुके हैं, इसलिए आज प्रवासी साहित्य को साहित्यिक विधा के एक अध्याय के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। प्रवासी साहित्य है क्या? इसकी सम्वेदना को जानने के लिए प्रवासी रचनाकारों द्वारा लिखित रचनाओं को पढ़ना होगा। मुख्य धारा के स्वघोषित रचनाकारों ने हिन्दी साहित्य में जो अलगाववादी नज़रिया अपना रखा था, आज वह खुद-व-खुद समाप्त होता जा रहा है। आज प्रवासी साहित्य पर विचार करना केवल बौद्धिक विलास या जुगाली मात्र नहीं हैं, यह अद्यतन युग के वैचारिक संघर्ष में भागीदारी करना है। जिस प्रकार आज विमर्शों का दौर चल रहा है, जगह-जगह विश्वविद्यालयों में संगोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है।

प्रवासी साहित्य हमारे बीच की समस्याओं के प्रति अपना रुख व्यक्त करता है। वैश्वीकरण के दौर में हमारे देश का सम्बन्ध विश्व के अन्य सभी देशों से जुड़ा हुआ है। आज विश्व के देशों की दूरियाँ काफी कम हो गई हैं। आज हमारे देश में काफी अधिक मात्र में विदेशी पूँजी का निवेश हो रहा है, तरह-तरह की टेक्नोलॉजी की उपयोगिता बढ़ी है। जिसके कारण एक तरफ हमारा जीवन सुखी सम्पन्न हुआ है; तो वहीं दूसरी ओर अन्य तरह की नवीन समस्याएँ हमारे सामने मुँह बाएँ खड़ी हो गई हैं। धार्मिक कट्टरता, आतंकवाद, सायबरकराईम...लिव इन रिलेशनशिप, सम्बन्धों में टूटन जैसी, न जाने कितनी सामाजिक विद्रूपताएँ हमारा समाज झेल रहा है। इन तमाम समस्याओं के साथ वैश्विक समस्याओं को विश्वपटल पर प्रवासी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। पहले हिन्दी चेतना से और अब विभोम-स्वर के माध्यम से नए-पुराने सभी वैश्विक लेखकों की विशिष्ट रचनाओं को छापकर सुधा ओम ढींगरा

प्रवासी साहित्य को समृद्ध कर रही हैं।

प्रवासी साहित्य की परम्परा अभी नवीन है, इसकी शुरूआत अस्सी के दशक से मानी जा सकती है। इसके पूर्व भी साहित्यिक रचनाएँ सामने आई हैं; जो प्रवासी रचनाकारों के द्वारा लिखी गई हैं। लेकिन रचना की सक्रियता को गति और इसे हिन्दी साहित्य के मुख्यधारा में शामिल करने के लिए नब्बे का दशक ही उपयुक्त जान पड़ता है। प्रवासी साहित्य को समझने के लिए सुधा ओम ढींगरा के साहित्यिक योगदान को टटोलना अति आवश्यक हो जाता है। इनके द्वारा संकलित अमेरिका के शब्द शिल्पियों का काव्य संग्रह 'मेरा दावा है' जहाँ अमरीका के 35 कवियों का वैश्विक परिचय करवाता है, वहीं 'इतर' इक्कीस प्रवासी महिला कथाकारों को हिन्दी साहित्य से जोड़ता है। इस पुस्तक का चयन, सम्पादन एवं भूमिका सुधा ओम ढींगरा ने लिखी है। जिसमें सुधा जी ने लिखा है- इक्कीसवीं सदी के आरम्भ से पूर्व ही अमेरिका और ब्रिटेन में सृजनात्मकता की एक तेज़ लहर आई और इस सदी के आरम्भ होने के साथ ही इन दोनों देशों की महिला कथाकारों ने हिन्दी साहित्य में बड़े धड़ल्ले से उपस्थिति दर्ज करवानी शुरू कर दी। अमेरिका, कैनेडा, ब्रिटेन, यूरोप, खाड़ी देशों एवं ऑस्ट्रेलिया आदि देशों के हिन्दी साहित्यकारों ने पिछले कुछ दशकों से ही लिखना शुरू किया है। अपनी विशिष्ट भाषा, शैली और स्वरूप की वजह से हिन्दी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग होते हुए भी उससे अलग नज़र आते हैं, बल्कि उन भारतवंशियों के साहित्य से भी अलग है इनका साहित्य; जो मॉरिशस, सुरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद और गयाना के अपने इतिहास के साथ ही बहुत पहले से लिख रहे हैं। विदेशों में रह रहे भारतीयों की जीवन शैली, दर्शन को रेखांकित करने वाला यह साहित्य यहाँ के भारतीयों की अस्मिता की पहचान है और पाठकों का ध्यान आकर्षित कर पाने में सफल हुआ है।

'मेरा दावा है' कविता संकलन के बारे में प्रतिष्ठित आलोचक और प्रेमचंद मर्मज्ञ डॉ. कमल किशोर गोयनका लिखते हैं-प्रत्येक कवि का अपना काव्य-संसार है। परन्तु जब 35 कवि एक साथ एक संकलन में आते हैं तो हिन्दी की प्रवासी कविता का एक संश्लिष्ट बिम्ब निर्मित करते हैं। इस विभिन्नता में एकता का आधार यह है कि ये सभी भारतीय कवि-कवयित्रियाँ हैं तथा सभी के पास भारतीय मन और चिन्तन है। वह अमेरिका की आकर्षक दुनिया में गुम नहीं होता, वह तो अपने भारतीय-बोध को जीवित रखता है। इनमें से अधिक लेखक पेशेवर लेखक नहीं हैं; लेकिन उनके अंदर भी एक रचनाकार बैठा है; जो इसकी चिन्ता नहीं करता कि वे कला-कृति की रचना कर रहे हैं या नहीं, वे तो निश्छल तथा निर्द्वन्द्व होकर अपनी भावनाओं को शब्दों में साकार रूप दे रहे होते हैं। अत: इन कविताओं का महत्त्व इनकी कला में न होकर निश्छल अभिव्यक्ति में है जो इन्हें अमेरिका के तनावग्रस्त जीवन से कुछ क्षणों के लिए मुक्त करती है। इन कवियों का यही दावा है कि ये सम्वेदनाओं के साथ अमेरिका में रह रहे हैं। हमें इन कवियों के इस दावे को स्वीकार करना चाहिए और उनसे यह कहना चाहिए कि वे इसी प्रकार अपनी कविताओं से अपने दावे अपने देशवासियों के पास भेजते रहें। (हिन्दी का प्रवासी साहित्य: डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ 390-391)

सुधा ओम ढींगरा के द्वारा लिए गए साक्षात्कारों की पुस्तकें 'वैश्विक रचनाकार: कुछ मुलभूत जिज्ञासाएँ', जिन्हें दो खंडो में सम्पादित किया गया है, प्रवासी समाज को समझने के लिए अत्यंत ही उपयोगी साबित हो रही हैं। प्रवासी रचनाकारों की रचनाओं से यह जाना जा सकता है कि प्रवासी समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं बौद्धिक चेतना का स्तर क्या है। वे (प्रवासी रचनाकार) अपने जन्मस्थली से कर्मस्थली के बीच की यात्रा में किस तरह का सामंजस्य बना पाते हैं। प्रवासी रचनाकार अपनी जन्मस्थली से कर्मस्थली की यात्रा तो अनेकों बार करते हैं, इस दौरान वे भारतीय साहित्यकारों से भी रू-ब-रू होते हैं और भारतीय रचनाकार भी अपने समकालीन प्रवासी रचनाकारों से सम्बन्ध बनाए रखते हैं। मान-सम्मान भी दिया जाता है। कुछ रचनाकार ऐसे भी हैं, प्रवासी रचनाकारों पर उँगलियाँ भी उठाते हैं और प्रवासी रचनाकारों द्वारा विदेशों में आयोजित साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेने के लिए लालायित भी दिख जाते हैं।

व्यंग्य यात्रा के सम्पादक और प्रतिष्ठित व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय 'वैश्विक रचनाकार: कुछ मुलभूत जिज्ञासाएँ'-भाग-1 के लिए लिखते हैं- साक्षात्कार पर आधारित कृति के मुख्यत: तीन-चार किस्म के पाठक होते हैं- -एक जिसने साक्षात्कार लिया हो, दूसरे जिसने साक्षात्कार दिया हो, तीसरा लेखकनुमा पाठक जिसको यह जिज्ञासा रहती है कि मेरी कहीं चर्चा तो नहीं और चौथा पाठक शोधकर्ता होता है जो शोध प्रक्रिया में साक्षात्कार का 'अध्ययन' करता है। ऐसा कम होता है कि कहानी, उपन्यास, व्यंग्य या फिर कविता की तरह साक्षात्कार को पढ़ा जाये। मेरी चार वर्ष का प्रवास काटने के बाद, प्रवास में रहकर अपना रचनाकर्म कर रहे रचनाकारों के बारे में विशेष जिज्ञासा रहती है। मैंने चार वर्ष के विदेश प्रवास में भुगता है और जाना है कि रेगिस्तान में रचना की नाव खेना कितना कठिन है। यदि मुझे पूर्णिमा वर्मन और उनकी 'अभिव्यक्ति' एवं हरिशंकर आदेश का साथ न मिला होता तो संभवत: मैं अवसाद में चला जाता। मेरा यही अतीत मुझे प्रवासी रचनाकारों को जानने के लिए प्रेरित करता है। सुधा ओम ढींगरा अपने लेखन एवं 'हिन्दी चेतना' के माध्यम से विपरीत परिस्थितियो में महत्त्वपूर्ण रचनात्मक काम कर रही हैं। इस कृति के माध्यम से उन्होंने प्रवास में रहकर लेखन कर रहे रचनाकारों के सम्बन्ध में बहस, बातचीत, आदि के लिए व्यापक मंच दे दिया है। यह पूरी किताब ऐसे रचनाकारों के सभी संदर्भों को, इन्द्रधनुषी आयामों को समक्ष साक्षात् करती है। सभी रचनाकारों ने लगभग, घास काटने के अंदाज़ में नहीं, चर्चा का गंभीर मंच तैयार करने के लिए अपने भाव अभिव्यक्त किए हैं। यह अपने आपमें इस अर्थ में सम्पूर्ण कृति है कि इसमें प्रवास में रहकर लेखन कर रहे रचनाकारों की समस्याओं, सीमाओं, आलोचकों की उपेक्षाओं आदि को साक्षात् किया गया है। यह रचनाकार चाहे भारत से दूर हैं पर उसके रचनात्मक रगों रेशे से

वाकिफ हैं। अधिकांश कृति कहीं एक कहानी, कहीं लघुकथा और कहीं व्यंग्यात्मक चुटकियों का आनंद देती है। (वैश्विक रचनाकार: कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ-भाग-2, साक्षात्कार: कमल किशोर गोयनका, साक्षात्कारकर्ती: सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ-12)

वामपंथी रचनाकारों में से कुछ रचनाकारों ने शुरूआत में प्रवासी साहित्य के प्रति विरोधी स्वर तो दिखाया-प्रवासी रचनाकारों की रचनाओं को नॉस्टेल्जिया का साहित्य भी कहा, और यहाँ तक कहाँ कि इसमें है क्या जो इसे साहित्य माना जाए ?... जैसी बातों के द्वारा प्रवासी साहित्य को नकारने का भरपूर प्रयास किया; लेकिन कुछ ही समय बाद इनका संकुचित नज़रिया वैश्वीकरण के प्रकाश से झंकृत हो उठा और आगे बढ़कर इन्होंने प्रवासी साहित्य को आधुनिकतावाद या उत्तरआधुनिकतावाद या पाश्चत्य एवं पौरवात्य में समादृत करते हुए हिन्दी को वैश्वीकरण के दौर में विदेशों तक फैला हिन्दी साहित्य के रूप में स्वीकार कर लिया। महत्त्वपूर्ण बात यही है कि थोड़ी दूर तक अपने आपको बेहतर समझने वाले हिन्दी साहित्य के कुछ कठमुल्लों ने आधुनिकतावाद और पश्चात्यवाद को हिन्दी का विकास स्वीकार तो लिया। आज भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोधार्थियों द्वारा प्रवासी रचनाओं पर शोध कार्य किया जा रहा है।

अत: यह प्रमाणित होता है कि प्रवासी साहित्य हिन्दी साहित्य की एक विधा के रूप में उभरा है; जैसे कभी साहित्य में छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद... साहित्यिक विधाओं का दौर चला था वैसे ही आज प्रवासी साहित्य का दौर है।

****

वैश्विक रचनाकार: कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ-भाग-2, साक्षात्कार: कमल किशोर गोयनका, साक्षात्कारकर्ती: सुधा ओम ढींगरा, पृष्ट-219, हिन्दी का प्रवासी साहित्य: डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ 390-391, वैश्विक रचनाकार: कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ-भाग-2, साक्षात्कार: कमल किशोर गोयनका, साक्षात्कारकर्ती: सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ-12.

दोहे

रघुविन्द्र यादव

खूब किया सय्याद ने, बुलबुल पर उपकार
पंख काटकर दे दिया, उड़ने का अधिकार
***
हैं नारी के भाग्य में, दर्द घुटन अवसाद
अपने जिसको लूटते, कहाँ करे फ़रियाद
***
कहीं भामिनी लुट रही, जले कहीं तंदूर
सिया, अहिल्या, द्रौपदी, नया नहीं दस्तूर
***
बुलबुल ने आकाश में, जब-जब भरी उड़ान
बाजों ने प्रतिबन्ध के, सुना दिए फरमान
***
पहुँचे सत्ता शीर्ष पर, बेच-बेच ईमान
नैतिकता पर आज वे, देते हैं व्याख्यान
***
गिरवी दिनकर की कलम, पढ़ें कसीदे मीर
सुख-सुविधा की हाट में, बिकते रोज़ कबीर
***
हिम्मत टूटी हंस की, डोल गया विश्वास
काग मिले जब मंच पर, पहने धवल लिबास
***
प्यार दिनों दिन बढ़ रहा, यूँ यारों के बीच
कृष्ण-सुदामा फेंकते, इक-दूजे पर कीच
***
न्याय तरसता न्याय को, कौन निभाये साथ
लम्बे हैं क़ानून से, धनपशुओं के हाथ
***
रिश्वत बोली झूठ से, सुनले करके गौर
कलयुग के इस दौर की, हम दोनों सिरमौर
***

फैला सभ्य समाज में, जाने कैसा रोग
आहत करके और को, ख़ुशी खोजते लोग
***
राजनीति के अश्व पर, बौने हुए सवार
घास छीलते फिर रहे, शिखरों के हक़दार
***
आक-ढाक पूजने लगे, तुलसी खड़ी उदास
खार उड़ाते फिर रहे, फूलों का उपहास
***
पीट रहे हैं लीक को, नहीं समझते मर्म
आडम्बर को कह रहे, कुछ नालायक धर्म
***
कंकर पत्थर बिक रहे हैं सोने के तोल
कौन लगाता है यहाँ, अब हीरों का मोल
***
सामंतों ने देश पर, खूब किये उपकार
भूख, गरीबी, दुर्दशा, दिए कई उपहार
***
राजा हैं नव दौर के, लोक लाज से दूर
कहाँ नम्रता सादगी, रहें दंभ में चूर
***
मिलना अब सरकार से, मित्र नहीं आसान
पहरे में रहने लगे, कलयुग के भगवान्
***
भूखा फिरता आदमी, लिए लबों पर प्यास
सरकारें करतीं रही, जाने कहाँ विकास
***
भाव शून्य रिश्ते हुए, बेगैरत इंसान
करते हैं माँ-बाप का, बेटे ही अपमान
***
गहने होते थे कभी, लाज शर्म संस्कार
अब ये जिनके पास हैं, कहलाते लाचार
***

रघुविन्द्र यादव वरिष्ठ दोहाकार, लघुकथाकार, समीक्षक तथा शोध और साहित्य की राष्ट्रीय पत्रिका बाबूजी का भारत मित्र के संपादक हैं। आपके दो दोहा संग्रह- नागफनी के फूल और वक्त करेगा फैसला, दो लघुकथा संग्रह- बोलता आईना और अपनी-अपनी पीड़ा तथा एक कुण्डलिया छंद संग्रह- मुझमें संत कबीर सहित कुल छह मौलिक और चार सम्पादित पुस्तकें प्रकशित हो चुकी हैं। इनका दोहा संग्रह नागफनी के फूल बेहद चर्चित रहा है।

संपर्क: संपादक, बाबूजी का भारतमित्र, प्रकृति-भवन, नीरपुर, नारनौल (हरियाणा) 123001

ईमेल: raghuvinderyadav@gmail.com

महिला लेखन की चुनौतियाँ और संभावना

डॉ. अनिता कपूर

लेखन करना, मतलब आप जो हैं, उसके अलावा कुछ और किरदारों को, चाहे-अनचाहे जो आपके अंदर परिस्थितिजनक और आपकी सोच से पैदा हो जाते है, उसे शब्दों में सर्जित करना। ऐसी बात नहीं कि चुनौतियाँ पुरुष लेखकों को झेलनी ही नहीं पड़ी, पर हमेशा नारी को ही ज़्यादा चुनौतियाँ का सामना करना पड़ा है। हाँ, अब हालत पहले से कहीं ज़्यादा बेहतर हैं। नारी शक्ति ने आज दिखा दिया कि, हम हर क्षेत्र में समान और कहीं बेहतर भी हैं। उसका लेखन किसी भी हालत में पुरुष लेखक से कमतर नहीं।

औरत के साथ शुरू से ही यह त्रासदी रही कि, उसे सिर्फ एक शरीर समझा गया, इस पुरुष प्रधान समाज ने उसके लिए बहुत सी लक्ष्मण रेखाएँ खींच डाली। उसका काम तो बस सिर्फ चूल्हा-चौका, घर का काम, बच्चे पैदा करना, उन्हे पालना-पोसना और भरे पूरे परिवार के साथ पति की सेवादारी। शुरू से हमारे समाज में महिलाओं की यही भूमिका रही है। धीरे-धीरे वक्त जैसे-जैसे करवट लेता गया, नारी भी जागरूक और मुखर हुई है। उसे कभी भी दोहरी ज़िम्मेदारी निभाने से ऐतराज़ नहीं था और न है। यह जानते हुए भी कि लेखन का सफर आसान नहीं है, अभिव्यक्ति में, संवेदनशील होने के कारण नारी ने अपनी रचनाओं में सहज ईमानदारी का परिचय तो दिया ही है, साथ ही में यथार्थ का साथ कभी नहीं छोड़ा। नारी रूढ़ियों की रस्में तोड़कर, नए मूल्य स्थापित करने हेतु, पूर्व ग्रह बुद्धि भ्रम को अपने लेखन द्वारा नया मार्ग दर्शाने के लिए निरंतर प्रयासरत है। साहसपूर्ण सब कठिन परिस्थियों से गुज़र, स्वयं की पहचान बना नारी आज सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, व्यावसायिक और वैज्ञानिक क्षेत्र में पुरुष के समान ही नहीं बल्कि पुरुष से आगे बढ़ कर लेखन कर रही है, पढ़ी और सराही भी जा रही है। वर्तमान में नारी में आत्मनिर्भरता भी है और आत्मविश्वास भी। उसमे स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता है तो पति और परिवार के साथ सामंजस्य बनाने की शक्ति भी। अत: जीवन के यथार्थ को स्वीकार करने में कोई झिझक भी नहीं है।

नारी के लेखन को कभी प्रोत्साहित नहीं किया गया। कुछ मामलों में तो मैंने देखा अपने

संपर्क: 975 W Tennyson Rd., Unit # 203, Ha42ard, CA 94544
ईमेल:Anitakapoor.us@gmail.com

बचाए हुए वक्त में किसी महिला ने अगर कोई कविता लिखी और प्रकाशित करने भेज दी, प्रकाशन के बाद पता चलते ही उन पर पहरे बैठाए गए, जैसे कोई गुनाह किया हो। पर पुरुष के लिए सब छूट रही, क्योंकि लक्ष्मण रेखाओं में अंतर था।

मेरे जीवन में भी कई बार ऐसा समय आया है- जब मैंने किसी चीज़ को मुमकिन बनाने के लिए हर संभव कोशिश की, जैसे रिश्ते बनाना, घर परिवार की ज़िम्मेदारी को सहजता से निभाते हुए साथ ही बचे हुए वक्त में कुछ लिखते रहने की कोशिश - लेकिन, मेरे सभी प्रयासों के बावजूद भी पता नहीं क्यों, किसी न किसी वजह से चीज़ें उस तरह नहीं हो पाई जिस तरह मैं चाहती थी कि वे हों। मैंने तो सारे कर्त्तव्य एक साथ निभाने की भरसक कोशिश की थी। पर जहाँ ज़रा सा चूक हुई तो घर से ताने सुनने पड़ते जैसे, सारा समय तो पता नहीं क्या-क्या लिखती रहती है आदि-आदि। इसके चलते कुछ अरसा गुमनामी छाई रही। फिर बच्चे बड़े हुए तो दोबारा अपने भीतर मर रहे एहसास को, सोच के दायरों से बाहर निकाल सहमे हुए सच से अर्जित दस्तावेज़ हाशिये से उठा कर कलम की नोंक से, उम्र के कई मोड़ों से गुज़रने के बाद जब लिखा तो कच्ची धूप में पकती ताज़ा सरसों की महक सी कविताएँ और बाकी रचनाओं के जब लेखनी चली तो बस जैसे लगा कि अब तो अंधी गलियों से कई वर्षों से हर अंधे मोड़ की चुनौती को पार कर सुरंग से बार आ गई हूँ। तब तक कुछ पहचान, प्रतिष्ठा और सम्मान भी मिलने लगे थे, उनके चलते घर में भी सम्मान मिलने लगा। लेखन और घर का तालमेल तो अब भी बिठाना पड़ता था, पर हाँ, उमस भरी दोपहरी में झरोखों से आती हवाएँ कुछ ठंडी हो चली थीं।

हालाँकि आज यकीनन दृष्टिकोण बदल रहा है, पर उसके लिए भी नारी को ही दोहरी भूमिका निभाते हुए, आंतरिक और बाहरी दोनों स्तरों पर कठिन और अधिक संघर्ष करना पड़ता है। मुझे शादी से पहले अपने मायके में शुरू से ही सहयोग मिलता रहा था। लेखन का शौक बचपन से ही था। माँ बताती है, जब में छोटी थी तो अपनी पहली कविता ''गुड़िया'' लिखी थी, उसके बाद स्कूल/कॉलेज में पत्रिका सम्पादन भी किया। फिर शादी हुई और वो ''गुड़िया'' भी मेरे साथ मेरे ससुराल तो गई, पर वहाँ माँ नहीं थी ''गुड़िया'' को सहेजने के लिए। थी तो नई जिंदगी ज़िंदगी चुनौतियाँ से भरपूर जिसने मेरी साँस, सोच, कल्पना और एक ज़िंदा एहसास के पंख कतर डाले थे। मुझे कहा गया, कि तुम उड़ तो सकती हो पर अपने पति और ससुराल के बनाए सीमित आकाश में।

जैसे की मैंने पहले भी बताया, कि सब ज़िम्मेदारियों को निभा कर जब मृतप्राय 'गुड़िया' को दोबारा जीवित किया, तो बाहर प्रकाशन समाज में रचना प्रकाशन करवाने और पुस्तक प्रकाशित करने के सर्वोधिकर पुरुष के पास पाए, वो एक नई तरह की चुनौती थी। खैर उसके बावजूद अब तो सृजन की आसक्ति के अभिसार में जुटी मैं, अपनी भावनाओं को रोकना नहीं चाहती थी। वक्त ने प्रवासी बना दिया। अमेरिका आने के बाद नए समाज ने और परिवेश ने अलग किस्म की चुनौतियाँ तो दी, मगर समुंदर लांघ आने के बाद दरिया का डर कहाँ सता पाया। खुद ही एक समाचार-पत्र काफी साल चलाया। उस अनुभव ने यह सिखाया कि, अपनी जगह खुद ही बनानी पड़ती है।

संभावनाओं के आकाश विस्तृत हैं। लेखन को निरंतरता देनी है तो मांगना नहीं वक्त निकालना पड़ेगा। जब विचार आएँ लिख डालें। पर हम महिलाएँ उनको पीछे धकेल अंतिम पाएँ पर रख बाकी काम करने लगती हैं, ताकि घर परिवार को खुश रख सकें। मेरा मानना है कि, उनकी और ताकती हमारी निगाहें उनकी रज़ामंदी का इंतज़ार न करें, कुछ कर दिखाएँ तो ओस में भीगे सपने यथार्थ का रूप अवश्य ले लेंगे। मेरे लिए, मेरी 'सच्चाई' इस तरह है- मैं अपने जीवन की सह-लेखिका हूँ, मेरे हाथ में फिर भी सब कुछ नहीं है, मेरी ईमानदार लेखनी के चलते किताब का एक पन्ना मैं लिखती हूँ तो दूसरे पेज़ की पहली पंक्ति ईश्वर लिखते हैं।

****

उलटबांसी दोहे

के.पी. सक्सेना 'दूसरे'

हुआ शेर की माँद से, जब खरगोश फरार।
अगले राजा के लिए, लड़ने लगे सियार ॥

***

साँप शिकायत कर रहे, हनन हुआ व्यापार।
मानव को किसने दिया, डसने का अधिकार॥

***

आलसवश खरगोश के, जिसके जागे भाग।
वो कछुआ अब चाल का, रोज़ अलापे राग ॥

***

चमगादड़ संकेत से, निश दिन रहा बुझाय।
दुनिया सीधी देखने, उलटा लटका जाय ॥

***

करम न निज़ के देखता, है मद में मदहोश।
अपनी करनी घुन पिसे, दे गेहूँ को दोष ॥

***

लौ से लगन लगाय के, खुद पतियाये शाम।
शमा, शलभ के नाम से, नाहक ही बदनाम ॥

***

सुनकर बिल्ली ने रखा, है रोज़ा इस बार।
लगे कबड्डी खेलने,चूहे उसके द्वार ॥

***

छत से चिपकी छिपकली, पगुराये है मौन।
अगर खदेड़ा आपने, छत थामेंगा कौन ॥

***

कुरता आधी बाँह का,बिना बाँह के वस्त्र।
आस्तीन के साँप से, मानव कितना ग्रस्त ॥

***

सब ज़ायज़ कहलाय है,गर सन्मुख हो ज़ंग्।
चचा भतीजे के दिखे, गिरगिट जैसे रंग ॥

***

होते दिखें मुहावरे, अब तो मटियामेट।
अजगर करता चाकरी, भरे मदारी पेट ॥

***

दाने-दाने के लिए, भागे सुबह-ओ-शाम।
वृथा मलूका कह गए, पंछी करे न काम ॥

***

माना चंदन पर असर, करते नहीं भुजंग।
कब चंदन ही सर्प पर, चढ़ा सका निज रंग ॥

***

पंछी भौचक रह गए, रोज़ मशक़्क़त देख।
मकड़ी घर ऐसा बुनै, एकौ मीन न मेख ॥

***

चाहे तो ले लीजिए, दीमक से संज्ञान।
लगती दोनों एक सी, गीता और क़ुरान ॥

****

संपर्क: सांस्कृतिक भवन मार्ग, टाटीबंध,
रायपुर (छ.ग.)492099 मो: 09584025175

राधा का प्रेम और अस्तित्व

रेनू यादव

'राधे-कृष्ण', 'राधे-मोहन', 'राधा-माधव', 'राधे-श्याम अर्थात् कृष्ण के प्रत्येक नाम के साथ राधा का नाम, जबकि कृष्ण स्वयं विष्णु के अवतार माने जाते हैं, उनकी स्वयं अपनी पहचान है। प्रश्न यह उठता है कि राधा का ही नाम क्यों, रूक्मिणी अथवा सत्याभामा का नाम क्यों नहीं ? कृष्ण का नाम उनकी 16108 रानियों-पटरानियों अथवा ब्रज में गोपियों ललिता, चन्द्रावती, प्रमदा, सुषमा, शीला, वृन्दा आदि, जो कृष्ण से अनन्य प्रेम करती थीं, क्यों नहीं जोड़ा जाता ? क्या सिर्फ इसलिए कि राधा लक्ष्मी की अवतार थीं, अथवा स्वयं कृष्ण की अंश ? गोपियाँ खंडिता नायिका क्यों मानी गईं और रानियाँ-पटरानियाँ जीवन संगिनी-कर्म संगिनी होकर भी क्यों अपनी पहचान नहीं बना पाईं, जबकि भारतीय समाज में पत्नी का महत्त्वपूर्ण एवं सम्माननीय स्थान होता है न कि प्रेमिका का...?

ये सभी अस्मितापरक प्रश्न हमारे इतिहास और राधा के जीवन-चरित्र को बार-बार खंगालने के लिए विवश करते हैं। अत: राधा के प्रेम को समझने के लिए उस समय के समाज में स्त्रियों की स्थिति एवं नैतिकता के मानदंड़ों को समझना अतिआवश्यक है।

महाभारत कालीन समाज और कृष्ण का समाज समकालीन था, इसलिए उस समय के समाज में स्त्रियों की स्थिति लगभग एक जैसी थी और नैतिकता के मानदंड भी। उस समय पुत्रियाँ पुत्रों के समान शिक्षा ग्रहण करती थीं, वे पिता पर बोझ नहीं थीं। उनका पुत्रों की भाँति जातकर्मादि आदि होता था, उदाहरण के लिए महाराजा शान्तनु ने गौतम के पुत्र और पुत्री कृप और कृपी का और महाराज अश्वपति ने सावित्री का जातकर्म किया था। चूँकि निम्न वर्ग की स्त्रियों का उल्लेख नहीं मिलता; लेकिन उच्चवर्ग की स्त्रियों की शिक्षा पितृगृह में ही होती है। उस समय पुत्र की भाँति स्त्रियाँ भी दान में दी जाती थी। जैसे यदुश्रेष्ठ शूर ने अपनी पुत्री पृथा को अपने फुफेरे भाई कुन्तीभोज को दान में दिया, पृथा का नाम कुन्तीभोज की पुत्री होने के कारण कुन्ती पड़ा।

*भट्टाचार्य, सुखमय. महाभारतकालीन समाज. पृ.63-64

वे पति की कर्मसंगिनी हुआ करती थीं तथा सलाहकार भी। कुंती, सत्यवती, शकुन्तला आदि का नाम एक अच्छे सलाहकार के रूप में उल्लेखनीय है। दुखद स्थिति में विवाहित स्त्रियाँ अपने पिता अथवा सगे-संबंधियों के घर जाया करती थीं। जैसे पांडवों के वनवास गमन पर सुभद्रा का अपने पिता के घर रहना। किंतु अधिक दिनों तक पिता के घर रहना निंदनीय माना जाता था। शकुन्तला, सावित्री, द्रोपदी, गांधारी, रोहिणी, सत्यभामा, सुभद्रा आदि स्त्रियाँ सतीत्व की उदाहरण हैं। कुंती, गांधारी, द्रोपदी, दमयंती, शकुन्तला, सावित्री आदि सशक्त स्त्रियाँ पतिपरायण और पवित्र थीं। कुंती का अपने पति की आज्ञा से नियोग

संपर्क: रिसर्च/ फेकल्टी असोसिएट, हिन्दी विभाग, गौतम बुद्ध युनिवर्सिटी, यमुना एक्सप्रेस- वे, गौतम वुद्ध नगर, ग्रेटर नोएडा - 201 312
ई-मेल: renuyadav0584@gmail.com, renu@gbu.ac.in
मोबाइल: 9810703368

अपनाना, गांधारी का नेत्रहीन पति का साथ देने के लिए स्वयं आँखों पर पट्टी बाँध लेना, द्रोपदी का हस्तिनापुर का कोष संभालना, दमयंती का अपने पति नल द्वारा राज्य की उपेक्षा करने पर स्वयं राज्य संभालना, शकुन्तला का अपनी पहचान के लिए दुष्यंत तक पहुँचना और उन्हें पति रूप में प्राप्त करना, सावित्री का यम से सत्यवान को वापस लाना आदि मिथकों से स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ अपना फैसला ले सकती थीं और उस समय पतिपरायण स्त्रियों को ही सम्मान प्राप्त था। ऐसी स्त्रियों का श्राप भी प्रभावशाली होता था। उस समय पुत्र की अपेक्षा पति को अधिक महत्त्व दिया गया जैसे कि देवकी ने कंस के सम्मुख कृष्ण की अपेक्षा वासुदेव के जीवन का चयन किया। स्त्रियाँ सभा में सहभागी होती थीं, उनके आदेश, सलाह, और विचारों का सम्मान होता था। गृहस्थ आश्रम के पश्चात् वे वानप्रस्थ आश्रम में भी प्रवेश करती थीं; जिसका उदाहरण स्वयं सत्यवती, गांधारी, कुंती, सत्यभामा आदि हैं। पति के मृत्यु पर सति होने का भी उल्लेख मिलता है और जो स्त्रियाँ सति नहीं होती थीं वे प्राय: पिता के घर रहा करती थीं।

किंतु उनपर भी मनुस्मृति का नियम लागू था। विवाह से पूर्व पिता का और विवाहोपरांत पति का अधिकार होता था और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इन सबके वावजूद कहीं न कहीं स्त्रियों के प्रति नैतिकता के दोहरे मानदंड भी निर्धारित थे।

'श्रीमद्भागवत' में स्त्री का जन्म पूर्वजन्म के पापों का फल बताया गया है।

''मां ही पार्थ व्यापाश्रित्य येह्यपि स्यु: पापयोनय:।

स्त्रियों वैश्यास्तथा शूद्रास्तेह्यपि यान्ति परां गतिम्'' ॥

*पाण्डेय, डॉ. दर्शन. नारी अस्मिता की परख. पृ. 11. (महाभारत - महर्षि व्यास - 13/40/14-15)

'नारद-पंचचूडा संवाद' में नारी को दोषों की खान कहा गया है।

*पाण्डेय, डॉ. दर्शन. नारी अस्मिता की परख. पृ. 11.

उस समय भी अपहरण, बलात्कार, विवाह, श्राद्ध, उपहारस्वरूप दान में देना, दास्य-प्रथा, नियोग, सति-प्रथा आदि का उदाहरण स्त्री के वस्तुगत मूल्यांकन की ओर संकेत करता है। लड़कियाँ बोझ नहीं थीं किंतु अनैतिक आचरण स्वीकार्य नहीं था। कुंती विवाह के पूर्व गर्भवती होने पर समाज में उपेक्षा के भय से अपने पुत्र कर्ण को स्वयं से दूर करने के लिए विवश हो गईं, जबकि उनके पति पाण्डु पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से उन्हें अन्य पुरूषों के पास नियोग हेतु भेजते हैं। नियोग का उल्लेख अम्बिका, अम्बालिका, कुंती, माद्री के संदर्भ में भी प्राप्त होता है। बहुपत्नी विवाह, बहुपति विवाह और नियोग हो सकता था किंतु विवाहेत्तर संबंध मान्य नहीं था। पतिव्रता का प्रमाण है कि बलराम देवकी के गर्भ से सीधे चमत्कारिक ढंग से रोहिणी के गर्भ में समा जाते हैं। वहीं सुरक्षात्मक दृष्टि से कृष्ण को रोहिणी के पास नहीं भेजा जाता बल्कि यशोदा के पास भेजा जाता है। वह भी तब जब यशोदा सोई रहती हैं और उनके बगल में सोई लड़की को कृष्ण के बदले बलि के लिए भेज दिया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि स्त्री की स्थिति कैसी रही होगी ? माता यशोदा कृष्ण को स्वीकारती हैं और पति के निर्णय को ही अपना निर्णय मानती हैं। पुत्र और पुत्री में समानता थी किंतु पुत्र-आकांक्षा के कारण पुत्रियाँ उपेक्षित हो जाती थीं जैसे कि द्रोपदी। स्त्रियाँ विदुषी थीं उनके सलाह का महत्त्व था किंतु वर्चस्ववादी सत्ता उनके सुझाव की उपेक्षा भी करते थे जैसे कि पुत्र मोह में डूबे धृतराष्ट्र को गांधारी ने समाझाया किंतु धृतराष्ट्र ने उनकी बातों की उपेक्षा की, द्रोपदी को दाव पर लगाए जाने के पश्चात् द्रोपदी चीख-चीखकर अपनी रक्षा के लिए सबको पुकारती रहीं किंतु समस्त सभागण निष्क्रिय रहें। अंबा अपने अस्तित्व की लड़ाई में आत्मदाह कर बैठीं। शकुन्तला गंधर्व-विवाह के पश्चात् भी एक अंगूठी की पहचान से अपनी पहचान बनाने हेतु भटकती रहीं।

अत: स्पष्ट है कि समाज और नैतिकता के दोहरे मानदंडों में स्त्री का जीवन यदि उच्च कुल में इतना जटिल एवं दुष्कर था तो मध्यम वर्ग और निम्न कुल में क्या स्थिति रही होगी ? और इन सबके बीच राधाज?

राधा किसी राजघराने से नहीं थीं। राधा का कृष्ण से बड़ा होना, उनका विवाहेत्तर संबंध और कृष्ण के लिए अपना जीवन समर्पित कर देना किसी चुनौती से कम नहीं रहा होगा। सामाजिक एवं नैतिक वर्जना के बावजूद भी राधा की पहचान उनके प्रेम के चर्मोत्कर्ष के कारण है, अर्थात् 'प्रेम गली अति साकरी...' को उन्होंने विस्तार दे दिया।

राधा-कृष्ण पर अनेक ग्रंथ प्राप्त होते हैं, जैसे कि जयदेव का 'गीतगोविन्द', चंडीदास की 'पदावली', विद्यापति की 'पदावली', भट्टनारायण के 'वेणीसंहार', सोमदेव के 'यशस्तिलक चम्पू', लीला शुक का 'कृष्ण कर्णामृत', ईश्वरपूरी का 'श्रीकृष्ण लीलामृत', बोपदेव का 'हरि लीला', वेदांत देशिक का 'यादवाभ्युदय', स्वामी श्रीधर का 'ब्रजबिहारी', रामचंद्र भट्ट का 'गोपलीला', चतुर्भुज का 'हरिचरित काव्य', कृष्ण भट्ट का 'मुरारी विजय नाटक', कृष्णवल्लभा की 'उज्जवल नीलमणि', सूरदास का 'सूरसागर' और नंददास का 'मानमंजरी', बिहारी की 'बिहारी-सतसई' के कुछ दोहे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रिय-प्रवास', धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' आदि ग्रंथों में राधा के अलग-अलग अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं, जैसे मोहक छवि वाली राधा, भोग-विलासिनी राधा, स्वकीया राधा, परकीया राधा, वाक्वैदग्ध राधा, वियोगिनी राधा, प्रेम-रमिणी राधा आदि। ''राधा किसी नारी का नाम नहीं हैं, यह नारी-जीवन की सम्पूर्ण-गरिमा, तेजोद्दीप्तता, समर्पण, प्रेम की अनन्यता तथा सम्पूर्ण सौन्दर्य, शील और प्रहा के घन-विग्रह का अभिधान है। राधा भारतीय प्रेम-साधना की परिणति का नाम है''।

*सिंह, डॉ. शिवप्रसाद. विद्यापति. पृ. 111.

कृष्ण के सात वर्ष की अवस्था में राधा के साथ प्रथम नेत्रोत्मिलन हुआ था। महाकवि सुरदास जी कहते हैं -

''औचक ही देखी तहँ राधा नयन

बिसाल भाल दिये रोरी।

नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठ रूलति झकझोरी।

संग लरिकनी चलि इत आवति दिन थोरी अति छबि तन गोरी।

सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगौरी''।

*शर्मा, हरबंसलाल, संपा. सूरदास. पृ. 204.

आयु में राधा कृष्ण से पाँच वर्ष बड़ी थीं, इसलिए स्वाभाविक है कि वे कृष्ण से अधिक समझदार एवं परिपक्व रही होंगी। पूनम दिनकर के अनुसार ''प्रेम उम्र नहीं देखता, रंग रूप कद काठी, जाति-धर्म, उचित-अनुचित, कुछ भी नहीं देखता। प्रेम निश्चित रूप से एक उच्च भावना है जिसमें त्याग निहित होता है। प्रेम से बढ़कर कर्तव्य का स्थान होता है, प्रेम प्रवाह हो सकता है परंतु उस दु:ख की दवा भी प्रेम है''।

*शब्द रेखा (प्रेम-विशेषांक) सं. एवं प्रकाशक - विश्वप्रताप भारती (पृ. 16) (प्रेम पर कुछ विचार, पूनम दिनकर)

सूरसागर के पद्यों के अनुसार राधा-कृष्ण बढ़ती उम्र के साथ-साथ एक दूसरे के पूरक बनते गए। उनकी बाल्य-अटखेलियाँ एवं नोक-झोक की जगह धीरे-धीरे दर्शन,मान-मनुहार, प्रेम, ईर्ष्या आदि ने ले ली और 11 वर्ष की अवस्था में कृष्ण ने रास रचाया, सूरदास के शब्दों में -

''अपनी भुजा स्याम भुज ऊपरि स्याम भुजा अपने उर धरिया।

यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकत मणि कंचन में जरिया''।

*शर्मा, हरबंसलाल, संपा. सूरदास. पृ. 206.

विद्यापति ने राधा के सौन्दर्य का वर्णन करते समय अपना हृदय उड़ेल दिया हैं किंतु जब स्वयं राधा के मुख से उनकी रति-कथा कहलावाते हैं तब उन्हें एक सामान्य नायिका की भाँति चित्रित करते हैं। वे कृष्ण-समागम का वर्णन अपनी सखी से करते-करते कहती हैं -

''हँसि हँसि पहु आलिंगन देल
मनमथ अंकुर कुसुमित भेल
जब निवि बन्ध खसाओल कान
तोहर सपथ हम किछु जदि जान''

*सिंह, डॉ. शिवप्रसाद. विद्यापति. पृ. 126.

संयोग-पक्ष का वर्णन राधा-कृष्ण से जुडने वाले समस्त कवियों ने किया है, किंतु सूरदास ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने राधा-कृष्ण के बचपन से लेकर प्रेम का बढ़ना और पिघलना दिखाया है। 'नीवी खोलत धीरे-धीरे' गाने वाले सूरदास मर्यादा की रेखा पार नहीं करतें, जबकि जयदेव और विद्यापति मर्यादा का उल्लंघन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। रसखान ने 'राधा के सौंदर्य को दर्शाया है। जिससे प्रकृति भी प्रभावित है। उनके सम्मुख अंग, मृग, खंजन, मीन भी लज्जित हैं'।

'गाथा-सप्तशती' के कुछ पदों में राधा के प्रेम का चित्रण प्रतीत होता है। सूरदास ने पनघट-लीला, हिंडोल-लीला, फागुन लीला आदि में राधा कृष्ण के संयोगावस्था को दर्शाया है। जयदेव की भोगविलासिनी प्रेम विह्वला राधा, विद्यापति की यौवनशील मोहक छवि वाली यौवनोन्मत्त विरहिणी परकीया राधा, बंगाल के वैष्णव कवि चंडीदास की कोमल उन्मादिनी विरहिणी एवं परकीया राधा, नंद की वाक्वैदग्ध राधा, बिहारी की छैल-छबिली साध्या राधा से कहीं अलग सूरदास की सरल किशोरी मर्यादित संतुलित नागरी राधा हैं। चंडीदास की राधा गोपियों के साथ कृष्ण को देखकर तनिक आशंकित हैं, उन्हें सास ननद का भय सताता है तो विद्यापति की राधा की यौवनावस्था में बदलती क्षण-क्षण की चेष्टाएँ, बिहारी की चंचल राधा का मुरली छिपा लेना सूर की राधा से भिन्नता को दर्शाता है। किंतु आधुनिक युग में राधा का आधुनिक नारी का स्वरूप दृष्टिगत होता है। 'प्रिय प्रवास' की राधा आधुनिक चेतना की संवाहिका, युगीन नारी चेतना (प्रेम, कर्तव्य, त्याग, निष्ठा, शील) का सच्चा प्रतिनिधित्व करती हैं। 'कनुप्रिया' की राधा का तन्मय एवं स्वकीया रूप का निरूपण हुआ है वे स्वयं को और कनु की स्थिति को एक मानती है।

''मेरे स्रष्टा
तुम्हारे सम्पूर्ण अस्तित्व का अर्थ है,
मात्र तुम्हारी सृष्टि
तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थ है
मात्र तुम्हारी इच्छा
और तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ हूँ
केवल मैं ! केवल मैं !! केवल मैं !!!''

'पद्मपुराण' के अनुसार राधा वृषभानु नामक वैश्य गोप की पुत्री थीं। 'ब्रह्मवैवर्त' के अनुसार राधा कृष्ण की मित्र थीं। किशोरावस्था में उनका विवाह रापाण, रायाण अथवा अनयघोष नामक व्यक्ति से हुआ था, जो कि माता यशोदा के भाई थे। इस प्रकार राधा श्रीकृष्ण की मामी हुईं। इसी पुराण के प्रकृति खंड अध्याय 48 के अनुसार राधा कृष्ण की पत्नी (विवाहिता) थीं। जिनका गंधर्व-विवाह ब्रह्मा ने स्वयं करवाया था। 'गर्ग संहिता' के अनुसार श्रीकृष्ण के पिता नंद उन्हें प्राय: पास के भंडिर ग्राम में ले जाया करते थे, जहाँ उनकी मुलाकात राधा से हुआ करती थी।

ध्यातव्य है कि गोपियों को इन्द्रियों का प्रतीक माना जाता हैं, जिन्हें कृष्ण ने वश में करने हेतु लीला किया। वे सभी खंडिता नायिकाएँ थीं, जो कि दूती का कार्य भी करती थीं किंतु राधा कृष्ण के लिए सर्वाधिक प्रिय थीं। राधा का प्रेम साधारण प्रेम नहीं था बल्कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म था, उन्हें कृष्ण ने स्वयं अपने अंश से बनाया था इसलिए वे अलग रहें या एक साथ, क्या औचित्य ? इन सभी कथाओं का उद्देश्य मात्र लीला है आदि।

किंतु यदि सांसारिक धरातल पर राधा-कृष्ण के प्रेम को देखा-परखा जाए तो ये कथा मात्र एक दैवीय कथा नहीं बल्कि प्रेम की प्रतिमूर्ति स्वाभिमानी स्त्री की कथा है। ये वही राधा हैं जो कृष्ण से क्षण भर दूर होने मात्र से मुर्च्छित हो जाती थीं, मुरली की धून सुनकर बेसुध बरबस खिंची चली आती थीं। जिसके लिए उन्होंने पति, परिवार, समाज, धर्म, नैतिकता को ताक पर रखकर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया और अपना जीवन दाव पर लगा दिया, वही कृष्ण उन्हें एक दिन छोड़कर चले गए कुछ प्रश्नों, अपेक्षाओं और एक तड़पते दर्द के साथ...।

हमारा समाज स्त्रियों के लिए आज भी दोहरे मानदंड तय करता है और उस समय

भी करता था। एक ही घर में स्त्री-पुरूष दोनों के लिए अलग-अलग संस्कार और चारित्रिक मूल्य निर्धारित किए जाते हैं। कृष्ण विष्णु के अवतार थे, इसलिए राधा पर कोई आंच नहीं आयी किंतु राधा का दर्द दैविय अवधारणाओं में कहीं दब-सा जाता है। देवी बनाने के चक्कर में राधा की आँखें रेत बनकर समस्त आँसूओं को एक साथ सोख लेती हैं, क्योंकि उन्हें कृष्ण ने वचन दिया था कि मेरे जाने के पश्चात् तुम रोना मत... !

प्रश्न यह है कि क्या सचमुच राधा कृष्ण की खुशी के नहीं रोईं अथवा उनकी अंतरात्मा ने उन्हें रोने नहीं दिया अथवा एक तड़पता दर्द कि जिससे उन्होंने इतना प्रेम किया वे यूँ ही बिना बताए छोड़कर जा रहे थे, यदि वे नहीं जान पातीं और उनसे मिलने नहीं आतीं तो कृष्ण बिना मिले ही चले जातें... ! हो सकता है वे अपने आपको ठगा-सा महसूस कर रही हों अथवा कृष्ण का जाना वो आसानी से सहन नहीं कर पायीं इसलिए उसी समय से जड़ बन गईं।

प्रेम में सुध-बुध खो देना आसान है पर जब मनुष्य छला हुआ महसूस करता है तब उसकी संम्पूर्ण चेतना जाग जाती है। राधा आध्यात्मिक एवं दार्शनिक रूप से जाग गई थीं। कदाचित् इसीलिए संयोग में उन्होंने बंधन स्वयं तोड़ा था पर वियोग में वे स्वत: स्वछंद हो गईं, क्योंकि प्रेम बंधन देता है और वियोग स्वच्छंदता। राधा बंधन-मुक्त हो गईं। कनुप्रिया में राधा के संदर्भ में डॉ. हुकुमचंद राजपाल ने कहा है, ''कनुप्रिया में राधा एक देवी की अपेक्षा मानवी के रूप में अधिक उभरी है। उसके मानवी प्रेम को भी गहनता के कारण दिव्यत्व की स्थिति प्राप्त हुई है। उसके मिलन श्रृंगार के भी बड़े ही सरस दृश्य अंकित हुए हैं। प्रभाव की दृष्टि से यही कहा जा सकता है कि राधा का चरित्र आध्यात्मिक और श्रृंगारिक स्वरूपों की भूलभूलैयों से बाहर आकर अपनी सनातन उपेक्षा की व्यथा के विषैले घूँट को पचाकर, अपने अस्तित्व की रक्षा की सौम्य चाह प्रकट करने वाली स्त्री के चरित्र के रूप में अंकित हो गया है''।

संदेह नहीं कि राधा ने कृष्ण से उद्दात्त प्रेम किया था। बचपन के सखे का प्रेम विवाहेत्तर संबंध में परिवर्तित हुआ और सदैव एकनिष्ठ रहा। वे आजीवन कृष्ण की प्रतीक्षा करती रहीं। यदि पूर्वजन्म की लेखनी (श्राप) भूल जाया जाए और यथार्थ के धरातल पर उनके प्रेम को स्पर्श करें तो दृष्टिगत होता है कि विछोह की अवस्था में उनका स्वाभिमान और हठ ही उनके जीने का सम्बल बना। संयोगावस्था में रूठ जाने पर कृष्ण उन्हें मनाने के लिए घंटों उनके दरवाजे पर खड़े रहते थे, किंतु वे आसानी से बाहर नहीं आती थीं, यदि आतीं तो अत्यंत मान-मनुहार और प्रतीक्षा के पश्चात्..।

कृष्ण का मथुरा-प्रवास और वहाँ से मिलने न आना कहीं न कहीं स्त्री-अस्तित्व पर लगी वह चोट थी, जिसका उत्तर देना उनके लिए स्वयं भारी था। कदाचित् वह एक विरहिणी प्रेम विह्वला स्त्री का हठ ही रहा होगा कि उन्होंने श्याम का प्रिय पेय दूध पीना छोड़ दिया, शौक-श्रृंगार तो दूर अपने जीवन में दु:ख से पुन: उबरने का खयाल भी न रहा। यह हठ ही तो था कि वे 7 मील चलकर स्वयं मथुरा नहीं गईं और पूरे मान के साथ आजीवन प्रतीक्षारत् रहीं।

वहीं दूसरी ओर कृष्ण को जैसे ही पता चलता है कि रूक्मिणी उनसे इतना प्रेम करती हैं कि किसी और से विवाह नहीं कर सकतीं, तब वे उन्हें विवाह-मंडप से भगाकर गंधर्व-विवाह कर लेते हैं। वजह चाहे जो भी हो किंतु जहाँ 16108 विवाह हो सकता था वहीं एक और क्यों नहीं अथवा कुछ और क्यों नहीं ? क्योंकि उनसे तो न जाने कितनी ही ब्याही-अनब्याही कन्याएँ प्रेम करती थीं... !

यदि मात्र महिमामंडन हेतु राधा-कृष्ण के विवाह का प्रसंग न लिखा गया हो और सचमुच कृष्ण के साथ उनका गंधर्व-विवाह हुआ हो, तो राज-काज संभालने के पश्चात् राधा को पत्नी का दर्जा क्यों नहीं मिला। यदि विवाह हुआ था तो फिर पिछले जन्म के श्राप का भला क्या महत्त्व ? यदि मान लिया जाय कि राधा विवाहित थीं, उस समय तलाक नहीं हो सकता था तो भी यह किसी समस्या का समाधान नहीं था, क्योंकि राधा पतिपरायण या पतिव्रता स्त्री नहीं मानी जा सकतीं। इसलिए पति को छोड़कर कृष्ण को अपनाना उनके लिए आसान था। साहित्य में चित्रित राधा के व्यक्तित्व के अनुसार वे प्रेम में ईष्यालु थीं, उन्हें कृष्ण का गोपियों के साथ क्रीडा पसन्द नहीं था। अर्थात् उनका प्रेम लौकिक विशुद्ध प्रेम था न कि श्रद्धा। जिस प्रकार कृष्ण के गोपियों के साथ कई हिस्सों में बँटने पर भी उन्होंने गोपियों को स्वीकार कर लिया था उसी प्रकार उनकी रानियों-पटरानियों को भी स्वीकार कर लेतीं ? प्रश्न यह भी है कि कृष्ण मथुरा जाने के पश्चात् अपने उत्तरदायित्वों में खो जाते हैं जबकि राधा प्रतीक्षा करती रहती हैं। तो क्या कृष्ण भी उसी वर्चस्ववादी मानसिकता के शिकार थे कि विवाहेत्तर संबंध बनाने वाली अथवा रास रचाने वाली स्त्री से विवाह नहीं करना चाहिए ? वे राधा के वियोग में रो सकते थे, उनकी पीड़ा महसूस कर सकते थे तो फिर ऐसी क्या मजबूरी थी कि वे उनसे मिलने नहीं आ सकें ?

वर्षों बाद यदि कोई आता है तो उद्धव। उद्धव से गोपियाँ संवाद करती हैं किंतु राधा नहीं। और कहतीं भी क्या.. वे उस युग में छली गईं जिस युग में बहुपत्नी विवाह और बहुपति विवाह धड़ल्ले से प्रचलित था और कृष्ण स्वयं उसके भुक्तभोगी एवं प्रत्यक्षदर्शी थे। राधा द्रोपदी की तरह आवाज नहीं उठा सकती थीं, और न ही वे इतनी समृद्ध थीं कि एक राजा से गुहार लगातीं, वे सुदामा की भाँति उनके महल में प्रवेश भी नहीं कर सकती थीं क्योंकि कृष्ण विवाह करके किसी और के हो चुके थे। कदाचित् इसीलिए उद्धव से वे कुछ न कह पायीं। उद्धव कृष्ण से मूक राधा की व्यथा सुनाते हैं -

''तुम्हरे बिरह ब्रजनाथ राधिका नैनिन नदी बढ़ी।

लीने जात निमेष कूल दोउ एते मान चढ़ी'' ॥

*शर्मा, हरबंसलाल, संपा. सूरदास. पृ. 210.

राधा स्वयं से भी आहत थीं, उन्हें उनकी एकनिष्ठता ने छला था... उनका कुछ न कहना उनके अस्तित्व पर लगी चोट थी

जिसे न तो वो छुपा सकती थीं और न ही दिखा सकती थीं।

कुरूक्षेत्र में राधिका का मिलन एक व्यथित हृदय का मिलन था। न जाने कितने सवाल अपना जबाव खो चुके थे और उत्सुकता व्याकुल हो चुकी थी, किंतु एक भय कि इतने दिनों बाद क्या कृष्ण मिलना भी चाहेंगे ? उन्हें पता है कि कृष्ण को अब राधा की जरूरत नहीं, उनके विरह में सिर्फ राधा जल रही हैं, कृष्ण के विरह की तीव्रता अब पहले जैसी नहीं रही होगी। कृष्ण पधारें भी तो अपनी पत्नी के साथ, शायद राधा इसकी कल्पना भी नहीं की होंगी, वे कृष्ण के साथ एकांत ही चाह रही होंगीं। राधा ने देखा कि कृष्ण अब वो हमारे कृष्ण नहीं, वे अब महाराजा हैं, किसी के पति हैं। एक संवेदनशील स्त्री कभी भी किसी और के पति पर अपना कोई अधिकार नहीं समझती। राधा आहत मन से स्वागत करने वाली बालाओं के बीच खड़ी हो गईं।

सूरदास के अनुसार रूक्मिणी गोपियों के बीच राधा को न पहचान कर कृष्ण से पूछती हैं कि उनमें से वृषभानु कुमारी, आपके बालपन की साथी कौन हैं ? कृष्ण बड़े सुन्दर ढ़ंग से कहते हैं –

''देखो जुवति वृन्द में ठाढ़ी नील बसन तनु गोरी।

सूरदास मेरौ मन बाकी चितवन देखी हरयौ री'' ॥

*शर्मा, हरबंसलाल, संपा. सूरदास. पृ. 212.

और फिर सूर की राधा को रूक्मिणी अपने घर लिवा जाती हैं, और माधव से राधा की भेंट करवाती हैं –

''राधा माधव माधव राधा कीट भृंग गति ह्वै जु गई।

माधव राधा के रँग राचे राधा माधव रंग गई''।

*शर्मा, हरबंसलाल, संपा. सूरदास. पृ. 213.

कृष्ण ने अपने और राधा में भेद मिटाने की बात कही किंतु भावुक राधा के मुख से कोई बोल न फूटे। बिन कुछ कहे ही वे वापस लौट आती हैं।

यदि राधा का कृष्ण से मिलन हो गया होता अथवा वे अपने पति को स्वीकार ली होतीं अथवा किसी और से विवाह कर ली होतीं तो कदाचित् राधा भी कहीं गुमनामी के अंधेरे में खो गई होतीं। किंतु राधा कृष्ण से बिछड़ने के बाद भी अपने प्रेम मार्ग पर अटल रहीं। वे कृष्णमय हो गईं। ठगे जाने का एहसास हो या प्रेम का अतुलनीय स्वरूप राधा ने रिश्तों की परवाह किये बिना आजीवन एकाकीपन में गुजार दिया। एक स्वाभिमानी स्त्री का आसक्ति से विरक्ति, स्थूल से सूक्ष्म, आकर्षण से विकर्षण, लौकिक से पारलौकिक में जाना अपने आप में एक चूनौती भरा चयन था। वे उम्र में बड़ी थीं, विवाहित थीं, रिश्ते में कृष्ण की मामी भी। यह समाज में किसी भी अवस्था में ग्राह्य नहीं। यदि मान लिया जाय की मामी भी बाल्यावास्था में अपने भाँजे के साथ खेलती थीं, किंतु बड़े होने के पश्चात् कौन उनके रिश्ते को स्वीकारता... ? स्वयं कृष्ण भी नहीं...? कृष्ण प्रेम कर सकते थे विवाह नहीं। क्योंकि आयुनुसार देखा जाय तो कृष्ण का प्रेम किशोरावस्था अथवा लड़कपन का प्रेम प्रतीत होता है और राधा का प्रेम परिपक्वता की ओर अग्रसर। इसलिए प्रेम में राधा को अकेले ही जलना था। ''राधा का प्रेम विद्यापति के शब्दों में वह कुन्दन है जो दुःसह आँच में तप-तपकर निरंतर चमकीला होता गया''।

*सिंह, डॉ. शिवप्रसाद. विद्यापति. पृ. 125.

उनके प्रेम की परिपक्वता ही उन्हें अपने मार्ग पर टिके रहने के लिए विवश कर देती है। आश्चर्य नहीं कि उन्हें पतिव्रता न होने के कारण अपमान और पीड़ा का दंश भी झेलना पड़ा होगा, उसके बावजूद भी उन्होंने आजीवन कृष्णमय होकर गुजारा, अपने अस्तित्व को अद्वैत बना दिया।

तत्कालीन समाज ने इन्हें कितना देवी बनाया और कितना महिमामंडित किया, यह कहना मुश्किल है। किंतु धार्मिक ग्रंथों और साहित्यकारों ने इनके टूटन-घुटन और चुप्पी को देवी अवश्य बना दिया। आज के समय में अवतारवाद की अवधारणा के कारण राधा सिर्फ इसलिए पूजनीय नहीं हैं कि वे कृष्ण की अंश थीं अथवा लक्ष्मी की अवतार, बल्कि इसलिए पूजनीय हैं कि उन्होंने अपना कंटकाकीर्ण मार्ग स्वयं चुना और समाज के विपरीत जाकर प्रेम की दुनियाँ में अपनी पहचान बनाईं। वरना पितृसत्ता में कृष्ण से पहले राधा का नाम कभी नहीं आता, हो सकता है कि इसमें तनिक सहयोग कृष्ण का महाराजा बनना और चमत्कारिक ढ़ंग से समस्त समस्याओं को हल करने की लोकप्रियता भी शामिल हो। आज के समय में समाज-सुधार के बावजूद भी प्रेमिकाओं को ऑनर कीलिंग, तलाक, मार-पीट का शिकार होना पड़ता है, दोहरे मानदंड़ो का सत्य तो यह है कि राधा जैसी प्रेमिका और सीता जैसी पत्नी सबको चाहिए, किंतु राधा अपने घर की बहू -बेटी के रूप में न हो। अतः ऐसे समाज में राधा युगों-युगों तक भक्तों के लिए भक्ति, प्रेमियों के लिए प्रेम-प्रतीक और अपनी अस्मिता स्थापित करने वाली समस्त नारियों के लिए पथप्रदर्शिका के रूप में पूजनीय एवं सम्माननीय रहेंगी।

****

संदर्भ-ग्रंथ -शर्मा, हरबंसलाल, संपा:, सूरदास, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, सं. पहला 1966, दूसरा 2011, सिंह, डॉ. शिवप्रसाद, विद्यापति, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद सत्रहवाँ 2004, पाण्डेय, डॉ. दर्शन, नारी अस्मिता की परख, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम 2004, भट्टाचार्य, सुखमय, महाभारत कालीन समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय 2003, सहगल, डॉ. मनमोहन, हिन्दी साहित्य का भक्तिकालीन काव्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, प्रथम 2007, शर्मा, डॉ. शिव कुमार, हिन्दी साहित्य की युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली. अठारहवाँ 2003, नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, तैतीसवाँ 2007, शुक्ल, डॉ. धनेश्वर प्रसाद, मध्यकालीन कविता संग्रह, विद्यार्थी पुस्तक भंडार, गोरखपुर, 1996, शब्द रेखा (प्रेम-विशेषांक) सं. एवं प्रकाशक - विश्वप्रताप भारती (पृ. 16) सुलभा बाजीराव पाटिल - कनुप्रिया: एक मूल्यांकन, (नई कविता के प्रबन्ध काव्य-शिल्प और जीवन-दर्शन)।

पूर्व, अपूर्व और अभूतपूर्व

सुशील सिद्धार्थ

दिल्ली एक भूतपूर्व शहर है। जो वर्तमान में भी अभूतपूर्व है। इसके एक अपूर्व इलाके में घूम रहा हूँ। यानी, दिल्ली में दरियागंज की एक गली। गली कविता की तरह पतली,कहानी की तरह दिलचस्प,आलोचना की तरह संकरी, व्यंग्य की तरह विडंबनाबोध से भरी है। उसमें धँस ही रहा था कि एक ओर कोई जनसेवक दिखे। सड़क पर नहीं। दीवार पर लगे पोस्टर पर कोई जनसेवक दिखे। दिखे सो दिखे। सच्चा नेता वही है जो संसद में गरजता है, सच्चा जनसेवक वही है जो पोस्टर पर दिखाई देता है। जनता के बीच बोलने वाले नेता और समाज में दिखने वाले जनसेवक अच्छी निगाह से नहीं देखे जाते।

दिखना और देखा जाना ही मुख्य है। इसीलिए अनेक लेखक मंच, पत्रिका आदि जगहों पर बार-बार देखे जाते हैं। या, उनकी कोशिश होती है कि देखे जाएँ। वे अपनी रचनाओं में कभी नहीं दिखते। वहाँ दिख कर होगा भी क्या।

ख़ैर, पोस्टर पर तमाम लंतरानी के बाद लिखा था...'पूर्व विधानसभा प्रत्याशी'। साथ में पार्टी का नाम आदि था। मेरा मन मयूर जगह कम होने के बावजूद नाचने लगा। कितनी प्रतिबद्धता है जनसेवक में। वे विधायक रहे होते तब भी ठीक था। लेकिन पूर्व प्रत्याशी? एक बार खड़े हो गए तब भी परिचय में जोड़ लिया।

मेरे मन में भाँति-भाँति के नाना विचार आने लगते हैं। यानी, प्राप्ति या उपलब्धि से मतलब ही नहीं। इच्छा का उल्लेख भी किया जा सकता है। कुछ शुरू करके छोड़ दिया हो तो उसका भी इस्तेमाल बायोडाटा में हो सकता है। ऐसे ही पूर्व लगाने का चलन हो जाए तो मज़ा आ जाए। लगभग सारे साहित्यकार लिखने लगें 'पूर्व साहित्य अकादमी आकांक्षी'। नामवर सिंह लिखें पूर्व कवि। मैं लिखूँ पूर्व पद्मश्री चाहक। हरिशंकर परसाई के साथ एक फ़ोटो खिंचाने से उपजी बिजली से अपना करियर रौशन करने वाले रौशनलाल मस्त हो जाएँ। लिखें पूर्व परसाई उत्तराधिकारी। वैसे अनजाने ही कुछ लेखक अपनी अपूर्व पूर्वता का बखान संस्मरणों के रूप में करते ही रहते हैं। बस उनके निकट आने की देर है कि विकट यादनामा शुरू। यह भी पूर्व प्रत्याशी वाली मानसिकता से हेच नहीं। एक बार कहीं की अध्यक्षता, एक बार अमुक जी द्वारा कंधा आदि थपथपाने और पीठ आदि सहलाने की उदारता, एक बार किसी वाक्य पर सभागार में बरसने वाले ठहाके....सब बायोडाटा का हिस्सा हैं। संभव है ऐसों के लिए 'पूर्वश्री' जैसे कुछ पुरस्कार भी शुरू हो जाएँ। पुरस्कारातुर के अभिनंदन पत्र में ऐसे वाक्य भी शामिल हों --

हे पूर्व शिरोमणि! आप पूर्व बहुविधागामी हैं। आप कविता, कहानी, उपन्यास आदि के प्रत्याशी रहे। कई बार खड़े भी हुए। मगर बैठ गए। इन्होंने इतनी सूक्तियाँ लिखी हैं कि कुछ लोग इनको सूक्ति कुमार कहते हैं। ये इतनी बार चूके हैं कि इनको चूक्ति कुमार भी कहा जा सकता है।

आप वर्तमान में जो हैं उससे कोई मतलब नहीं। जो होना चाहते थे वह अधिक महत्त्वपूर्ण है। ...आदि आदि बातें। एक नई परंपरा पड़ जाती।

कुछ लोग अतीत के दोने में चिपचिपाती जलेबियाँ जीवन भर कुतरते रहते हैं। जाने दीजिए।

मेरी ज़्यादा चिंता प्रेम के इलाके को लेकर है। प्रेम और विवाह के बाईपास में फँसे असंख्य लोग क्या लिखेंगे! वे अगर पूर्व प्रत्याशी की तरह लिखने लगें तो? लिखेंगे, पूर्व प्रेमी अमुक कुमारी। पूर्व प्रेमिका तमुक कुमार। इससे कितना गौरव बढ़ेगा। कुछ लोगों को तो पूर्व के बाद लिखना पड़ेगा--प्रेमिका (या प्रेमी)सूची संलग्न। कोई महिला किसी पार्टी में अपने पति से किसी का परिचय करवाते हुए कहती, ऐ जी इनसे मिलो। ये हैं मेरे पूर्व क्रमांक पाँच प्रेमी। हो सकता है कि कोई पति इतना ख़ुश होता कि तड़ से ख़ुद भी पूर्व हो

किताबघर प्रकाशन
4855-56/24
अंसारी रोड, दरियागंज़
नई दिल्ली 110002
मोबाइल 8588015394

लेता।

तो क्या इससे कुछ समस्याएँ भी होतीं। ठीक तो पता नहीं पर अनुमान लगाया जा सकता है। मान लो पूर्व लिखना ज़रूरी हो जाता तो हमारे राजनेताओं की आफ़त आ जाती। बहुतेरों को तो इतने पूर्व लगाने पड़ते कि हालत अभूतपूर्व हो जाती। 'पूर्व सदस्य दस पार्टी। क्रमानुसार देखें'। राजनीति में निष्कासन भी एक कला है। उपलब्धि है। कुछ लिखते पूर्व निष्कासित महामंत्री। कुछ को अपनी हरकतों के कारण लिखना पड़ता पूर्व मनुष्य। वे यह उपाधि डिज़र्व करते। लूटमार अपहरण गबन घपला घूस आदि की सक्रियता को सार्थक बनाने वाले यह सब गर्व से लिखते।

मज़ा तब आता जब सिद्धांतों की सियासत करने वाले नेता शान से लिखते पूर्व समाजवादी। या गुज़रे मार्क्सवादी। यह लिखने में न संकोच होता न शर्म आती। हो सकता है समाजवाद या मार्क्सवाद रो पड़ते। तो रो पड़ते। किसी को क्या फ़र्क पड़ता है। देश रो ही रहा है। रुदन भी माल बन सकता है। बिकेगा। हर चीज़ बिक सकती है। गुज़रा समय और गए गुज़रे लोग तो भारी डिमांड में हैं।

पूर्व का ब्योरा लिखने की कुछ ख़ास जगहें होती हैं। हर बात को लिखने की ख़ास जगहें होती हैं। क़ब्र पर लिखा जाने वाला मैटर वहीं लिखा जा सकता है। वैसे यह बात पूरे निश्चय से नहीं कही जा सकती। अनुभव और समाज का गौरवपूर्ण इतिहास कुछ और बताता है । कुछ पुस्तकों पर लिखा लेखक परिचय पढ़कर लगता है कि क़ब्र वाला मैटर यहाँ लिख दिया गया है। वैसे भी कुछ लोग कविता, कहानी, उपन्यास आदि लिखने के बहाने इन विधाओं की क़ब्र ही खोदते हैं। जब खुद जाती है तो खुद उसमें लेट जाते हैं। बहुत से लेखकों से बात करते हुए मुझे सहसा एहसास हुआ कि मैं किसी पूर्व जीवित से बात कर रहा हूँ।

ये बातें तो हैं ही, लेकिन पूर्व का गौरव गान लिखने की जगहों में विजिटिंग कार्ड, होर्डिंग, घर की नेमप्लेट आदि उचित स्थल हैं। विजिटिंग कार्ड में वैसे भी कुछ लोग इतनी सूचनाएँ भर देते हैं कि पढ़ते-पढ़ते विजिट का समय पूरा हो जाता है। कुछ लोग दोनों ओर कार्ड छपाते हैं। वे इतने अपूर्व तरीके से पूर्व होते हैं कि आपको विज़िटिंग कार्ड देने के बाद मौखिक रूप से भी बताना शुरू कर देते हैं। मैं ऐसे लोगों का बहुत सम्मान करता हूँ। ऐसे लोग कितनी प्रैक्टिस करते होंगे यह बताने के लिए कि साब मैं पूर्व में इन इन उन उन पदों पर रहा हूँ। समय के गटर में अनवरत बहा हूँ। इतना कहा फिर भी अनकहा हूँ। होर्डिंग पर समय समय पर आने वाले नाम और चेहरे सारा अतीत लिखवा देना चाहते हैं। कि देखो, कितना महत्त्वपूर्ण आदमी यहाँ झूल रहा है।

यहाँ तक तो ठीक है। मगर घर से बाहर ठुकी लगी सटी नेमप्लेट पर नाम के नीचे कोष्ठक में पूर्व का वृत्तांत लिखने वाले सभ्यता के वृत्तासुर ही लगते हैं। हैरत यह कि हनकसंपन्न लोगों के घरों पर 'कुत्ते से सावधान' और 'पूर्व की पहचान' की शान निराली होती है। वह दिन कब आएगा जब कुत्ते से सावधान के नीचे कोष्ठक में कुत्ते के पूर्व का हाल हवाल लिखा जाया करेगा। अधिक नहीं तो इतना ही लिखा जाएगा-- 'पूर्व पिल्ला'।

वैसे बीती बात या दुर्घटना को याद दिलाते रहने में हमारे समाज की उल्लेखनीय भूमिका होती है। हमारा समाज समय के शाश्वत रूप में भरोसा करता है। वह अतीत को कभी व्यतीत नहीं होने देता। इस आदत का सामाजिक विकास में इस्तेमाल होता है। स्त्रियाँ आदत की प्रयोगशाला मानी जाती रही हैं, इसलिए प्रयोग वहीं होते हैं। जो स्त्री खुद को केवल शरीर मानने से इनकार करे उससे पहले बलात्कार करो फिर याद दिलाते रहो कि यही है जिस पर पूर्व समय में बलात्कार हुआ। इस तरह उसका जीना हराम करो। फिर राम राम करो। इति सिद्धम्।

इतिहास का कूड़ादान, हमारी चेतना हमारे जीने की सर्वोत्तम जगह है.....। वर्तमान कितना भी प्रकाशवान हो पूर्व के अंधेरे होते ही प्यारे हैं.....। यह हुनर हमने काक्रोचों से सीखा है। वे तिलचट्टे हैं..। कुछ लोग इतिहास की थैली के चट्टे बट्टे हैं।

याद आता है कि सांसद बनने के बाद भी अनेक योग्य पत्रकार फूलनदेवी को पूर्व दस्युसुंदरी लिखते थे। जो पूर्व याद करते हैं वे महान् हैं। जो यह सब याद दिलाते हैं वे महानों के महान् हैं। भारतीयता उनकी आभारी है।

लेकिन यही तो हमारी अदा है। हम पूर्वजन्म की थ्योरी मानने वाले लोग हैं। मानने वाले ही नहीं, वर्तमान पर उसे लादने वाले लोग भी हैं। ज़रा इतिहास का गटर खोलें। इस करुणामय देश में कितनी मानवता से लोग किसी को भी पूर्वजन्म का पापी घोषित कर देते थे। तब उसके अभाव, दुख,अपमान की वजह व्यवस्था में तलाशने की ज़रूरत न थी। वह जो भुगतता रहता था उसका कारण होता था पूर्वकर्म। वह कर्मगाथा जिसकी लिपि केवल अहा टाइप के पवित्र लोग ही पढ़ सकते थे। प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' या 'सवा सेर गेहूँ' इस अहा जाति का यशगान करती है। गौरव की बात है कि अभी भी पूरी तरह यह चलन खत्म नहीं हुआ। होना भी नहीं चाहिए। ऐसा होगा तो उस धर्म का क्या होगा जो जातियों और पूर्वकर्मों में बजबजा रहा है। उस राजनीति का क्या होगा, जिसका अब राम जाने क्या होगा।

इतना ध्यान देने के बाद भी मुझे अफ़सोस है। इस देश में नारी का विकास पूरी तरह न होने का कारण पूर्व संस्कारों, मान्यताओं के प्रति पूरी निष्ठा का न होना है। याद करिए। द्रोपदी को पूर्वजन्म का हवाला देकर पंचामृत की तरह पाँच में नारद ने बँटवा दिया था। पाँच को आँच क्या। स्त्री मुक्ति के विचारकों ने इस पर ध्यान न दिया। हर क्षेत्र में नकली माल बनाने के उस्ताद मुल्क में हम कुछ लाख नकली नारद न बना सके। अफसोस। संस्कृति औरतों के साथ पूरा न्याय न कर सकी। उनको पंचामृत की तरह वितरित करना ही विकास का प्रमाण होगा। वैसे देर अब भी नहीं हुई। रहते हम अतीत में हैं ही। पूर्व से परहेज कैसा। पूर्व अपूर्व और भूतपूर्व से ही हमारे समाज की शान है।

****

मुरारी लाल की नरकयात्रा

अरुण अर्णव खरे

सपने देखने की अपनी आदत से लाचार मुरारी लाल इस बार नर्क यात्रा पर निकल आए। इच्छा उनकी स्वर्ग जाने की थी फिर यह सोच कर वहाँ नहीं गए कि सारी ज़िंदगी तो उन्होंने नर्क जैसी ही गुज़ारी है मरने पर उन्हें स्वर्ग कहाँ से मिलेगा, अत: उन्होंने नर्क का ही रुख़ किया।

नर्क मे प्रवेश करते ही मुरारी की मुलाक़ात साक्षात यमराज से हो गई जो यमलोक में मार्निंग वॉक पर निकले थे। मुरारी लाल को सशरीर वहाँ देखकर यमराज की भोंहें टेड़ी होती उससे पहले ही मुरारी लाल ने उनके पैर पकड़ लिए – 'माई बाप, आप कुपित मत होइए .. मैं तो सपने मे यहाँ का हाल-चाल जानने आया हूँ ताकि जब मैं यहाँ आऊँ तो आसानी से एडजस्ट कर सकूँ।'

'तुझे कैसे पता कि तू मरकर यहीं आएगा .. क्या हमारे यहाँ से कोई सूचना लीक होकर तुझ तक पहुँची है' – यमराज के स्वर मे तल्ख़ी थी।

यमराज का रुख देखकर मुरारी लाल डर गया .. कहीं यमराज असमय ही उसे यहाँ की सीट अलॉट न कर दें। गिड़गिड़ाते हुए बोला – 'हुज़ूर .. हम तो ज़मीन पर ही नर्क जैसे हालात में जी रहे हैं तो मरकर भी हम यहीं तो आएँगे .. भला हमें कौन सूचना लीक करेगा .. हमें तो लोग अपने पास बिठाते तक नहीं।'

'तो फिर तू जा यहाँ से' – यमराज बोले।

'जी हुज़ूर .. पर एक दरखास्त है ..यहाँ तक आ ही गया हूँ तो नर्क का एक राउण्ड लगवा दीजिए' – मुरारी लाल हाथ जोड़ कर बोला।

'ठीक है .. एक घंटे का समय देता हूँ तुझे ..इस यमदूत के साथ चला जा और समय सीमा के अंदर धरती पर लौट जाना' – यमराज ने उसकी विनती स्वीकार कर ली।

'ये नर्क का सेलेब्रिटी सेल है .. यहाँ दुनिया के अधिकांश ऐसे सेलेब्रिटीज़ हैं जिन्हें धरती पर बहुत मान-सम्मान मिला था तथा इनमें से तो कई भगवान् जैसे भी पूजे जाते रहे हैं' – यमदूत ने मुरारी लाल को नर्क के पहले वार्ड में घूमते हुए जानकारी दी।

'पर ये यहाँ क्यूँ हैं .. इन्हें तो स्वर्ग में होना चाहिए था' – मुरारी लाल ने विस्मय से यमदूत को देखा।

'ये सब कपटी, धूर्त और बहुरूपिये हैं .. उस फ़िल्मी हीरो को देखो जिस पर कोड़े पड़ रहे हैं उसने आठ हीरोइनों का सेट पर ही शारीरिक शोषण किया था। और ये नेता जी जिन्हें कोल्हू में जोता गया है करोड़ों का स्केम कर यहाँ आया है .. उस क्रिकेटर को देखो जिसे खौलती कड़ाही के ऊपर उलटा लटकाया गया है .. मैच फिक्सर था .. उधर बाबा जी को देखो जिन्हें नंगा कर अंगारों पर लिटाया गया है समलैंगिक था .. और ये ..हाँ हाँ ये ही .. नामी उद्योगपति था .. इसने ग़रीबों का ख़ून चूस-चूस कर अपना बिज़नेस अंपायर खड़ा किया था अब चील कौओं के बीच में पड़ा तड़पता रहता है, .. ये चिथड़े काले कोट वाले को देख रहे हो न .. नामी वक़ील था .. सारे अपराधियों की पैरवी करता था .. अब वही अपराधी इसकी दिन-रात बजा रहे हैं .. और ये पुलिस वाला जो ख़ुद को हमारा प्रतिरूप समझता था .. अब हर रोज़ उसी के डंडे से तोड़ा जाता है उसे' .. यमदूत किसी सधे हुए कमेंट्रीकार की तरह विवरण दे रहा था।

'ये तानाशाहों के पिंजड़े है .. यहाँ मुसोलिनी, मुगाबे, इदी अमीन, किम जोंग से लेकर याह्या खान तक को रखा गया है। इन्हें खाने के लिए सुबह शाम दो बार भेड़ियों का माँस दिया जाता है।' – यमदूत ने बताया।

'पर यहाँ हिटलर नहीं दिख रहा है' – मुरारी लाल ने जिज्ञासा वश पूछा।

संपर्क : डी-1/35 दानिश नगर
होशंगाबाद रोड, भोपाल- 462026 (म0प्र0),
मोबाइल : 9893007744
ईमेल : arunarnaw@gmail.com

'कुछ समय पहले ही उसकी आत्मा के जीवाश्म को उत्तर कोरिया भेजा गया है और किम जोंग उल में ट्रांसप्लांट किया गया है।' - यमदूत ने बताया।

'आत्मा का जीवाश्म'- मुरारी ने अनपढ़ों की तरह यमदूत की ओर देखा।

'तुम्हें आध्यात्मिक डेफिनेशन समझ में नहीं आएगी .. तुम इस तरह समझो .. जैसे ज़मीन पर आजकल डॉक्टर अनेक रोगियों को ब्लड के स्थान पर प्लेटलेट्स देते है उसी तरह अब हम लोग पुरानी आत्माएँ सीधे ट्रांसप्लांट नहीं करते .. उनके जीवाश्म काम में लेते हैं।'

'रावण की आत्मा भी नहीं दिख रही है क्या उसे भी ज़मीन पर स्थांतरित किया गया है।' - मुरारी लाल ने पुनः प्रश्न भरी निगाहों से यमदूत को देखा।

'नहीं भाई मुरारी, आजकल धरती से हर रोज रावण से ज़्यादा जघन्य कार्य करने वालों की खेप पर खेप आती रहती है .. उनके बीच रावण बड़ा भला लगता था अतएव उसे काफ़ी पहले ही देवलोक की किसी विंग मे शिफ़्ट किया जा चुका है' यमदूत ने स्थिति स्पष्ट की।

'ये देखो .. ये आतंकवादियों का शिविर है .. यहाँ चुड़ेलें उनके साथ गलबइंया कर रही हैं।' यमदूत ने नर्क के पश्चिमी कोने की और इशारा किया।

'वह उस कोने में बैठा युवक, जिसे चार-पाँच चुड़ेलों ने घेर रखा है क्या बड़बड़ा रहा है' - मुरारी लाल ने उँगली से इशारा कर यमदूत को बताया।

'हाँ वह .. मुस्तकीम नाम है उसका .. सुसाइड बॉम्बर था .. दिन-रात बड़बड़ाता रहता है .. सालों ने बहत्तर हूरों के चक्कर में बेमौत मरवा दिया' - यमदूत ने मुरारी को वस्तुस्थिति बताई।

'और वह जो फूटफूट कर रो रहा है ..' मुरारी ने एक अन्य आतंकी की ओर इशारा किया।

'इसने एक स्कूल में गोलियाँ बरसाईं थीं .. गत हफ़्ते इसे स्वर्ग में उस हादसे में मारे गए बच्चों से मिलवाने ले गए थे .. तभी से यह रोए जा रहा है' - यमदूत ने बताया।

दोनों थोड़ा आगे बढ़े .. सामने पॉलिटीकल तंबू तना था। मछली बाज़ार सरीखा आलम था वहाँ। सब एक-दूसरे को गालियाँ दे रहे थे .. कुछ हाथापाई में व्यस्त थे तो कुछ कपड़े फाड़ रहे थे। तभी वहाँ एक हाईकमान टाइप का यमदूत प्रकट हुआ तो सभी नेता उसके चरण छूने को पिल पड़े। मुरारी समझ गया कि ये उसके देश के ही कर्णधार नेता हैं। गाइड यमदूत ने उसे बताया -'ये सभी भूख से बिलबिला रहे हैं .. इन्हें खाने में घास, नोटों की गड्डियाँ, खदानों की भस्म, स्पेक्ट्रम, ताबूत, गोला-बारूद और ऐसी ही बहुत सारी चीज़ें दी जाती हैं। ये हाइकमान से रोटी के लिए गिड़गिड़ा रहे हैं।'

थोड़ा आगे चलने पर उन्हें क्रिमनल वार्ड मिला। यहाँ यमप्रहरी तरह-तरह की यातनाएँ देने में व्यस्त थे। किसी के पैरों में कीलें ठोंकी जा रही थी .. किसी के नाख़ून निकाले जा रहे थे .. किसी के कानों में सीसा भरा जा रहा था तो जोंक किसी का ख़ून चूस रही थी। यमदूत ने बताया - यहाँ पर बलात्कारी, तेज़ाब फेंकने वाले, बच्चों से दुष्कर्म करने वाले और हत्यारे लोग रखे जाते हैं।

मुरारी ने घड़ी देखी, उसके लौटने का समय हो चला था। अभी नर्क के कई सेक्शन बाक़ी थे देखने को। उसने यमदूत से कहा -'अब वापस जाने का समय हो रहा है .. अब तक यहाँ हमारी बस्ती का कोई नहीं दिखा .. बस आप मुझे उनके सेक्शन में ले चलिए।'

यमदूत उसे उस तरफ़ ले आया । यहाँ का पूरा नज़ारा बदला हुआ था - साफ़ सुथरी जगह, हल्का फुल्का काम करते लोग, खाने-पीने की धरती जैसी व्यवस्था । मुरारी को परेशान देख यमदूत ठहाके लगाकर हँसा -'तुम्हारी बस्ती के लोग तो पेट की आग बुझाने के लिए छोटे-मोटे अपराध करते हैं जिनकी सज़ा तो वे धरती पर ही भुगत लेते हैं .. अतः उन्हें यहाँ सॉफ्ट ज़ोन में रखा जाता है । उधर गिरधारी चाचा को देखो .. जिनका मकान समय पर बैंक की किस्त न भर पाने के कारण बैंक ने कुर्क कर लिया था पर उसी बैंक ने करोड़ों की रक़म लेकर फ़रार हो जाने वाले पर कोई कार्यवाही नहीं की। ये रहीम हैं .. बिचारे बीफ खाने के आरोप में भीड़ द्वारा मार दिए गए थे .. ये भीमा है जिसने माँ के इलाज के लिँए दो हज़ार रुपए चुराए थे और दो साल जेल काटी थी .. यहाँ सब ऐसे ही लोग हैं जिन्हें धरती पर न्याय नहीं मिला .. लेकिन हमारे महाराज पूरा न्याय करते हैं।'

मुरारी ने घड़ी देखी .. एक घंटा हो गया था .. उसकी नींद खुली तो उसे बहुत हल्का महसूस हो रहा था।

****

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें।

-संपादक

vibhom.swar@gmail.com

सूर्यबाला के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'वेणु की डायरी' का एक अंश

प्रवासी बेटे के फ़ोन
राजी ख़ुशी की इत्तला...

हैलो माँ ! पुराने ज़माने की चिट्ठियों में वो क्या लिखा करते थे- 'यहाँ सब राजी खुशी है...' बस इसी वजह से फ़ोन नहीं कर पाया तुम लोगों को... तो तुम, और पापा से भी कह देना, चिंता न किया करें। अब भाग-दौड़ और व्यस्तताएँ तो बढ़ेंगी ही न ज़िन्दगी में। बताया था न तुम्हें और पापा को कि मंदी को धत बताते हुए, मेधा की सलाह पर हमने अपनी एक मेडिकल चेन की फ्रेंचाइज़ी खोल ली है। आसान नहीं था यह काम लेकिन मेधा का अपने बॉस एलफ्रेंड और पब्लिक रिलेशन की क्रिस्टीना के कॉनटेक्टस काम आए। तो अब तुम्हारा सॉफ्टवेयर इंजीनियर बेटा वेणु, इस मेडिकल शॉप के कॉउटर पर खड़ा रहता है।

एक तरह से अच्छा हुआ न! वरना सॉफ्टवेयर का तमगा चिपकाये, सारे दिन अखबारों, इंटरनेट पर जॉब-वेकेन्सीज़ एक्सप्लोर करते रहना और एप्लीकेशन, बायोडेटा के साथ ऑन-लाइन एप्लाई कर-कर के, बेशुमार 'नो रिप्लाइज़' के बावजूद, अपने हठ बनाम ईगो के शालिग्राम की आचमनी करते रहना... यह सब कोरी भावुकता बनाम मूर्खता ही होती। जानता हूँ, तुम्हारे लिये ज़रूर मेरी सॉफ्टवेयर की डिग्री के रुतबे से बाहर आना, खासा शॉकिंग होगा.... लेकिन सोचो तो काम, काम, सब एक से। यहाँ इतने घमासान से गुज़रने के बाद लगता है, अपनी जाति, वर्ग, कामों की श्रेणियों आदि को लेकर हम ज़रूरत से ज़्यादा पूर्वाग्रही हैं बल्कि पिछड़ी सोच वाले। स्टेटस-कांशस तो पूरी दुनिया में हम भारतीयों से ज़्यादा कोई है ही नहीं। भूखों मर जाएँगे लेकिन अपना कचरा भी नहीं उठाएँगे। उठाएँगे भी तो यहाँ विदेश में आकर। किसी को कानो-कान खबर न हो। कोई पूछे कि जब मनुष्य, मनुष्य सब एक से, कोई छोटा-बड़ा ही नहीं तो ऊँचे नीचे कामों की ग्रेडिंग कैसे? लेकिन यहाँ आकर हमारा सारा आध्यात्म, दर्शन, चुपके से पल्ला झाड़कर भाग खड़ा होता है।

भूमिका लंबी हो गई जबकि बात सिर्फ इतनी कि सवाल 'चॉयस' का ही नहीं 'सरवाइवल' का भी है। और यह तो तुम्हारे सुभाषित भी कहते हैं कि जिसके पास धन है वही विद्वान है, वही शीलवान और नीतिज्ञ है, गुणवान और कुलीन भी वही है, सुदर्शन और श्रुतवान भी।

संपर्क : बी. 504, रुनवाल सेंटर, गोवंडी स्टेशन रोड देवनार, मुंबई-88
मोबाइल : 9930968670
ईमेल : suryabala.lal@gmail.com

इंटरमीडिएट में जिन श्लोकों को रट्टा मारकर संस्कृत में अठानवे प्रतिशत मार्क्स लाया था, उसमें परीक्षा की दृष्टि से अवस्थी सर ने सबसे इंपार्टेंट यही श्लोक अंडर लाइन कराया था-

यस्यांति वित्तं, स नरः कुलीनः
स पंडितः श्रुतवान, गुणज्ञः
स एव वक्ता, सचदर्शनीयम्
सर्वे गुणाः कांचन माश्रयंति।

यानी सुभाषितकार भी इन स्थितियों से गुज़र चुके थे। सबको अपने समय और स्थितियों से समझौते करने पड़ते हैं। और इसमें बुरा भी कुछ नहीं। मेधा भी तो ठीक यही कहती है।

(यानी मेधा के 'कहे' और सुभाषितों में कोई खास अंतर नहीं।....)

****

हैलो माँ ! पापा! सॉरी फिर देर हो गई। असल में पिछले दिनों हमने घर बदला। (दोस्तों ने तो काफी पहले बदल लिये थे।) तो अब हमारे पास भी लाल ईंटों के पोर्च और दूधिया रंगत वाला एक पॉश कलोनियल बंगलो है। गृहप्रवेश यानी हाउसवार्मिंग पार्टी भी हो गई, मेधा के मन लायक।

इसके चारों तरफ खूब हरी घास वाला लॉन है। नीले साफ पानी वाला स्वीमिंग पूल भी। होते हैं, ऐसे बंगलों में। बैकयार्ड में बास्केट बॉल और बैडमिंटन के पोल लगे हैं। बेटू को कोचिंग के साथ-साथ घर में भी प्रैक्टिस ज़रूरी थी। नीचे बेसमेंट है जिसे फरनिश करा के बच्चों के लिए स्नूकर और बिलियर्ड के टेबुल भी लग गए हैं। यहाँ बर्फीली ठंड के मौसम, इतने लंबे और सन्नाटे होते हैं कि बच्चों को व्यस्त रखना सबसे बड़ा चैलेंज। अभी साशा के लिए लॉन में झूले और स्लाइड भी लगवाने हैं। आसपास के सभी घरों में हैं न! और यह सब लगवाना नहीं बल्कि पार्ट्स लालाकर मुझे ही पूरी मज़दूरी और कारपेंटरी करनी है। यहाँ चीज़ों से ज़्यादा महँगी मज़दूरी है। मैं, थोड़ा सस्ता मज़दूर।

****

हैलो माँ! पापा! आज मेधा की नई गाड़ी आ गई। सिल्वर-ग्रे ऑडी। बहुत दिनों से मन था उसका। यहाँ छः आठ साल से ज़्यादा गाड़ियाँ नहीं रखी जातीं। वरना निकालने में हज़ार दिक्कतें। मेरी है न पुरानी वाली माज़दा। सब लोग मज़ाक बनाते हैं। सड़क पर छोड़कर भाग भी नहीं सकता। फाइनकट जाएगा। सिर्फ साल्वेशन आर्मी को दान की जा सकती है। हाँ-हाँ मेधा खुश है। अपनी नई ऑडी में ऑफिस जाने से पहले मुझे किस करना नहीं भूलती। आज तो मुझे 'किस' करने की जल्दबाज़ी में थोड़ी काफी भी उसकी स्कर्ट पर भी छलक गई। मुझे खराब लगा।

मेधा बच्चों के लिए एक वी-मशीन भी ले आई। वी-मशीन तुम नहीं जानती होगी। समझ लो एक वेट मशीन जैसी। उसी पर खड़े होकर सामने लगे स्क्रीन पर, हाथों में रिमोट लिये पैरों को कम ज़्यादा एक्सेलेटर की तरह दबाते हुए मेमरी में फीड किये कॉमिक के तेज़ रफ़्तार में भागते, खाई खंदकों में गिरते-उठते एलियंस, आग-बारूद और तमाम सारे भयानक से भयानक कैरेक्टर्स वाले जीवों के साथ भिड़ते-भिड़ाते रहते हैं बच्चे। अपने स्कोर भी बनाते जाते हैं। काफी एक्साइटिंग होता है। वो जो कहते हैं थ्रिल आज के समय की सबसे बड़ी ज़रूरत। तो दोनों को अच्छा टाइम पास मिल गया। काफी एन्जॉय करते हैं। मेधा जो चाहती थी, उसमें से काफी सारी चीज़ें उसके पास हो गईं ...

आगे जो चाहेगी, वह आगे की बात।

****

हैलो माँ! इस हफ्ते हमारे वेसमेंट में 'होम थियेटर' भी हो गया। अब तुम और पापा आओगे तो आराम से घर बैठे, मनचाही मूवीज़ देख सकते हो। यहाँ की लाइब्रेरी में अच्छा कलेक्शन है, नई पुरानी-हिन्दी अंग्रेज़ी की तमाम सारी फिल्में। हाँ, मुझे वसु से भी बात करनी है। इस बार उसे भी आना है।

सालों पहले के उस पासपोर्ट ऑफिसर के रूड बिहेवियर वाली बात, गाँठ बाँधकर बैठ गई। अरे ऐसे कहीं ज़िंदगी चलती है? एक तरह से खुद को पनिश करना ही हुआ न! उसके रोहित सर का चले जाना तो खैर अच्छा ही हुआ। धीरे-धीरे अपने 'इमोंशनल-इमबैलेंस' पर काबू पालेगी। यहाँ आएगी तो ज़िंदगी और चीज़ों को देखने का नज़रिया भी बदलेगा उसका। (मेरी तरह ही) मेधा के साथ रहकर बहुत कुछ सीखेगी, जानेगी। पुराने और नए एटीकेट्स में आए फर्क भी।

अब जैसे यही कि तुम्हारी ज़िंदगी का तो लगभग दो-तिहाई हिस्सा किचेन में ही बीत गया। खाना तो खाना, सुबह-शाम के नाश्ते में भी इतने आइटम्स, व्यंजनों की छौंक बघारें कि एक पूरा दिन स्वाहा। और देखते-देखते जीवन ही। यहाँ ऐसा कोई झंझट मेधा नहीं पालती। मेधा ही क्या दूसरे लोग भी।

किचेन की कैबिनेट्स में तरह के सीरियल और फ्रिज में दूध, जूस के कैन। बटर, चीज, जैम और मार्मलेड, ब्रेड की तमाम किस्में। लेकर खाओ अपने समय और टेस्ट के हिसाब से। जब उठो, जब चाहो, तब, बड़े बुजुर्ग से लेकर बच्चे तक, खुद लो। कोई किसी को देता नहीं। न एक-एक को लाकर टेबल पर इकट्ठा करने की ज़रूरत। आज ही, मेधा कब की गई अपनी कॉफ़ी और टोस्ट लेकर। तुम कहोगी, उसे जल्दी थी तो तुम्हें उसके लिए कॉफ़ी बना देनी थी न, (जैसे तुम बनाया करती थी...) लेकिन कहा न, यह सब कब का छोड़ चुके हम। अब घर में सब अपना समय और सहूलियतें देखते हैं। जैसे मैं भी आज अपने टाइम से उठा। किचेन की कैबिनेट और फ्रिज खोल कर अंदाज़ा... फ्रिज में हैशपौट्टो दिखे। समझो, 'चीज़' वाले आलू चॉप। मन किया और आलस नहीं आई तो दो तीन ग्रिल में डाल दिये। और कॉफी बना ली। तो अपनी तो दावत हो गई, नाश्ते पर समझो।

****

और- फूलों भरी क्यारियों से सजी सिमेट्री...

हाँ माँ, एक बात कहनी है तुमसे, समझ में नहीं आ रहा कैसे कहूँ, लेकिन कहना भी ज़रूरी है। वो तुमने पिछली के पिछली बार कहा था न कि लोकेंद्र अंकल बीमार हैं। (ऐसा इंडिया में तुमने सुना है) और चाहा था कि मैं ज़रा एक बार उन्हें जाकर देख

आऊँ। मैंने एक दो बार फ़ोन किया, नहीं लगा तो बात रह गई। फिर एक दिन अचानक उनका फ़ोन आया। पता चला वे तो इसी शहर के सबसे बड़े ट्यूबर कोलोसिस के हॉस्पिटल में शिफ्ट कर दिये गए हैं। मेरे ऑफिस से ज़्यादा दूर नहीं था। इसलिए एकदिन ऑफिस से लौटते हुए चला गया। बेहद खुश हुए मुझे देखकर। शरीर कमज़ोर था पर मन उत्साहित। खुशी इसलिए कि लिज़ यहाँ इस हॉस्पिटल में ज़िद कर ले आई क्योंकि एक तो न्यूहैंपशायर की तुलना में कहीं ज़्यादा बेहतर अस्पताल, दूसरे बेटी सूजी का ट्रांसफर भी यहीं हो गया है। इस तरह लिज हफ्ते के हफ्ते उन्हें विजिट कर जाया करेगी।

चलने को हुआ तो साथ-साथ अस्पताल की छठीं मंजिल के कॉरीडोर तक चलते आए। अचानक नीचे ग्राउंड में हॉस्पिटल के दाँई तरफ काफी दूर तक हरे पेड़ पौधों से और फूल की क्यारियों से सजा पार्क देखकर मैं ठिठका क्योंकि वह पार्क नहीं, सिमेट्री थी... अंकल अपने विशिष्ट अंदाज में मुस्कराए - 'देखा! आराम से, दवा खाते, थर्मामीटर लगाए-लगाए अपने लिए 'मनपसंद जगह' चुन सकता हूँ मैं...

कुल मिलाकर अच्छा ही साउंड कर रहे थे। कह भी रहे थे कि पहले से बेहतर हैं। बाद में कई बार प्लान किया मैं और मेधा ऑनेस्टली जाने वाले थे ही, लेकिन उन्हीं दिनों बेटू की स्विमिंग मीट, साशा का जूनियर जिम और मेधा की टूरिंग भी...। तो बस ऐसे ही टालता रहा। लेकिन दो तीन हफ्ते बाद जब पहुँचे तो हॉस्पिटल की रिसेप्शनिश्ट ने बताया 'ही इज नो मोर...'

सचमुच शॉक लगा हमें। अपोलोजाइज़ करती सिस्टर को वह जगह भी याद थी; जिसे अपनी हॉस्पिटल की बेड से देखते हुए अंकल ने अपने क्रेमेशन के लिए चुना था। हमें बताया गया, उन्होंने अपनी दफनाये जाने की ही विल लिखी थी जिससे लिज़ और सूज़ी जब चाहें, उनकी ग्रेव-विज़िट कर सकें वरना भारतीय तरीके से कोई एक जगह तय नहीं हो पाती जहाँ वे दोनों आकर उन्हें याद कर सकें।....

****

ग़ज़ल

डॉ. राकेश जोशी की ग़ज़लें

उसने जब-जब कोई मुझसे सवाल पूछा है
मैंने तब-तब पलट के उसका हाल पूछा है
युग बदल जाने की बातें तो बड़ी हैं शायद
कैसे गुज़रेगा ग़रीबों का साल, पूछा है
अपने हाथों में कटोरा लिए इस धरती ने
कब से मिलने लगेगी सबको दाल, पूछा है
इक शिकारी को परिंदों की मिली है चिट्ठी
कब तलक लेके वो आएगा जाल, पूछा है
ये हवा अब भी हिलाती है पत्तियों को मगर
कब ये ताक़त से हिलाएगी डाल, पूछा है
कब हक़ीक़त में बदल पाएँगे सपने अपने
कब से धरती पे होगा ये कमाल, पूछा है
उनके शहरों में तो होते हैं हमेशा बलवे
अपने गाँवों में होगा कब बवाल, पूछा है

***

अँधेरी रात में पहने हुए गहने से डरते हैं
शहर के लोग तो शहरों में भी रहने से डरते हैं
नई तहज़ीब के लोगों, मैं झूठों से नहीं डरता
मैं उन सच्चों से डरता हूँ, जो सच कहने से डरते हैं
हमारी दोस्ती पक्की है अब भी इसलिए शायद
मैं कुछ कहने से डरता हूँ, वो चुप रहने से डरते हैं
जिन्हें तालाब का ठहरा हुआ पानी डराता है
नदी मिलती है तो उसमें भी वो बहने से डरते हैं
मैं उन महलों में रहता हूँ जो ऊँचे तो बहुत हैं पर
पुराने हो गए हैं और अब ढहने से डरते हैं
यहाँ हर रोज़ कोई ज़लज़ला, सैलाब आता है
सुना है, इस जगह के लोग दु:ख सहने से डरते हैं

***

असिस्टेंट प्रोफेसर (अंग्रेज़ी)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोईवाला
देहरादून, उत्तराखंड

ग़ज़ल

अशोक मिज़ाज

दिखाने भर के लिए पट लगाए रहता है,
ये दिल जो लोहे की चौखट लगाए रहता है,
उसे सुकून से रहना कतई पसंद नहीं,
पडोसी नित नई खटपट लगाए रहता है।
मेरी गली से गुजरता है रोज़ इक पागल,
वफ़ा वफ़ा की सदा रट लगाए रहता है।
कोई ख़याल अकेला कभी नहीं रहता,
हमेशा यादों का जमघट लगाए रहता है।
कभी तो लौट के आएगा अम्न का मोहन,
कि जिसकी आस ये पनघट लगाए रहता है।

***

होंठों पे फ़क़ीरों के दुआ भी नहीं आती,
अब एक रुपैये में हवा भी नहीं आती।
सर्दी में लगा करती है अब जून सी गर्मी,
सावन के महीने में घटा भी नहीं आती।
साँसों की वो सरगम भी सुनाई नहीं देती,
अब दिल के धड़कने की सदा भी नहीं आती।
गुलशन की उन्हें फ़िक्र भी क्या होगी कि जिनको,
कलियों को मसलने में दया भी नहीं आती।
औरत भी चला करती है अब तान के सीना,
मर्दों को मगर शर्म ज़रा भी नहीं आती।

***

संपर्क: एच-40, शांति विहार कॉलोनी,
मरकरोनिया, सागर, मप्र
मोबाइल:09926346785

आशा शैली

इस धूप का है हम से क्या रिश्ता ये क्या कहें
बेबर्ग शजर जिन्दग़ी का फलसफ़ा कहें
साहिल पे कहाँ डूबती हैं कश्तियाँ ऐ दोस्त
गर चल पड़े हवा ही मुख़लिफ़ तो क्या कहें
वो कौन था जो ज़ीस्त को दुश्वार कर गया?
दुश्मन नहीं प' दोस्त उसे किस तरह कहें
जिस के तले गुज़ारी दोपहर सी ज़िन्दगी
कैसे उसी शजर को कहो अलविदा कहें
वो रात भर ग़मों के अंधेरों में जगा है
वाजिब कहाँ है सुबह हुई, जाग जा कहें?

***

करो न चारागरो कुछ मेरी शफा के लिए
है मेरे दिल में तड़प दर्दे ला-दवा के लिए
उमीदो-बीम के जंगल का वो परिन्दा हूँ
अज़ल से उड़ता रहा है जो हमनवा के लिए
न जाने कौन से रिस्ते से हो के गुज़री हूँ
हरेक शाख़ तरसती रही सबा के लिए
तिरे मकान में खिड़की नहीं है कोई अगर
कोई शिगाफ़ ही रख ले कहीं हवा के लिए
हैं चन्द रोज़ बुत हसीं, लुभावनी शक्लें
बनाया जिन को गया है फक़त फना के लिए

***

कार रोड, पोस्ट लालकुआँ, जिला
नैनीताल, उत्तराखंड 262402
मोबाइल 9456717150

चन्द्रसेन विराट

अब समस्या को न पाला जाये
कुछ समाधान निकाला जाये
अंग विकृत, न दवा लगती है
अब इसे काट ही डाला जाये
आज ही करके रहो शल्य-क्रिया
फिर इसे कल पे न टाला जाये
अब नहीं दीप, मशालें बालों
कोनों कोनों में उजाला जाये
अब ज़रूरत है नए रत्नों की
फिर समुन्दर को खंगाला जाये
बीज फूटेगा वही सपनों का
स्वेद में जिसको उबाला जाये
पंक्ति के अंत में जो भूखा है
उसके मुँह तक भी निवाजा जाये
गर्म फौलाद युवा हाथों का
शीघ्र ही साँचों में ढाला जाये
बात हो मेरी तुम्हारी सीधी
बीच वाले को हकाला जाये
कहना दुष्यंत का मानें, पत्थर
अब तबीयत से उछाला जाये

***

121, बैकुंठधाम कॉलोनी,
आनन्द बाजार के पीछे,
इन्दौर-452018 (म.प्र.)
मो. 09329895540

एक आवश्यक सूचना

मित्रो, 2016 से मैं और पंकज सुबीर अंतरराष्ट्रीय पत्रिका विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी से जुड़ चुके हैं; जो भारत और अमेरिका की साझी पत्रिका है और पूरे विश्व में इनका विस्तार है। 2015 तक हम हिन्दी चेतना के साथ थे पर अब हमारा उससे कोई नाता नहीं। हिन्दी चेतना के संचालकों ने निर्णय लिया है, वह सिर्फ कैनेडा की ही पत्रिका रहेगी। भारत में उसका प्रकाशन बंद कर दिया गया है। कई मित्र हमारे इनबॉक्स में और ईमेल द्वारा अपनी भेजी गई सामग्री के बारे में हमसे जानना चाहते हैं। कृपया अगर आपको इन पत्रिकाओं के लिए सामग्री भेजनी है तो निम्न ईमेल पर भेजें, हम आभारी होंगे और साथ ही यह जानकारी भी दें कि आपको पत्रिकाएँ कैसी लगीं! vibhomswar@gmail.com, shivna.prakashan@gmail.com

-सुधा ओम ढींगरा

प्रबुद्ध सौरभ की ग़ज़लें

प्रबुद्ध सौरभ
बी- 507, हिमालय अपार्टमेंट
सेक्टर 5, वसुन्धरा, ग़ाज़ियाबाद
मोबाइल 8130988211
ईमेल :
prabudha.saurabh@gmail.com

आँखों से मुहब्बत के इशारे निकल आए
बरसात के मौसम में सितारे निकल आए
वो एक ही क़तरा था जिसे ज़ब्त था मालूम
वो ढलका तो फिर सारे के सारे निकल आए
गिन गिन के मुनाफ़े ही बटोरे थे उमर भर
जब तौल के देखा तो ख़सारे निकल आए
मैं बाँटता हूँ नींद ये बोला ही था बाबा
धनवान सभी हाथ पसारे निकल आए
दो पल ही गुज़ारी थी शब्-ए-वस्ल अभी तो
इतने में मुए भोर के तारे निकल आए

***

गोरखधंधा हो जाऊँ क्या?
मैं भी तुम सा हो जाऊँ क्या?
ग़ज़लों की बस्ती सूनी है
फिर आवारा हो जाऊँ क्या?
सच का गिरवी छुड़वाना है
थोड़ा झूठा हो जाऊँ क्या?
सावन ने आँसू से पूछा
मैं भी खारा हो जाऊँ क्या?
सब उम्मीदें डूब रही हैं
तिनका-तिनका हो जाऊँ क्या?
घर-दफ़्तर के बँटवारे में
आधा-आधा हो जाऊँ क्या?
मंडी अब बस उठने को है
थोड़ा सस्ता हो जाऊँ क्या?
सब का हो कर देख चुका हूँ
वापस ख़ुद का हो जाऊँ क्या?

***

दोनों जानिब क़ैदशुदा इस ख़ुशफ़हमी में रहते हैं
सरहद के उस पार परिन्दे आज़ादी में रहते हैं
शाम तलक आदाब बजाते गरदन दुखने लगती है
प्यादे हो कर शाहों वाली आबादी में रहते हैं
गर रोए तो आँखों के सब बाशिन्दे बह जाएँगे
हाय! शिक़स्ता ख़्वाब हमारे इस बस्ती में रहते हैं
ज़ीना-दर-ज़ीना जब तेरी याद उतर कर आती है
मुँह बाए अश'आर हमारे हैरानी में रहते हैं
उसकी बक-बक घर से चल कर चाँद तलक हो आती हैं
और हम ग़ुम उसके होठों की तुरपाई में रहते हैं
चार किताबें साथ नहीं और सौ ग़ज़लें कह भी मारीं
अब के लिखने वाले जाने किस जल्दी में रहते हैं
आधी रात ग़ज़ल कहने का शौक़ किसे है 'सौरभ' जी
बस इतनी सी बात है, तब हम तन्हाई में रहते हैं

***

मेरी आँखों से हिजरत का वो मंज़र क्यों नहीं जाता
बिछड़ कर भी बिछड़ जाने का ये डर क्यों नहीं जाता
अगर यह ज़ख़्म भरना है, तो फिर भर क्यों नहीं जाता
अगर यह जानलेवा है, तो मैं मर क्यों नहीं जाता
अगर तू दोस्त है तो फिर ये ख़ंजर क्यों है हाथों में
अगर दुश्मन है तो आख़िर मेरा सर क्यों नहीं जाता
बताऊँ किस हवाले से उन्हें बैराग का मतलब
जो तारे पूछते हैं रात को घर क्यों नहीं जाता
ज़रा फ़ुर्सत मिले क़िस्मत की चौसर से तो सोचूँगा
कि ख़्वाहिश और हासिल का ये अंतर क्यों नहीं जाता
मेरे सारे रक़ीबों ने ज़मीनें छोड़ दीं कब की
मगर अश'आर से मेरे वो तेवर क्यों नहीं जाता
मुझे बेचैन करते हैं ये दिल के अनगिनत धब्बे
जो जाता है वो यादों को मिटा कर क्यों नहीं जाता

***

तीरगी की अपनी ज़िद है, जुगनुओं की अपनी ज़िद
ठोकरों की अपनी ज़िद है, हौसलों की अपनी ज़िद
कौन सा किस्सा सुनाऊँ आपको, मुश्किल ये है
आँसुओं की अपनी ज़िद है, क़हक़हों की अपनी ज़िद
गीत मेरे चूम आएँगे तुम्हें बनकर सबा
सरहदों की अपनी ज़िद है, हसरतों की अपनी ज़िद
रास्तों ने खूब समझाया, उलझना मत, मगर
रहज़नों की अपनी ज़िद है, रहबरों की अपनी ज़िद
हाय टपका है लहू फिर आज के अख़बार से
चाकुओं की अपनी ज़िद है, पसलियों की अपनी ज़िद
धड़कनों की बात मानूँ या कि आईने की अब?
आरज़ू की अपनी ज़िद है, झुर्रियों की अपनी ज़िद

***

दिल मुहब्बत का भर गया हमसे
बेवफाई वो कर गया हम से
इक हक़ीक़त की निगहबानी में
एक सपना बिखर गया हमसे
ख़ुद से कैसे नज़र मिलाएगा
जो बचाकर नज़र गया हमसे
क़द बढ़ाने की आज़माइश में
अपना साया ही डर गया हमसे
हमने झोंका समझ के रोका था
इक तलातुम ठहर गया हमसे
मेरी साँसे भी साथ चल देंगी
तू बिछड़ कर अगर गया हमसे
उम्र कट लेगी इस ख़ुमारी में
एक मिसरा संवर गया हमसे

***

दिन गिरवी रख बोई रातें
अधजागी अधसोई रातें
तन्हाई के ग़म से गूंधी
सन्नाटे की लोई रातें
कोरों पर चुप सूख रही हैं
नम ख़्वाबों से धोई रातें
चार क़दम को सब्र बहुत था
फिर मीलों तक रोई रातें
हमसे पूछो किस मुश्किल से
तर पलकों पर ढोई रातें
कैसे-कैसे ख़्वाब पकाए
दिल के हाथ रसोई रातें
बिन मौसम के रजनीगंधा
उसकी याद में खोई रातें
सो जाओ अब रात का क्या है
कोरी किस्सागोई रातें

***

चूक गया वो जल जाने की कोशिश में
शिद्दत कम थी परवाने की कोशिश में
दो सच आपस में लड़ भिड़ कर ख़त्म हुए
इक दूजे को झुठलाने की कोशिश में
मांगा होता तो जाँ भी दे देता, पर
वो था मुझको हथियाने की कोशिश में
आँख बचा कर निकला हूँ जैसे-तैसे
नज़रें थी फिर टकराने की कोशिश में
मत पूछो किस जद्दोजहद से गुज़रे हैं
ख़ुद को ख़ुद तक पहुँचाने की कोशिश में
रात ढले जुगनू ने रस्ता दिखलाया
दिन वाले थे भटकाने की कोशिश में

***

कविताएँ

रश्मि प्रभा

संपर्क: House no - 559, 8th main road, yth block, Koramangla, Banglore – 560034
ईमेल: rasprabha@gmail.com
मोबाइल : 7899801358

मैं कर्ण

मैं कर्ण
पिता अधिरथ
और राधे का गुनहगार!
ताउम्र
क्षत्रिय वंश सुनने के लिए
कुंती पुत्र कहलाने के लिए
अपने आक्रोश में
पिता की सकारात्मकता से अलग
नकारात्मक रूप से तपता रहा !!
समय ने
परिस्थितियों से जूझने के लिए
जन्म से कवच कुण्डल दिया था
लेकिन अपमान की पीड़ा में
मैंने सब स्वाहा कर दिया ज
राधे और अधिरथ ने
मुझे सारे मान दिए
मेरी हर भूख के आगे
एक निवाला लिए खड़े रहे !
वह मेरे प्रश्नों की भूख हो
या खौलते वक़्त की पीड़ा हो
उनका हाथ मेरे सर पे रहा !!!
माना ज़रूरत पड़ने पर ही
कृष्ण ने मुझे अपने समकक्ष बिठाया
मेरे सत्य को शब्दों में उजागर किया
नि:संदेह,
एक प्रलोभन दिया
पर मौका तो दिया –
मुझे सत्य के साथ होने का
सत्य को विजय दिलाने का
लेकिन मैंने
असत्य की मित्रता का मान रखा !
यूँ दुर्योधन को भी ज्ञात था
मेरा पराक्रम
मेरी निष्ठा..
उसने भी मुझे अंग देश का राजा बनाया
अपनी जीत के लिए !
मुझे भी क्या ज़रूरत थी
कवच कुण्डल देने की
जन्मगत विरासत
किसी और को सौंपने की ?
यदि मैं मौन ही रह जाता
कुंती को कुछ न कहता
तो कम से कम
मेरा दर्द तो उनके साथ जाता
यदि मैं दानवीर स्वभाव से कमज़ोर हुआ
तो कुंती तो एक नाज़ुक स्त्री थी
समाज के भय से
यदि उन्होंने मुझे प्रवाहित कर दिया
तो क्या गलत किया !!!
कुरुक्षेत्र तो मेरे मन में था
कितनी मौन लड़ाइयाँ मैं लड़ता गया
इससे बेहतर था
मैं पाँचों भाइयों को गले लगा लेता
और कुंती के आँचल से
अपनी आँखें पोछ लेता
अधिरथ और राधे के साथ कहीं दूर चला जाता
काश !
मैं सबको जीवन दान कर पाता
काश !!

***

मैं होनी !!!

मैं होनी !!!
मैं तब से हूँ
जब से संसार बनने की प्रक्रिया शुरू हुई
मैं नींव थी / हूँ होने का
हर ईंट में हूँ
रंग हूँ, बेरंग हूँ
ईमारत से खंडहर
खंडहर का पुनर्जीवन
शांत जल में आई सुनामी
सुनामी में भी बचा जीवन..
मैं रोटी बनी निवाला दिया
तो ... निवाला छीन भी लिया
जीवन दिया
तो जीने में मौत की धुन डाल दी
सावित्री को सुना
उसके पतिव्रता धर्म को उजागर किया
तो कई पतिव्रताओं को नीलाम भी किया..
एक तरफ विश्वास के बीज डाले
दूसरी तरफ
विश्वास की जड़ों को खत्म किया
सात फेरे डलवाये
अलग भी किया...
जय का प्रयोजन मेरा
हार का प्रयोजन मेरा
विध्वंस का उद्देश्य मेरा...
मैं होनी, हूँ तो हूँ
तुम मुझे टाल नहीं सकते !
पृथ्वी को जलमग्न कर
जीवन की पुनरावृति के लिए
मनु और श्रद्धा साक्ष्य थे
मेरे घटित होने का
पात्र रह जाते हैं
ताकि कहानी सुनाई जा सके
गढ़ी जा सके
और इसी अतिरिक्त गढ़ने में
मैं कभी सौम्यता दिखाती हूँ
कभी तार-तार कर देती हूँ
यदि मेरी आँखें
दीये की मानिंद जलती हैं अँधेरे में
तो चिंगारी बनकर
तहस-नहस भी करती हैं।

***

शोभा रस्तोगी
संपर्क:
ईमेल: shobharastogishobha@gmail.com
मोबाइल : 09650267277

क्यूँ ?

होनी को उकसाता कौन है ?
तुम !!!
ख़याल करते हुए तुम भूल जाते हो
कि ख़यालों के अतिरेक से
सामनेवाले को घुटन हो रही है
सामनेवाला भूल जाता है
ख़यालों से बाहर कितने वहशी तत्त्व हैं
मैं दोनों के मध्य तालमेल बिठाती हूँ
दशरथ को जिसके हाथों बचाती हूँ
उसीको
दशरथ की मृत्यु का कारण बनाती हूँ
तराजू के दो पलड़ों का
सामंजस्य देखना होता है
कोई न पूरी तरह सही है न गलत
परिणाम भी आधारित हैं
न पूरी तरह गलत न सही !
विवेचना करो
वक़्त दो खुद को
रेशे-रेशे उधेड़ो
फिर होनी का मर्म समझो।
मैं होनी
सिसकती हूँ
अट्टहास करती हूँ
षड्यंत्र करती हूँ
खुलासा करती हूँ
कुशल तैराक को भी पानी में डुबो देती हूँ
डूबते को तिनके का सहारा देती हूँ
तांडव मेरा
श्रृंगार रस मेरा
मैं ही प्रयोजन बनाती हूँ
मैं ही सारे विकल्प बंद करती हूँ।
मैं होनी
मैं ही कृष्ण को शस्त्र उठाने पर बाध्य करती हूँ
मैं होनी
आदिशक्ति को अग्नि में डालती हूँ
मैं होनी
रहस्यों की चादर ओढ़े
हर जगह उपस्थित होती हूँ
मैं होनी
किसी विधि से टाली नहीं जा सकती।
***

किटी पार्टी

इस रविवार रखी थी
किटी पार्टी
मृत कन्या भ्रूणों की
गुलाबी लिबास में थे - रईस बालिका भ्रूण
जिनके घर में मनाही थी
पैले-पैल बेटी का होना
थाल नहीं पीटा
कुआँ नहीं पूजा
तो सदियों से इकट्ठी इज़्ज़त
छींट-छींट दही सी बिखर जाएगी
कुछ भ्रूण ऐसे कि घर में नहीं है दाना
तोपर भी...लड़की ... चल गिरा इसे।
सूखी धंसी आँखें सपनों से विलग थीं
सब खड़े थे एक जगह

जाति -धर्म का दुशाला फेंक
उनकी एक थी जाति
एक था वर्ग
और एक था दु:ख
उलीचती निगाहों से छिटकता बरबस।
जन्म न ले पाने का अदम्य शोक।
इस रविवार --
धूप खिली थी बहुत
सूरज था चहका
सामूहिक केक कटने पर
नन्ही तालियाँ बजती रहीं देर तक
हैप्पी बर्थडे टू यू की धुन पर
नाचते रहे मदमस्त कच्चे पाँव
यकायक आँधियाँ आ गईं
फूट-फूट रोने लगे बादल
धरती भर गई अनउपजे आँसुओं से
भीगी मिट्टी ने देखा आँख उठा
नभ खिड़कियों से झाँक रहे थे
मृत कन्या भ्रूण।
***

मेरे हौसलों की उड़ान

मेरे हौसलों ने उड़ान भरी ही थी कि
तुमने डाल दिए जाल नभ की दूरी तक
सूरज भी बिंध गया है
लहूलुहान है
पंख मेरे छिल रहे हैं
सुनो ! तुम रहना मुस्तैद
कि मुझे जाना है दूर
बहुत दूर बहुत ऊँचे
तुम शायद वाकिफ नहीं
टूटे परों में ही होती है
अपार अदृश्य शक्ति
तुमने -- मेरे पंख बींधे हैं
हौसले नहीं।
मेरी जीत निश्चित है।
***

दर्द की लकीर

पत्थर से टकरा गई हूँ
उठा लिया उसे हाथ में
टुकड़ा पत्थर
देख रही लगातार
क्या है इसमें छुपा
सहलाया हौले से उसे
पिघलने लगा पत्थर
इंद्रधनुषी रंग बेबाक हो उठे
कंपन बढ़ने लगा पत्थर में
अनेक आकारों में प्रतिबिम्बित होते हुए
सरगम की वेदना से नहाते हुए
वो दर्द की लकीर थी कोई
जिसने बना दिया इसे पत्थर
मैंने देखा
मेरे हाथ गीले थे।
***

अनीता सक्सेना
संपर्क: बी-143, न्यू मीनाल रेसीडेंसी,
भोपाल। ईमेल: anuomw@gmail.com
मोबाइल: 9424402456, 2689899

यह कैसा पतझड़ आया है

मौसम ने भेजा फरमान
आसमान की क्या औकात
हवा चली जब धूल उड़ाती
धरा बुहारी सारी रात
वस्त्र हीन से, पेड़ खड़े
पत्ते बिखरे हर ओर पड़े
डगर कहाँ थी, क्षितिज कहाँ
बस पत्तों का साम्राज्य वहाँ
कौन कहाँ उड़ आया है
यह कैसा पतझड़ आया है ?

पत्ते, पंछी से मचल रहे
हो जुदा शाख से फिसल रहे
उड़ जाते, कभी रुक जाते
करवट पर करवट बदल रहे
तेज़ हवा ने किस का मुख
पत्तों से आज छुपाया है
यह कैसा पतझड़ आया है ?

सूखे पत्तों संग बरस रहीं
थीं याद, हमारे जीवन की
जिनसे जुड़ कर हम जीया किए,
वो कड़ी, हमारे जीवन की
कभी इन शाखों में छुपे थे हम
और नाम तने पर लिखे थे हम
ये किसने सूखे पत्तों को
चुपके से आज जलाया है
यह कैसा पतझड़ आया है ?
***

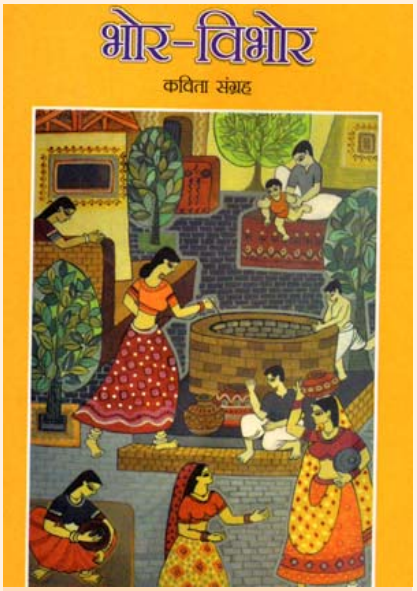

भोर-विभोर (काव्य-संग्रह)
लेखिका: अनीता सक्सेना
मूल्य: 200 रुपये
प्रकाशक:
पहले पहल प्रकाशन,भोपाल।

पड़ाव दर पड़ाव

ज़िंदगी का पहला पड़ाव
जब तुमने आँख भी नहीं खोली थी कि
तुम्हारे कानों ने सुना
''लड़का है या लड़की ?''

ज़िंदगी का दूसरा पड़ाव
जब कमज़ोर माँ के आँचल में दूध न था
और तुम्हारी आँतें भूख से कुलबुला रही थीं
कि तुम्हारे कानों ने सुना
''मुई, दिन भर रोती है''

ज़िंदगी का तीसरा पड़ाव
जब छोटा भाई लटकाए था कंधे पर बस्ता
और आँखें तुम्हारी छलक रही थीं
तब तुम्हारे कानों ने सुना
''घर का काम कौन करेगा ?
खाना कौन पकाएगा ?
कौन करेगा सफाई ?''

यूँ तो था अस्तित्व तुम्हारा
पर ज़िंदा थे तो सिर्फ दो कान!
विवाह की वेदी पर भी
कान सुन रहे थे मन्त्रों को और हाथ दे रहे थे
यंत्रवत आहुति
क्या नहीं दे सकते थे वे
सामाजिक कुरीतियों की आहुति ?

पड़ाव दर पड़ाव
उम्र गुज़रती गई
थक गए थे हाथ, थक गए थे पाँव
सूनी हो गईं थीं आँखें
मर गई थी आस, अभिलाषा
पर ज़िंदा थे तो बस दो कान!
जो तब भी सुन रहे थे जब सब समाप्त था
कोई, कह रहा था किसी से
''एक औरत थी जो गुज़र गई !!''
***

फार्म IV
समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण
(देखें नियम 8)
विभोम स्वर
1. प्रकाशन का स्थान :
सीहोर, मध्य प्रदेश
2. प्रकाशन का अंतराल : त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित
पता : पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
6. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं
स्वमी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

हस्ताक्षर
पंकज कुमार पुरोहित
प्रकाशक

कविताएँ

प्रो. संगम वर्मा

संपर्क: परास्नातक हिन्दी विभाग, सतीश चन्द्र धवन राजकीय महाविद्यालय, लुधियाना, पंजाब।
ईमेल: sangamve@gmail.com
मोबाइल: 9463603737

बचपन

बरसाती
बचपन
अब भी जवाँ है
साँस ले रहा है
गलियों में खड़े
बारिश के पानियों के बीच
कुल्लियाँ करती साइकलों के साथ
न उलझन है न उधेड़बुन
बस मन है मस्त मगन
स्कूल के भारी बस्तों के बोझ से
बेख़बर हो
कापियों के कोरे पन्ने फाड़ कर
छोटी-छोटी लहरियाँ बनाने में
उन्हें बहाने में, दौड़ लगाने में
नन्हें हाथों से चप्पू मारते हुए
ख़ूब मन और तन भीग जाता था।
सुढ़-सुढ़ बहती नाक
और खाँसते हुए मुन्ने को देखकर
तेरा डाँट लगाना
भुला नहीं पाता
एहसास हो जाता था जब खांगते थे
तब सबसे बड़ा हक़ीम तुम ही होती थी।
स्टोव पे गर्म चाय होती थी
और हम कोने में ममता की छतरी में
दुबके होते थे सुगबुगाहट लिए
हाथों को बगलों में दबाए हुए
सारा रोम-रोम खड़ा हो जाता था
तुम हाथों से चाय पिला देती थी
वहीं ऊँघते हुए नींद की ख़ुमारी में डूब जाते।
आजकल तन्हाइयों की चादर तले
वही बचपन के किस्सों के काग़ज़ों को
आँसुओं में तैरा लेते हैं
अब, आधे पैर की निकरें नहीं है
राह में जब कभी बारिश होती है
तो पेन्ट्स के पौचों को मोड़ते हुए
निक्कर बना लेते हैं और जहाँ पानी भरा हो
ख़ूब उछलते हैं और
छप्पाक-छप्पाक की आवाज़ों में
बचपन फिर से जवाँ हो जाता है
जो अब भी साँस लेता है
पर अब मेरी ममता की छतरी नहीं है
आज बरसा है ख़ूब बरसा है
पर तेरा नन्हा ख़ूब तरसा है

***

एकांत योगी

सुनो.....!
यूँ ही नहीं
सुर निकलता कोई
बिना दर्द के पिघलता कोई
दर्द का तार छिड़ता है तो
शिद्दत से गिटार बजता है
तपस्या होती है
साधना होती है
यूँ ही नहीं
कृष्ण के वियोग में
मीरा वियोगनी होती है
इकतारा बजता है
मन के तार के साथ
दिल के तार का मिलाप हो जाता है
रमता जोगी प्रेम का प्याला
पीकर झूमजाता है
रोम-रोम पुलकित होकर
सुरमई हो जाता है
बसंत आकर चला जाता है
और पतझड़.....
दूर तलक
ख़ामोश पत्तों की सरसराहट के
संगीत के साथ सन्नाटा छोड़ जाता है
दिल को झकझोर देता है
ऐसे में..... हाँ! ऐसे में
एकांत योगी
सन्नाटे की ख़ामोशी के सुरों को अपनी
उँगलियों के पोरों के साथ तारों को झंकारते
हुए
अपने एकालाप राग के साथ मिलाते हुए
मन की जलतरंगों में हिलोर ला देता है
दिल के जज़्बात
आँखों के झरनों से हो निकलते हैं
बुझे-बुझे से तन बदन
मोम के जैसे पिघलने लगते हैं....
अरमान मचलने लगते हैं करवटें लेते हैं
शिव की तरह ताण्डव करने लगते हैं
क़ायनात डगमगाने लगती हैं
तब सँभालना मुश्किल हो जाता है
तर जाना होता है या तैर जाना होता है
दो हिस्सों में नहीं बस एक हो जाना होता है
जैसे मन के प्यासे हिरण को गँगा मिली हो
तब कहीं जाकर
उदासी का ये लिहाफ़
कोसों दूर हवा में लहराता हुआ
सन्नाटे की ख़ामोशी को चीरता हुआ
भीतर ख़ुशी की लौ को दैदीप्यमान करता है
टूटे बिखरे हुओं को साध लेता है
इक ही धुन में सबको बांध लेता है
ये मेरी शिद्दत है
शिद्दत एकांत योगी की
छेड़ोगे तो बाँध लूंगा
इक ही धुन में सबको बाँध लूंगा
दिल दो हैं शिव और माया की तरह
बस धुन एक है जो जोड़े हुए है
सबको सबके साथ
आओ मिलो और छेड़ो फिर से वो राग
दिल झूम के गा उठे फिर बजाए गिटार.....

***

अमेरिका की चार युवा कवयित्रियों की कविताएँ

गीता घिलोरिया

आस्था नवल

विनीता तिवारी

दिलेर ''आशना'' दिओल

गीता घिलोरिया

देह

कितना कुछ पकड़े बैठे है,
कुछ अपने नाम का ..
कुछ अपनों के नाम का...
और कितना कुछ तोड़े बैठे है ..
कुछ इस के नाम का
और कुछ उस के नाम का ...!
हाथ है कि दो ही हैं
फिर भी चार करने में लगे है ...
पेट है कि एक ही है
फिर भी कई भरने के लगे है ...
आँखें है ...रुकना चाहती है ....
थम के, नजर भर तस्सली चाहती है....
ज़िंदा होने की...!
ज़ुबाँ ...पल दो पल.....
ख़ुद को जताना चाहती है,
कि तुम हो, मै हूँ ....और हम ज़िंदा हैं ...
जीने के लिए ...!
उम्र को पल-पल, रिसता-रिसता
देह में गलाने के लिए...
देह है तो उम्र है ...!
जिस दिन साथ छूटा...
उस रोज़
पकड़ की पकड़ में भी रीते हो जाएँगे...!
ये पकड़.....दोनों हाथ.....
आँखें.... ये ज़ुबाँ...
ये देह और ये उम्र...!
रीते...रिक्त...खाली....और शून्य .....
स्थिर ...शांत....बेहद शांत
.....अनहद शांत....!!!
***

फिर एक बार

अभी ज़ख्म हरे है,
और आप की ज़रूरतों से परे है,
कुछ देर ठहरो रहगुज़र ...
जिस्म से लेकर रुह तक...अभी तो सब बहरे हैं ...!!
रुकी हुई है आह! मेरी,
झुकी हुई है छाँह मेरी,
धड़कने चुभ रही है सीने में,
हाथ को हाथ नहीं है करीने में ..
कुछ देर ठहरो रहगुज़र ...
आस, साँस, सपने, सब ...अभी तो सब ठहरें है ...!!
समेट लूँ कुछ तो पहले,
सिमट जाऊँ कुछ तो पहले,
उकेरेंगे तुम्हें किरमिच पर फिर,
भिगोएँगे रगों से सींच सांच कर,
तब तक ठहरो रहगुज़र ...
तब तक, जब तक ये सब ठहरें है !!
***

चौथे पहर

रात भर जागी ये आँखें,
ढूँढ़ती हैं किस पहर को ...!
हाथ में जो हाथ डाले,
खोजतीं क्या उस सफ़र को...!!

इस डगर से उस डगर तक,
रात ही बस रात ही हो ...!
चाँद भी मिलने ना पाये,
छु ना पाए उस सहर को ...!!
धड़कने बे ताल चलें ये,
रोकें कोई ना ताल को...!
थाम लें उसकी वो बाहें,
आज पिघला दें क्या उसको...!!
होठों को दो होंठ छु लें,
नाम दें क्या इस तलब को...!
वक्त ये फिर आए ना आए
टाल दें कब इस कसक को...!!
रात भर जागी ये आँखें,
ढूँढ़ती हैं किस पहर को ...!
हाथ में जो हाथ डाले,
खोजतीं क्या उस सफ़र को...!!

भोर भी अब हो चली हैं
रोकती हैं इस भँवर को ...!
क्या पता क्या हाल है ये
क्या हुआ है इस नज़र को ...!!
रात भर भीगी ये आँखें
पालती है किस रड़क को ...!
हाथ में जो हाथ डाले
खोजतीं क्या उस पकड़ को...!!!
***

संपर्क: 10034 Paxton Run Road, Charlotte, NC-28277
ईमेल: fine.art.gita@gmail.com

आस्था नवल

तुलना

बादलों को देखकर
हमेशा ही अच्छा लगता है
कभी रूई से लगते हैं

कभी बूढ़े बाबा की दाड़ी जैसे
कभी गोल-मटोल बच्चे की तरह
तो कभी कल्पित जानवर से

मैं रोज़ उन्हें देख कर कोई प्रतीक
बना लेना चाहती हूँ
उनकी तुलना किसी से करने की
कोशिश में निरंतर जुटी रहती हूँ

क्यों नहीं देख पाती
मैं बादल को ही बादल में
क्यों तलाशती रहती हूँ
किसी और को किसी और चीज़ में!

कब आएगा अपनाना मुझे
हर चीज़ को उसके अपने रूप में
स्वीकारना सब को वैसा का वैसा
बिना तुलना के सहजता से!
***

नई नारी नई कहानी

तुम मेरी आँखों में डूबने की बात करो या नहीं
कोई बात नहीं
पर अगर आँखों में छिपे भाव को पढ़ पाओ
तो कोई बात बने
तुम मेरे चेहरे को चाँद में ढूँढ़ो या नहीं
कोई बात नहीं
अगर चेहरे पे आई शिकन को मिटा सको
तो कोई बात बने
तुम राहों में सितारों को बिछाओ या नहीं
कोई बात नहीं
अगर राह में मेरा हाथ थामे रखो
तो हमराह बने
मुझ पे मर मिटने की बातें तुम न ही करो
यदि जीवन मेरे नाम लिखो
तो हमराह बने
बहुत सुन लीं चाँद सितारों और सोने चाँदी की बातें
अब कोई याथार्थ की बात करो
तो कोई बात बने
मैं अब इतनी भी अधीन नहीं कि
आसरे के लिए प्यार करूँ
मेरे साथ, मुझे बिना बदले जी सको
तो हमराह बने
अधिकार नहीं, प्यार करो तो कोई बात बने
स्वामी नहीं, साथी बनो तो कोई बात बने
तन नहीं,
आत्मा को छू पाओ तो कोई बात बने
तो ही हमराह बनें, साथ रहें
तो कोई बात बने
***

संपर्क: asthanaval@gmail.com

विनीता तिवारी

कर्मों के फल

अपने-अपने
कर्मों के फल
लिए घूमते
हर दिन, हर पल

कुछ फल जिनकी
चाह नहीं थी
कर्मों की भी
थाह नही थी
फिर भी साथ खड़े थे ऐसे
बिन ब्याहे दम्पत्ति हों जैसे

एक कर्म से
जुड़ा हुआ जब
कई ओर कर्मों का नाता
कैसे कोई बूझे फिर
अगले-पिछले कर्मों की गाथा?

निराकार-आकार के पीछे
भाव जगत् का
तुम ही तो हो
भाव तुम्हारे
कर्म तुम्हारे
फिर फल कैसे हुए हमारे?

सोच-विचार के सब जन हारे
कुछ न हाथ लगे पर प्यारे!
***

संपर्क: vinu_t@hotmail.com

दिलेर ''आशना ''दिओल

धरती

धरती को देखा है कभी?
धड़कन सुनी है इसकी कभी?

नीली सितारों जड़ी छतरी के नीचे
दुल्हन सी सतरंगी जोड़े में समाई हुई।
नौरतन शृंगार में सर से पाँव तक सजाई हुई।
चुंबकीय आकर्षण से नवाज़ी,
चाँद और सूरज का टीका सजाए,
चमकता चेहरा जैसे किरणों में नहाई हुई।

अनंतकाल से स्थिर-पथ-गामिनी
सीने में दौलत का भण्डार छुपाए हुई।
गौतम की जन्मभूमि, बुद्ध के निर्वाण की धरती।
ईसा मसीह के बलिदान की धरती।
नानक की बानी से रौशन ज्ञान की धरती।
कबीर और कृष्ण के उपदेश महान की धरती।
देखे रंग समय के इसने, कितने बदलफेर
गोलाबारूद की बारिश और लाशों के ढेर।

बीते कल में जो हुआ सो हुआ
नई सोच घटा ने आज मन को है छुआ।
दस्तक एक ग़मगीन सुबह की दे रहा।
आने वाला कल दरवाज़े पर खड़ा हुआ।

बर्फीले पर्वत सागर बन कर बह जाएँगे
दरिया बनकर घर आँगन को लौट आएँगे।
आलीशान इमारतों का होगा क्या अंजाम
पेड़ बलिदान से पहले रखना इस का ध्यान।
बंद हों आसमानों में उठते धुएँ के ग़ुबार
दम घुटता है सागर का प्लास्टिक के देख अम्बार।
ज़रा सी आना कानी ख़त्म करेगी खेल
सूख जाएगी सुन्दर बग़िया, रंग सुगंध बिना हर बेल।
धरती को ग़ौर से देखो आज !
धड़कन को ग़ौर से सुनो आज!
***

संपर्क: daler.deol@gmail.com

सुधा अरोड़ा

सुधा अरोड़ा कृत 'यह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है' लघु-उपन्यास: एक विवेचन

(समीक्षक : संगमेश नानन्नवर)

उपन्यास बाह्य जीवन की सच्चाइयों को चित्रित करनेवाला एक ऐसा साहित्यिक रूप है, जो आधुनिक सभ्यता की देन है। भूतकाल की अनेक साहित्यिक परंपराओं को आत्मसाथ करने के बावजूद इसमें अद्‌भुत आकर्षण शक्ति निहित है। सामाजिक परिवर्तन में प्रमुख अस्त्र की भूमिका निभानेवाली इस विधा की शक्ति का अहसास बहुत पहले ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल को हुआ था। उन्होंने उपन्यास पर विचार करते हुए लिखा है कि ''वर्तमान जगत् में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।''

हिन्दी लघु उपन्यास विधा के उद्‌भव एवं विकास के संदर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण वर्तमान युग की परिस्थितियों एवं सामाजिक जीवन से संबंधित है। आज मनुष्य का जीवन चारों ओर अव्यवस्थित, उथल-पुथल के साथ अनेक जटीलताओं से भरा है, जिसे संपूर्णता में अभिव्यक्ति देना उपन्यासकार के लिए मुशकिल हो गया है। इसी कारण समाज की कोई एक घटना, ज़िंदगी का कोई एक प्रश्न, समस्या या अनुभूति लेखकीय अभिव्यक्ति का विषय बनी, जिससे उपन्यास अपने आप ही लघु हो गया। माधुरी खोसला जी के शब्दों में ''आज युगीन परिस्थितियों को प्रलयकारी परिवर्तनों ने जीवन मूल्यों और जीवन दृष्टि में जो उथल-पुथल मचाई उसके फलस्वरूप उपन्यास फिर परिवर्तित हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी उपन्यास ने अपने जन्मकाल से आज तक अपनी मंज़िलें पार की हैं और वह निरंतर विकसित होता रहा है।''

सुधा अरोड़ा की रचनाएँ पाठक के मनोजगत् में चुपके से प्रवेश कर उसे एक प्रश्नाकुल बेचैनी सौंपती हैं। सुधा अरोड़ा जी ने घर और समाज की चौखट पर दिन-रात संघर्षशील स्त्री के विविध पक्षों पर भी खुद को एकाग्र किया है और अपनी अभिव्यक्ति के लिए नए मुहावरे और नए शिल्प की संरचना करती हैं। अपने समय के निर्मम और बीहड़ प्रश्नों को

संपर्क : प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, मंगलूरु विश्वविद्यालय कॉलेज, हंपनकट्टा, मंगलूरु-575001, कर्नाटक, भारत
मोबाइल : 9481051675
ईमेल : snanannavar@gmail.com

चित्रित करने, उनमें निहित मंशाओं को उघाड़ने के लिए वे सतत एक मुठभेड़ में संलग्न रहती हैं।

'यहीं कहीं था घर' वरिष्ठ कथाकार सुधा अरोड़ा जी द्वारा लिखित दो लघु उपन्यासों का संग्रह है। 'यह रास्ता उसी अस्पताल जाता है' उस संग्रह का दूसरा लघु उपन्यास है। 'चाइल्ड अब्यूज' जैसी विश्वव्यापी समस्या को लेकर प्रस्तुत लघु उपन्यास में चिंतन किया गया है। लेखिका ने एक बच्चे की त्रासदी की मार्मिक कथा का अंकन किया है। अपने ही माँ-बाप के द्वारा जाने अनजाने में बच्चों पर की जानेवाली निर्मम हिंसा का वर्णन लेखिका ने बेबाक बेलौस बयान दी है। कई ऐसे परिवारों के ज़ख़्मों को हरा कर देगा जो इस अनकही, अनचाही त्रासदी को बहुत नज़दीक से देख चुके हैं।

प्रस्तुत उपन्यास सन् 1989 से सन् 1995 तक की सात साल की अवधी में घटित घटनाओं से संबंधित है। उपन्यास के प्रारंभ में हम देखते हैं कि मोनू की माँ चित्रा अपने बच्चे के साथ खेलती हुई नज़र आती है। मोनू माँ की मुस्कुराहट देखकर हमेशा उसी प्रकार हँसने को कहता है। बच्चे की इस आशा को पूरी करने की कसम लेती है; क्योंकि चित्रा के जीवन में मोनू के सिवाय और कोई नहीं है। उपन्यास फ्लैशबैक शैली में लिखी गई है। चित्रा अपनी पुरानी यादों को याद करती है। चित्रा और दिवाकर कॉलेज के दिनों से ही मित्र थे। एक ही कॉलेज में पढ़ते थे। दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हुए और आकर्षण प्रेम में बदल गया। जब विवाह की बात आई तो चित्रा के घरवालों ने मना किया; क्योंकि दिवाकर पंजाबी था। माता-पिता, बहनों के भावनाओं के विरुद्ध चित्रा ने दिवाकर से शादी कर ली थी। इस कारण से चित्रा को अपने माता-पिता का संबंध हमेशा-हमेशा के लिए खोना पड़ा। लेकिन चित्रा को इस बात का बुरा नहीं लगा; क्योंकि वह सोचती थी कि दिवाकर उसके साथ है और वह उसे बहुत अच्छी तरह से सँभालेगा और प्यार करेगा। विवाह के बाद कुछ दिनों तक वे बहुत ही खुश रहे। लेकिन ये खुशियाँ ज़्यादा दिनों तक नहीं रहे। चित्रा माँ बन गई। घर में खुशियाँ आई।

दिवाकर दिन-ब-दिन बिगड़ता जा रहा था। चित्रा का तिरस्कार करने लगा। किसी अन्य स्त्री के साथ उसका संबंध जुड़ गया था। यह बात चित्रा को पता चली तो उसे बहुत बुरा लगा। जैसे ही यह बात सबको पता चली, झाई जी के बरताव में अचानक बदलाव होने लगे। झाई जी पहले चित्रा का तिरस्कार करती थी, चित्रा के हर काम में दोष ढूँढ़ती थी। लेकिन आज कल उसके साथ बहुत प्यार से व्यवहार करती है। दिवाकर को अपने घर के प्रति, घरवालों के प्रति यहाँ तक कि बच्चे के प्रति भी कोई प्यार या ज़िम्मेदारी नहीं थी। वह अपने ही दुनिया में खोया रहता था। सुबह जल्दी उठकर जाता था और रात को बच्चे के सोने के बाद आता था। कई दिनों तक दिवाकर और मोनू एक दूसरे से नहीं मिले थे। चित्रा कुछ न कुछ कारण बताकर बाप-बेटे के रिश्ते को बनाए रखने प्रयास करती थी। जिस दिन मोनू का जन्म दिन था उस दिन भी दिवाकर देर से आया था। मोनू दिवाकर का इंतज़ार करके सो जाता है। देर से आने के बाद चित्रा पूछती है कि मोनू के लिए तोहफ़ा लाए हो या नहीं। दिवाकर गुस्से में आकर चित्रा को डाँटता है। तब चित्रा मोनू के लिए लाए हुए तोहफ़े को दिवाकर को देकर सुबह उठते ही बच्चे को देने के लिए कहती है। लेकिन दिवाकर को इन सबसे कोई लेना-देना नहीं था। वह सुबह उठते ही काम पर चला गया। चित्रा मोनू को वह तोहफ़ा देकर पिता जी ने तुम्हारे लिए लाए थे कहकर स्थिति को सँभालती है।

मोनू को अक्सर तेज़ बुखार आता है और उसके हाथ पैर एँठने लगते हैं। अचानक आधी रात को उसे साँस लेने में तकलीफ़ होने लगती है। पूरा शरीर पसीने से लथपथ होता है। मोनू किसी बिमारी का शिकार था। इसलिए वह मोनू के साथ हमेशा प्यार से बर्ताव करती थी। लेकिन दिवाकर जानते हुए भी उसके साथ पिता के जैसा व्यवहार नहीं करता था। लेकिन दिवाकर चित्रा को डाँटता है कि उसका प्यार, दुलार ही बच्चे को कमज़ोर बना दिया है। दिवाकर और चित्रा के बीच उस औरत को लेकर हमेशा जगड़े होते रहते हैं। दोनों अपने कमरे में ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हैं। झाई जी अपनी पूजा-पाठ में व्यस्त हो जाती है। लेकिन मोनू परेशान रहता था। एक दिन झगड़ते माँ-बाप को देखकर वह ग़ुस्से में कहता है- 'बस, बहुत हो गया। अब आप और इस तरह लड़ोगे तो मैं यह घर छोड़कर चला जाऊँगा। मैं सच कह रहा हूँ। जाऊँ मैं? चला जाऊँ?' उसकी बात सुनकर चित्रा को बहुत बुरा लगता है और वह उसे सांत्वना देने उसके पास जाती है तो मोनू झट से दरवाज़ा बंद कर लेता है और अकेले रोने लगता है। एक दिन मोनू के स्कूल से चित्रा को फ़ोन आता है और बताया जाता है कि मोनू की स्थिति बिगड़ गई है। चित्रा फौरन उसे अस्पताल ले जाती है। तब डॉक्टर कहते हैं कि मोनू को अपिलेप्टिक फिट्स की बिमारी है। डॉक्टर सलाह देते हैं कि घर का वातावरण अगर उसे अच्छा नहीं लगता है तो उसे हॉस्टेल में रखिए। अपने हमउम्र के बच्चों के साथ रहने से उसे अपनी बीमारी की तरफ ध्यान नहीं जाएगा और वह सुधर सकता है। लेकिन चित्रा उसके बिना रह नहीं सकती थी। अपने बच्चे की ख़ातिर वह उसे हॉस्टेल भेजने के लिए तैयार होती है। चित्रा के इस निर्णय से घर में सबको आश्चर्य होता है। मोनू भी जाने के लिए तैयार नहीं था। माँ के समझाने के बावजूद भी वह नहीं समझता है। जिस दिन उसे हॉस्टेल ले जाने की तैयारियाँ चल रही थी उस दिन वह बहुत उदास था। रास्ते में उसे फिट्स आता है और उसे फिर से अस्पताल में दाखिला किया जाता है।

प्रस्तुत लघु उपन्यास में लेखिका ने आधुनिक मानव जीवन की अनेक पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है। जैसे-

बदलते मानवीय संबंध-

आधुनिकता के प्रवाह में मनुष्य मूलभूत अवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मानवीय संबंध, रिश्ते-नाते आदि को महत्त्वहीन मान रहा है। अर्थ की प्राप्ति, स्वांतस्य सुखाय मात्र जीवन का ध्येय बना है। उपन्यास में लेखिका ने किस प्रकार मानवीय संबंध अपना अर्थ एवं महत्त्व खो रहे हैं इसका सुंदर और यथार्थ

चित्रण अंकित किया है। चित्रा और दिवाकर भले ही प्रेम विवाह किया हो, मगर विवाह के बाद वे दोनों अपने संबंध को और मज़बूत बनाने के बजाय उसे कमज़ोर बना देते हैं। विशेष रूप से दिवाकर को पति-पत्नी, पिता-पुत्र आदि संबंधों में कोई रुचि या महत्त्व दिखाई नहीं देता। उसे अपनी पत्नी और बच्चे के प्रति कोई प्रेम, करुणा भाव नहीं रखता। यहाँ तक कि मोनू के जन्म दिन पर उसके लिए न कोई तोहफ़ा लाता है और न ही उससे मिलता है। चित्रा के पूछने पर उससे झगड़ा करता है।

पति-पत्नी का संबंध बहुत पवित्र होता है। माना जाता है कि विवाह स्वर्ग में निश्चय होता है। पति-पत्नी को सुख-दु:ख में भाग लेना चाहिए और सुखमय जीवन यापन करना है। लेकिन बदलते समय में विवाह जैसे पवित्र संबंध अर्थहीन हो रहा है। विदेशी प्रभाव, अहंभाव, संयम की कमी या फिर दुर्बल मन:स्थितियों को कारण आज वैवाहिक संबंध टूट रहे हैं। दिवाकर और चित्रा कॉलेज के दिनों में परस्पर आकर्षित होकर प्रेम करने लगे और घरवालों के खिलाफ विवाह कर लिया। लेकिन विवाह के बाद उन्हें जीवन की यथार्थता, सच्चाई का परिचय हुआ। अपने प्रेम को बचाने में असमर्थ होते हैं। आधुनिक संदर्भ में प्रेम, विवाह और विच्छेदन इनके होने में देरी नहीं लगती। जितनी आसानी से संबंध जुड़ते हैं उससे अधिक सरलता से टूटते भी हैं।

मनोरोग-

इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र मनोरोग से त्रस्त है। मोनू, चार साल का बच्चा अपने माता-पिता के कारण हमेशा दु:खी, असुरक्षा भाव महसूस करता है। अपने माता-पिता के प्यार के लिए तरसता है। चित्रा के प्यार के अलावा उसे अपने पिता के प्यार के प्रति विशेष लगाव है। पिता के प्यार से वह वंचित है। कई दिनों तक दिवाकर और मोनू एक दूसरे को देखते ही नहीं है। मोनू हमेशा ऐसा महसूस करता है कि उनके पिता उसे प्यार क्यों नहीं करते? माता-पिता के बीच क्यों झगड़े होते हैं? इन विषयों के बारे सोच कर बीमार रहने लगता है। अचानक फीड्स लगने के कारण बहुत परेशान होता है। माँ-पिता के झगड़ों को देख-देखकर घर छोड़कर जाने की बात करता है। जब हॉस्टेल में रहने की बारी आती है तो उसका सेहत और बिगड़ती है। मानसिक रोगी बन जाता है।

दूसरी ओर चित्रा भी अपने परिवार, बच्चे की मानसिकता, पति की लापरवाही आदि सभी मुसीबतों के बीच फ़ंसकर मानसिक यातना का अनुभव करती है। हमेशा मोनू और दिवाकर के संबंध को बचाए रखने का प्रयास करती है। मोनू को कभी ऐसा महसूस होने नहीं देती कि उनके पिता उसे प्यार नहीं करते। दिवाकर के अन्य स्त्री के साथ रहे संबंध के बारे में भी बहुत चिंतित रहती है। झाई जी से इसके संबंध में बातचीत करती है। उस स्त्री को लेकर दिवाकर के साथ झगड़े होते हैं तो परेशान होती है; क्योंकि उनके झगड़े का प्रभाव मोनू पर पड़ता है। कई बार वह सोचती है कि दिवाकर जब गुस्से में रहते हैं तो कुछ न बोले। मगर स्थितियाँ विपरीत होती हैं तो नियंत्रण नहीं कर पाती। चित्रा को हमेशा यह एहसास होता है कि उसके और दिवाकर के कारण ही मोनू की स्थिति इस प्रकार हो रही है। इसलिए वह अपने आपको बहुत कोसती है। मोनू जब हॉस्टेल भेजने की बात आती है तो उसे ऐसा लगता है कि वह कुछ खो रही है, जो बहुत अनमोल है। अनचाहे मन से मोनू को हॉस्टेल भेजने का निर्णय लेती है।

दिवाकर भी मानसिक रूप से असंतुष्टता का अनुभव करता है। अपनी सहेली से विवाह करने के बावजूद भी विवाह के कुछ सालों बाद उसे लगने लगता है कि उसने ग़लत कदम उठाया था। चित्रा के साथ वह पहले की तरह प्रेम से रह नहीं पाता। इसीलिए अन्य स्त्री के साथ संबंध जोड़ता है। जब उस स्त्री के साथ रखे संबंध को लेकर चित्रा के साथ वाद-विवाद होता है तो मानसिक संतुलन खो बैठता है। अपनी इसी मानसिकता के कारण दिवाकर के मन में चित्रा, मोनू और माँ के प्रति कोई विशेष लगावा या प्रेम नहीं है। चित्रा के रहन-सहन, पोशाक, व्यवहार के प्रति तिरस्कार प्रकट करता है। मोनू के छिपछिपाहट, नाज़ुकता उसे पसंद नहीं है। मोनू के इस स्थिति के लिए चित्रा को ही दोषी ठहराता है।

नारी की विवशता-

भारतीय समाज में नारी हमेशा शोषित रही है। प्रत्येक साहित्यकार ने नारी के इस दशा का चित्रण अवश्य किया होगा। नारी शोषण का इतिहास स्त्री के जन्म से ही आरंभ होता है। आधुनिक, वैज्ञानिक युग में नारी अनेकों क्षेत्रों में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रही है। फिर भी वह शोषण का शिकार हो रही है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका चित्रा भी इसका सुंदर उदाहरण है। चित्रा अपने प्रेमी, पति के द्वारा शोषित है। दिवाकर के ख़ातिर चित्रा ने माता-पिता आदि संबंधों को त्याग कर आई थी। लेकिन विवाह के कुछ साल बाद जिस प्रेम के बलबूते पर वह जीना चाहती थी वह प्रेम उसे नहीं मिला। प्रेम ही जीवन में बाधा बन गया। दिवाकर चित्रा से नफ़रत करने लगता है। दूसरी स्त्री के साथ संबंध स्थापित करके चित्रा के साथ विश्वासघात करता है। पति के अन्याय को भी चित्रा स्वीकार करती है। पति तिरस्करपूर्ण व्यवहार, यांत्रिकता, दिखावा, ढोंग आदि वह तंग आ चुकी है। इन दोनों के आपसी मनमुटावा का प्रभाव मोनू पर पड़ता है। चित्रा सहनशील स्त्री है। अपने बच्चे की ख़ातिर खुद पर हो रहे अन्यायों को सहती है। लेकिन मोनू के विषय में हो रही नाइन्साफ़ी को बरदाश्त नहीं कर पाती और उसकी सहनशीलता की सीमा टूट जाती है तो वह भड़क उठती है- ''क्या उस बच्चे को ज़लील करना ज़रूरी है? उस बात के लिए जिसका ज़िम्मेदार वह नहीं है? तुम्हें पता नहीं, कितना बीमार रहने लगा है वह? कैसे बाप हो तुम। कभी उसकी बीमारी में दस मिनट भी उसके सिरहाने नहीं बैठे और मुझे दोष दे रहे हो। क्या तुमने कभी बाप होने की ज़िम्मेदारी को निभाया? एक साल में तीन बार स्कूलवालों ने तुम्हें मोनू के बारे में बात करने के लिए बुलाया। कभी गए आप? आपको मुझसे शिकायत थीं तो मुझे बुरा-भला जो चाहे कहते, पर हमारे किए की सज़ा हमेशा उस बच्चे को क्यों?'' स्त्री के संबंध में भी

दिवाकर चित्रा के साथ बुरी तरह से व्यवहार करता है। जितना वह अपने परिवार को जोड़कर रखना चाहती थी उतना ही वह बिगड़ता जाता था। चित्रा जब नई-नई शादी करके आई थी तो झाई जी चित्रा को पसंद नहीं करते थे। उसके हर काम में कमियों को ढूँढ़कर उसका अपमान करते थे।

स्वातंस्य सुखाय-

आज मनुष्य इतना स्वार्थी हो रहा है कि उसे अपना सुख, सुविधा के अलावा किसी से कोई मतलब नहीं है। अपने सुख की ख़ातिर किसी भी हद तक गिर सकता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र दिवाकर आज के स्वार्थी मनुष्य का प्रतीक है। दिवाकर हमेशा अपने सुख के बारे में ही सोचता है। उसे माँ, पत्नी एवं बच्चे के प्रति प्रेम नहीं है। चित्रा और मोनू के प्रति हमेशा तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। हर बात के लिए चित्रा को ही दोषी टहराता है। अन्य स्त्री के साथ अनैतिक संबंध स्थापित करता है और पत्नी, बच्चे से भी ज़्यादा उसे महत्त्व देता। दिवाकर को घर के किसी भी स्थिति, संबंधों को से कोई लेना-देना नहीं है। वह सिर्फ अपनी खुशियों को ढूँढ़ते भटकता रहता है।

निष्कर्ष के रूप में कहे तो सुधा अरोड़ा जी ने 'यह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है' नामक लघु उपन्यास के माध्यम से बदलते स्थितियों में मानव की मानसिकता, वैचारिकता, स्वार्थपरता के कारण किस प्रकार परिवार, संबंधों एवं मानवीय मूल्यों में दरारे उत्पन्न हो रही है, माता-पिता के असंतुलित मनोभावों, उद्वेगों के कारण बच्चे अपने बाल्य सहज सुखों से वंचित होकर मानसिक, शारीरिक एवं बौद्धिक रूप से कमज़ोर होकर मनोरोगी हो कर रहें इसका यथार्थ चित्रण किया है। आधुनिकता, वैज्ञानिकता, मानव के आविष्कार, मानव जाति के लिए जितने उपयोगी हैं उतने ही हानिकारक भी हैं। आधुनिकता के इस चक्रव्यूह में फँस कर मनुष्य मनुष्यत्व को खोकर यांत्रिक जीवन व्यतित कर रहा है। इस नई सदी की विद्रूपताओं, कुंटाओं का चित्रण करने में सुधा अरोड़ा जी सफल हुई हैं ऐसा कहे तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

****

लघुकथा

फोटो

डॉ. पूरन सिंह

पति की मृत्यु के पश्चात, देवकी लगभग विक्षिप्त सी हो गई थी। घर में धन दौलत की कमी नहीं थी। पति की अच्छी नौकरी थी। उन्होंने एक पैसा भी व्यर्थ नहीं गंवाया था। सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा दी थी। जहाँ बेटियाँ को अच्छे घरों में ब्याहा था वहीं दोनों बेटों के लिए भी खूब पढ़ी-लिखी और ऊँचे घरानों की बहुएँ लाए थे देवकी के पति। फिर भी घर तो घर ठहरा। बहुओं के आने पर देवकी अपने ही घर में परायी हो गई थी। बहुओं के दुर्व्यवहार और बेटों का दुर्व्यवहार के प्रति अनदेखी करने पर व्यथित हो जाती थी देवकी और किवाड़ लगा लेती थी। ऐसा बहुत बार होता था।

छोटी बहू तुलनात्मक रूप से बड़ी बहू से ज़्यादा चंट थी। एक दिन देवकी बहुत दुखी थी और अपने कमरे में किवाड़ लगाकर कुछ कर रही थी तो छोटी बहू ने किवाड़ों की झिरी से देख लिया था। सासुमाँ अर्थात् देवकी बक्सा खोले बैठी थीं। छोटी बहू की तीसरी आँख खुल गई थी।

'ज़रूर बक्से में धन दौलत है।' बस फिर क्या था छोटी बहू देवकी का बक्सा खोलने की जुगाड़ में रहने लगी थी लेकिन कभी भी सफल नहीं हुई।

तभी, एक दिन, देवकी हमेशा-हमेशा के लिए दुनिया छोड़कर चली गईं। घर में रोना-पीटना मचा हुआ था; रिश्तेदार, पड़ौसी और मित्र-साथी, देवकी के अच्छे व्यवहार पर आँसू बहा रहे थे कि... कि... छोटी बहू ने सभी की आँखों में मिट्टी झोंककर मृत देवकी की साड़ी के कोने की गाँठ में बँधी चाबी निकाल ली थी लेकिन न जाने कैसे बड़ी वाली ने उसे ऐसा करते देख लिया था।

छोटी बहू धीरे से घर में आई और सासु अर्थात् देवकी के बक्से का ताला खोलकर बैठ गई थी। पीछे से बड़ी वाली भी अपने पति को लेकर पहुँच गई।

छोटी बहू बक्से में से देवकी की साड़ियाँ निकाल-निकाल कर एक तरफ फेंकती जा रही थी और बुदबुदाती जा रही थी 'बुढ़िया ने गहने सबसे नीचे रखे होंगे... हाँ नहीं तो।'

बक्से में सबसे नीचे एक छोटा सा पर्स मिला था। छोटी बहू ने पर्स खोला। उसे पता ही नहीं चला कि बड़ी वाली और उसका पति और न जाने कहाँ से छोटी बहू का पति भी आकर उसके पास ही खड़े हो गए थे और छोटी बहू को पर्स खोलते देख रहे थे। पर्स में एक भी पैसा नहीं था फिर एक पोस्ट कार्ड के आकार का फ़ोटो मिला था। फ़ोटो पर जगह-जगह निशान पड़े थे मानों किसी ने उस पर पानी की बूँदें डाली हों। फ़ोटो चारों ने पहचान लिया था तभी बड़ा वाला बिलख पड़ा था 'बाऊजी'।

अब चारों फ़ोटो पर पड़ी पानी की बूँदों का अर्थ समझने में जुटे पड़े थे। बाहर देवकी के मृत शरीर पर लोग विलाप कर रहे थे।

****

रचनाकार - डॉ. पूरन सिंह की कहानियाँ, लघुकथाएँ, यात्रा संस्मरण और कविताएँ देश भर के प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। पूर्वोत्तर राज्य की लोक कथाओं, लघुकथाओं तथा उपन्यास अंशों के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हैं। संप्रति, संघ लोक सेवा आयोग, नई दिल्ली में सेवारत हैं।

संपर्क : 240, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-110008

फोन : 25888754 / 9868846388

ई-मेल : drpuransingh64@gmail.com

इस पृथ्वी की विराटता में दूर-दूर तक फैली थी अपनों की छाया

समीक्षक : कालूलाल कुलमी

नरेन्द्र पुण्डरीक

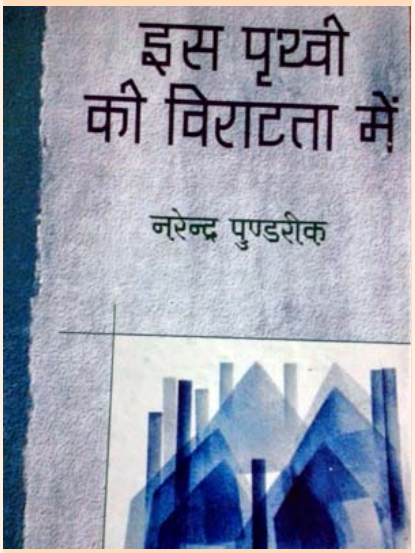

इस पृथ्वी की विराटता में
कविता संग्रह
नरेन्द्र पुण्डरीक
नेहा प्रकाशन,दिल्ली
वर्ष 2014

हिंदी विभाग, गुरू घासीदास केन्द्रीय
विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छ.ग. 495009
मोबाइल : 8602575304

धरती की सुंदरता सृष्टि का विशिष्ट सौंदर्य है। इसने इंसान को सौंदर्य का उपासक बनाया और मानव समाज के लिए सृजन को संभव किया। कवि प्रकृति, सौंदर्य और मूल्यों का साधक न हो तो कवि कैसे हो पाएगा? आज की कविता अपने फैलाव में नहीं अपनी तीखेपन के कारण भी मारक है। नरेन्द्र पुण्डरीक कविताएँ अपने आसपास के जीवन को जिस आलोक में देखती हैं वह मनुष्य के साँझा संघर्ष और प्रेम से ही संभव है। 'इस पृथ्वी की विराटता में' उनका हाल में आया कविता संग्रह है। त्रिलोचन धरती के कवि है पृथ्वी के नहीं। उनके यहाँ धरती किसान की है। उस मनुष्य की है जो अभाव में दबा नहीं बल्कि जो सदैव लड़ता रहता है। पृथ्वी से जो बोध होता है वह ग्रह का होता है। अब धरती नहीं पूरा ग्रह ही खतरे से भर गया है, इस पर रहनेवाले प्राणी इस ग्रह के प्रति कितने ईमानदार रहे हैं यह सवाल सबसे अहम है। विराटता उदात्त के लिए भी आवश्यक है। विराटता मनुष्य के सर्जन के लिए भी चुनौती होती है। इसी को साधते हुए इंसान की ज़िंदगी जहाँ से संभव होती है और जिस तरह से सृजन करती है उसमें एक उम्मीद का सपना सदैव पलता है। जिसके सहारे वह जीवन को निरंतर आगे बढ़ाता चलता है। कोई किसी के सहारे सपने देखता है तो केाई किसी के सहारे। दुख मनुष्य को तोड़ता भी है लेकिन मनुष्य उसको साधता चलता है। वह जीवन की विकट से विकट परिस्थिति में भी आगे बढ़ने में विश्वास रखता है। वे लोग जो महानता से परे हैं और जिनका विश्वास जीवन के सम्पूर्ण सृजन में हैं वे अपने श्रम और कर्म के सहारे जीवन के अर्थ सृजित करते हैं।

इन्होंने ही मुझे / हवा-धूप-पानी के / स्वाद के साथ/ वीरान रास्तों के भय से / संगत करना सिखाया।

ये वे आसरे हैं जिनको आसरा कहना ज़रूरी भी नहीं, लेकिन ज़िंदगी में उम्मीद की तरह ये होते हैं। अपने और पराये की तरह यह दुनिया और इसका सहारा लेता हुआ इंसान कठिनाईयों को पार करता है। ज़िंदगी की लय के साथ उससे दुखों से संगत करना भी ज़रूरी होता है। वर्तमान समाज में जिस तरह की निराशा और अकेलापन है,विस्थापन और उखड़न का विराट समाज पसरा पड़ा हो वहाँ मनुष्य के होने और जीने का अर्थ भी अपने नए अर्थ तलाश रहे है। जहाँ एक और समाज में कई तरह के परिवर्तन हो रहे हों वही दूसरी और उखड़ने का दुख भी मनुष्य को काट रहा हो, वहाँ कैसे वह अपने को और अपने मूल्यों को बचा पाएगा? इस धरती पर प्यार करनेवाले लोग कम हो रहे हैं। यह कवि की पीड़ा है। जहाँ प्रेम गीत रचे जा रहे हो, जहाँ प्रेम के आख्यान सामने आ रहे हो वहाँ प्रेम करनेवाले कम हो रहे हो तो, चिंता की बात तो है।

नया घटित होने के साथ ही पुराना खत्म होता है। कवि छोटी-छोटी बातों को पढ़ता है। वह कहीं लड़की के चौखट लांघने को देखता है तो कहीं वह कलगी को देखता है, कहीं उसे प्रतिवाद करती औरत अच्छी लगती हैं तो कहीं उसे पेड़ सुंदर लगते हैं।

कुछ औरतें इस धरती का / सर्वश्रेष्ठ अपनी छाती में सहेजे/ पहाड़ चढ़ रही थी/ कुछ

पहाड़ से उतर रही थीं /दूध की तरह झरती हुई,/ कुछ औरतें अंधेरे में /उजास की तरह/ सोती हुई जाग रही थीं /और कुछ जागती हुई सो रही थीं

***

समझाओ कुछ अपनी बिटिया को / कुछ अपने चौखटे की तरफ ध्यान दे /इसकी लापरवाही से अच्छे-खासे / दो रिश्ते टूट गए,/ इसे कुछ धीमे बोलना सिखाओ /लठ की तरह बोलती है / ग्रेजुएट है!/ दूसरी लड़कियों को नहीं देखती/ वे किस तरह आहिस्ता से बोलती हैं

एक स्त्री और एक बेटी दोनों के महत्त्व को कवि बखूबी दर्ज करता है। औरत के सीने में पृथ्वी का सौंदर्य छुपा है। वह झरने की तरह बहती है। वही एक लड़की जिसके पास अपना आभामण्डल है लेकिन उसे वह नहीं करना है। उसे तो वह करना है जो उसके लिए नहीं उसको दे दिये गए रिश्तें के लिए ज़रूरी है। जिसे वह ज़रूरी नहीं मानती। वह अपनी खनकती हुई हँसी के साथ हँसना चाहती है। वह अपनी ज़िंदगी में मायने भरना चाहती है। लेकिन लड़की के लिए हर कदम पर पहरे हैं। वह चाहे या न चाहे उसको वैसे ही जीने के लिए कहा जाता है जैसे निरधारित खाँचा चाहता है। परम्परावादी समाज परिवर्तन को बहुत सहजता से ग्रहण कहाँ करता है? लेकिन प्रतिवाद से वह संभव हुआ जा रहा है। वहीं रिश्तों की गर्माहट कैसे समाज को समृद्ध करती हैं।

बातें थी अपनी नहीं दूसरों के / दुखों की
सुखों की / सब अपने थे,/ दूर-दूर तक फैली थी अपनों की छाया / रिश्तें थे पूरी बस्ती के / छोटों के बड़ों से/ बड़ों के छोटों से / कहीं नहीं अटकी थी धारा/ आपस में नेह की / ज्यों धारा भादों के मेह की

आज सबसे ज्यादा मनुष्य के रिश्ते सूख रहे हैं। मनुष्य संवेदना से शून्य हो गया है। अपनो का अपनो से प्रेम खत्म हो गया है। सब जैसे अपने लिए ही जीने लगे हैं। महानगरों में इंसान के पास इंसान के लिए समय नहीं है। अपने माता-पिता के लिए समय नहीं है। ऐसे में यदि यह नेह बचा रहता है तो मनुष्य का भीतरी संसार बचा रहता है। उसका अपने समाज के साथ रिश्ता बचा रहता है। वह भादों की धारा की तरह अपने लोगों के नेह से जीवन को समृद्ध करता रहता है।

कभी अपने लहू की बात करता है तो कभी अपने साहस की। ज़िंदगी किसके हिस्से में आती है। जो उसको जीता है उसके हिस्से में या जो उससे पलायन करता उसके हिस्से में

अपनी असफलताओं के लिए /अपने दुश्मन को मत कोसो, / लुहार उन्हीं की तलवारे बनाता है / जिनके पास /लोहे के साथ-साथ / लोहा गलाने का ईंधन होता है॥

मनुष्य के लिए नेह के साथ उसके ज़िंदा होने का अहसास भी बहुत ज़रूरी है। वह अहसास उसकी बहादुरी का प्रमाण भी है। वह अपनी धरती से जुड़ने का अहसास भी है। पुण्डरीक के लिए कविता और मनुष्य का महत्त्व जीवन के साथ खड़े होने में है। जहाँ कविता मनुष्य के अंदर की आग है वहीं जीवन उसकी सर्जना है। जहाँ टूटन और विस्थापन हो, जहाँ मनुष्य के भीतर का संसार टूटकर बिखर गया हो, वहाँ यदि मनुष्य अपने अंदर की ताकत को सींचकर फिर से जीवन और सृजन को संभव कर रहा हो, तभी उसका जीवन सार्थक हो सकता है। जीवन के संकट, समाज की जड़ताएँ और उनके बीच यदि कोई अपनी सोच के साथ बढ़ता है तो उसका इस तरह से आगे बढ़ना जीवन के साथ नये सरोकार की और बढ़ना है। कभी पिता का अहसास तो कभी मां का और इस तरह इनके सहारे जीवन का गहरा अहसास कवि को जीवन में गहरे उतारता चलता है।

समाज हर युग में परिवर्तन के दौर में गुजरता है। संक्रमण सृष्टि का अनिवार्य नियम है। समाज अपने विकास के प्रत्येक युग में नया ग्रहण करते हुए पुराने का त्याग करता है। पुण्डरीक की कविता परिवर्तन के बेहतर कल को निर्मित करते हुए मनुष्य के भीतरी संसार के बचे रहने की कवायद है। मनुष्य अपना कल आज को बदलते हुए ही संभव कर सकता है। उसके लिए उसकी मेहनत मनुष्य के साथ ही सम्मान की अधिकारी है। अपने समय का सर्वोत्तम कवि कहना चाहता है और बचाना चाहता है। वह स्त्री के श्रम और साहस को सम्मान के साथ दर्ज भी करता है और उसके महत्व को बखूबी समझता भी है।

दुख नहीं टटोल सका / जिसके पाँवों के तलुवे /लोग चाहे मुझे कहें, /पराजित या हारा हुआ / पर मुझसे नहीं होगा/ यह सब / कि पोथा सिर्फ पढ़ने के लिए पढ़ूँ / शब्द सिर्फ लिखने के लिए लिखूँ /जीवन सिर्फ दिखाने के लिए जीऊँ

जीवन को वास्तविकता के साथ जीते हुए मनुष्य अपने होने को महसूस कर सकता है। वह यह बता सकता है कि जीवन उसका है और हार और जीत भी उसकी है। उसे किसी को कुछ भी दिखाने के लिए नहीं करना है। उस उस राह पर चलना है जिससे वह ज़िंदगी की बेहतरी का सच जान सके। उसको समझ सके और उसके लिए, और उसके समाज के लिए जीवन मूल्य और जीवन दोनों की कीमत वहीं से तय होनी है। बाज़ार और विकास की इस चमक में मनुष्य अपनी राह से भटक जाए तो कोई आश्चर्य भी नहीं है। उसके सामने सपने हैं। लेकिन उसके लिए ज़िम्मेदारी भी कम नहीं है। जीवन को रेहन पर रखकर कुछ भी प्राप्त करना मनुष्यता का ध्येय नहीं हो सकता। समाज अपनी विसंगतियों के भीतर ही बढ़ता भी है और उनको दूर भी करता है। कवि की चिंता मनुष्य के बचने के साथ उस सामाजिक सत्य को बचाना है जिसके सहारे मनुष्य समाज को आगे की राह तय करनी है। जिसके सहारे उसे बेहतर और सुंदर समाज को रचना है। इस पृथ्वी और मनुष्य को बचाते हुए सौंदर्य को निरंतर रचना है तो चौखटे तो पार करने होगें।

एक कवि अपने समय के उस बोध को सर्जक के मन से रचता है जिसमें आगे का बोध होता है। वह निरंतरता का वाहक होता है। उसके पास एक क्रिटिकल बोध होता है। जिससे वह समय की धार को धारदार बनाता है। उसमें मनुष्य के भविष्य को चुनौतियों के साथ आगे बढ़ने का साहस भरता है।

****

नरेन्द्र नागदेव

पीले रूमालों की रात
नियति के हाथों ठगी का रोचक आख्यान

समीक्षक : मुकेश निर्विकार

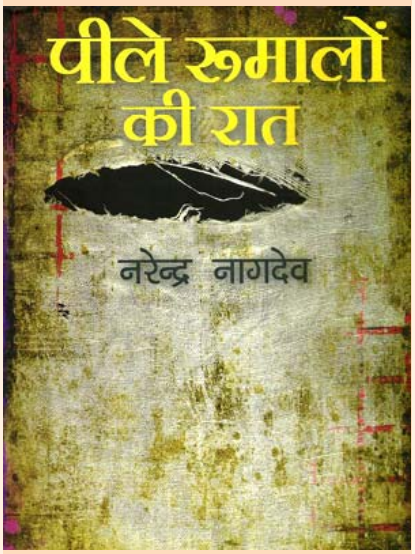

पीले रूमालों की रात
उपन्यास: नरेन्द्र नागदेव
वाणी प्रकाशन
मूल्य: 350 रू .

संपर्क: 2 29, डी .एम .कॉलोनी,
बुलंदशहर उ.प्र. - 203001

नरेन्द्र नागदेव का सद्य:प्रकाशित उपन्यास 'पीले रूमालों की रात' यूँ तो मध्यकाल से ले कर 19वीं सदी के आरम्भ तक वनांचलों में ठगों की कार्यप्रणाली, उनकी धूर्तता, नृशंसता तथा मनसिकता का सूक्ष्म परीक्षण करता है, परंतु साथ ही यह मानव की जीवन यात्रा में नियति के हाथों ठगी का बेहद रोचक आख्यान भी है। आख़िर इंसान अपने जीवन में कहाँ-कहाँ नहीं ठगा जाता है। पर्यटन या तीर्थ यात्राओं में जहाँ ठगों द्वारा ठगे जाने का खतरा सतत बना रहता है, तो वहीं जीवन-यात्रा में हम न जाने कितनी बार नियति के हाथों छले जाते हैं। यह उपन्यास भी नियति के हाथों ठगी का अद्‌भुत आख्यान है।

ब्रिटिश काल मे मध्य भारत में ठगों के आतंक और हेनरी विलियम स्लीमेन द्वारा उनका अंत किए जाने की बात हम सभी को मालूम है। परंतु जहाँ यह बात हमारे लिए पहले सिर्फ एक ऐतिहासिक तथ्य मात्र होती है, वहीं इस उपन्यास को पढ़ने के उपरान्त हम एक विरल व सघन अनुभव से गुज़रते हुए इसे स्वयं अपना भोगा हुआ यथार्थ या निजी अनुभव के रूप मे तब्दील हुआ पाते हैं। यह उपन्यास की सफलता ही कही जाएगी कि इसे पढ़ते-पढ़ते पाठक इतिहास के उस कालखंड को स्वयं जीने लगता है।

लेखक ने इसका शिल्प ऐसा गढ़ा है कि यह कथा पाठक के लिए कोई ऐतिहासिक अतीत मात्र न हो कर पाठक के अपने समय-संदर्भों के साथ जुड़ जाती है तथा अपने दायरे से निकल कर हमारे वक्त के पानसिंग तोमर तक आ जाती है व एक गम्भीर विमर्श का मुद्‌दा बन जाती है।

उपन्यास एक शाश्वत व अनुत्तरित सवाल से बार-बार टकराता है कि 'अन्याय की चरम सीमा तक प्रताड़ित व्यक्ति जब प्रतिकार में कानून अपने हाथों मे ले लेता है, तो उसे सही अथवा गलत की कौन सी कसौटी पर परखा जाए, तथा कौन सा स्थान सुरक्षित रखे इतिहास उसके लिए?' नागदेव जी अपने इस उपन्यास मे इतिहास कथा के माध्यम से इसी सनातन सवाल से टकराते हैं। लगता है कि यही इस कृति को लिखे जाने की मूल प्रेरणा भी रही है। कदाचित् इसीलिए यह उपन्यास 'अन्याय के प्रतिकार मे उठी सबसे कमज़ोर आवाज़'को समर्पित है।

उपन्यास की कहानी हज़ारों मीलों तक फैले नर्मदा के बीहड़ वनांचलों के बीच कहीं टिके हुए एक छोटे से गाँव पारबतीपुर की एक सुस्त, ढलती दोपहर, जब धूल भरी गलियों

मे सन्नाटा पसरा होता है तथा परिंदे किसी और आकाश में होते हैं तथा झरे, पीले पत्ते ऊंघते रहते है''के दृष्य के साथ शुरू होती है, जिसमें रामनारायण, जोरावर, और संग्राम नामक लगभग 7-8 वर्ष की वय के तीन हमजोली बाल-मित्र हैं, जो 'तीन शरीर एक प्राण' हैं, और 'छुपन-छुपाई खेल में मग्न हैं। अनजाने में ही वे एक ठग को संग्राम तथा उसके पिता की यात्रा के कार्यक्रम की सूचना दे देते हैं। ठग यात्रा में पिता का कत्ल कर के संग्राम को ठग विद्या में पारंगत बना देते हैं। रामनारायण बड़ा हो कर ठगों के उन्मूलन के लिए समर्पित हो जाता है तथा इसी क्रम में गाँव के बाहुबलियों की आँखों में चुभने लगता है। जब रामनारायण इसी ध्येय के लिए अपने बेटे सुमेर को विलियम हेनरी स्लीमेन की फौज में भेज देता है, तो अवसर पा कर वे रामनारायण की पत्नी का कत्ल कर देते हैं। रामनारायण प्रतिशोध की आग में जलते हुए, संयोग से संग्राम का साथ पा कर स्वयं ठग बन जाता है तथा एक-एक कर दुश्मनों से प्रतिशोध लेता है। बेटा सुमेर उधर फौज में ठगी उन्मूलन दस्ते का प्रमुख बन जाता है तथा इस क्रम में पिता रामनरायण से सीधे मुकाबले में आ जाता है। लेकिन नियति चक्र अंत में स्वयं उसे भी ठगों की ही कतार में ला खड़ा करता है।

दृष्यात्मकता उपन्यास की प्रमुख विशेषता है। किसी चलचित्र की भाँति कहानी आँखों के सामने घटित होती चलती है। कहानी में पारबतीपुर की सघन और रहस्यमयी अमराई भी साकार हो उठती है; जहाँ से न जाने कितनी यात्राएँ शुरू हुई और न जाने कितनी यात्राओं के पड़ाव हुए। एक ओर जहाँ अमराई की शीतलता है, वहीं दूसरी ओर यात्रा में जान-जोखिम, छल-फरेब व घात-प्रतिघात के षड्यंत्रों की बेचैनी भी।

विश्वास मनुष्य की बड़ी पूंजी है, लेकिन कहानी में भोले भाले यात्रियों के लिए तो यह विश्वास ही जानलेवा साबित होता है। हाँ, ठग अवश्य विश्वासघात कर के मालामाल होते रहते हैं तथा उन्हें तथाकथित धार्मिक स्वीकृति व काली माँ की कृपा भी प्राप्त होती रहती है। विडम्बना यह थी कि ठग लोग मुक्तिदूत की शक्ल मे ठगी करते थे। लेकिन एक बार पूरी तरह विश्वास में आ गए यात्री को सुनसान जगह पर मौका मिलते ही अपने पीले रूमाल का फंदा उसकी गर्दन मे कस कर मार डालते थे। फिर माल असबाब उनका और मृत देह काली माँ की।

कथा-विन्यास में लेखक का सम्पूर्ण ध्यान ठगों के विनाश की कथा सुनाने पर ही केंद्रित रहा है। कदाचित इसीलिए उपन्यासकार ने सुमेर और विनोदिनी के परस्पर प्रेम की झलक मात्र दर्शायी है। जब कि लेखक स्वयं विनोदिनी के शब्दों में कहलवाता है कि 'हम जिन परिस्थितियों में मिले हैं, उसमे तो एक अदद प्रेम कहानी के आगे बढ़ने की मज़बूत सम्भावनाएँ बनती हैं।' लेकिन उसके उलट लेखक इस प्रेम कहानी को कोई विस्तार प्रदान नहीं करते हैं। यदि लेखक ऐसा कर पाते तो निश्चित रूप से उपन्यास और भी अधिक रोचक बन जाता।

उपन्यास मे विशेष दृष्टव्य है भाषा का सहज प्रवाह। भाषा के स्तर पर कोई दुरूहता नहीं है, अपितु उसे सहज बनाए रखा गया है, जिससे कहीं कोई व्यवधान उत्पन्न नही होता। नागदेव जी अपनी सहज-सरल भाषा मे अद्भुत कहिन के लिए भी जाने जाते हैं। वे अपने सरल शब्दों से ही वातावरण का सटीक चित्रण करने में सक्षम है, भले ही वातावरण नैसर्गिक सौंदर्य का हो अथवा भयावह आतंकमयी परिदृष्य का।

उपन्यास की एक बड़ी उपलब्धि यह है कि इसमें इतिहास कथा को लोककथा जैसी सरसता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसे पढ़ते-पढ़ते अलाव या चौपाल पर बुज़ुर्गों के मुख से लोककथा सुनने जैसी अनुभुति होती है। उपन्यास यकीनन कई दुर्लभ एहसासों की अमिट छाप छोड़ने में कामयाब है। पारबतीपुर की सघन अमराई, यात्राओं के विवरण, झाड़ियों मे ठगों के घात-प्रतिघात, पीले रूमालों की प्राणांतक दमघोटू घुटन - स्मृति में जैसे रच बस जाती है। उपन्यास नि:संदेह सर्वथा पठनीय व अविस्मरणीय है।

****

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान'' हेतु पुस्तकें आमंत्रित

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान'' हेतु चयन प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। इस प्रक्रिया में वर्ष 2015 तथा 2016 में प्रकाशित हिन्दी उपन्यासों तथा हिन्दी कहानी संग्रहों पर विचार किया जाएगा। सम्मान समारोह अगले वर्ष 2017 में अमेरिका में आयोजित किया जाएगा। इस हेतु पुस्तकें आमंत्रित हैं।

पुस्तक पर लिखें

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय सम्मान हेतु''

लेखक, प्रकाशक, पाठक कोई भी इस सम्मान हेतु अनुशंसाएँ पुस्तक की दो प्रतियों के साथ भेज सकते हैं।

15 फरवरी 2017 तक प्राप्त पुस्तकें चयन प्रक्रिया में शामिल की जाएँगीं।

सम्मान हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ इस पते पर भेजें-

पंकज सुबीर (समन्वयक-भारत)
पी. सी. लैब
शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने
सीहोर 466001, मध्य प्रदेश
दूरभाष 07562-405545
मोबाइल 09977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

एक पेग ज़िन्दगी
खुरदुरे यथार्थ से मुठभेड़ करती लघुकथाएँ

समीक्षक : घनश्याम मैथिल 'अमृत'

सत्य को परेशान तो किया जा सकता है किन्तु पराजित नहीं, यह कथन मेरी दृष्टि में वर्तमान समय में लघुकथा की स्थिति पर पूरी तरह से सटीक बैठता है। यह एक कटु सत्य है कि हमारे हिन्दी साहित्य में लघुकथा को हमेशा दोयम दर्जे पर रखते हुए उसे सदैव हाशिये पर धकेलने की कोशिश की गई। उसे क्षणिक मनोरंजन का ज़रिया, और पत्र पत्रिकाओं में खाली स्थान की पूर्ति का साधन भर माना गया; परन्तु आज स्थितियाँ तेज़ी से बदल रही हैं। लघुकथा सृजन की और लेखकों, आलोचकों,और पाठकों का ध्यान गया है और लघुकथा एक स्वतंत्र विधा के रूप में तेज़ी से अपना स्थान बना रही है। ऐसे ही लघुकथा के समकालीन परिदृश्य में एक चर्चित नाम है श्रीमती पूनम डोगरा का जिनका सद्य प्रकाशित लघुकथा संग्रह 'एक पेग ज़िन्दगी' प्रकाशित हो कर पाठकों के हाथों में आया है।

समीक्ष्य लघुकथा संग्रह के 138 पृष्ठों में पूनम जी की एक से बेहतर एक विविध भावभूमि की कुल 89 लघुकथाएँ संग्रहीत हैं। उनकी इन लघुकथाओं के केंद्रीय विषय समाज में स्त्रियों के साथ भेद-भाव, वृद्धवस्था, पीढ़ियों के बीच द्वंद्व, ग़रीबी, जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से सामने आई हैं। उनको प्रगतिशील विचार अपने माता-पिता से विरासत में मिले हैं। साथ ही सेना में रहे अपने पति के साथ देश के विभिन्न हिस्सों में रहने, वहाँ के लोगों की विविध संस्कृति को निकट से देखने समझने का उन्हें पूर्ण अवसर मिला इसका प्रभाव उनके लेखन पर पूर्ण रूप से दिखाई देता है। इस संग्रह की भूमिका लिखते हुए वरिष्ठ लघुकथाकार सुश्री कान्ता रॉय ने जो अभिव्यक्ति दी है उसका उल्लेख भी यहाँ करना में ज़रूरी समझता हूँ। वे लिखती हैं 'पूनम डोगरा जी की लघुकथाएँ परिवर्तनशील समय और समाज का गहन विश्लेषण करती हैं। देशकाल और वातावरण का प्रयोग करते हुए गहरे अंतर्द्वंद्व के साथ वे पात्रों में उतर जाती हैं। यहाँ में उनकी कुछ लघुकथाओं का ज़िक्र करना भी समीचीन समझता हूँ। 'चीत्कार' संग्रह की पहली लघुकथा है, जिसको पढ़ते ही पाठकों का परिचय लेखिका के विद्रोही तेवर से हो जाता है, जिसमें वह दंगे के दौरान दंगाइयों द्वारा एक महिला कीइज़्ज़त लूटे जाने व उसके घर व पति को ज़िन्दा जला दिए जाने पर भगवान् से विद्रोह कर उनके अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लगा देती हैं। 'गर्म गोश्त' कहानी औरतों को देह की मंडी बनाने वालों के मुँह पर करारा तमाचा है। 'बॉन्डिंग' पीढ़ियों के बीच अंतर्द्वंद्व की मार्मिक कथा है। 'पीले पन्नों की खुशबु' में पहले प्यार के कभी न भुलाए जाने वाले अहसास का हृदयस्पर्शी चित्रण है, वहीं 'डोर' में सुदूर बसे परिजनों के बीच आत्मीयता के भाव की सुखद अनुभूति है, वहीं 'तैश' कहानी में एक भारतीय नारी संस्कारों के नाम पर पति के उत्पीड़न का कैसे शिकार होती है का मार्मिक चित्रण करती है। 'सरकारी मुआवज़ा' कैसे एक ग़रीब आदमी सरकारी मुआवज़े के लिए अपने जीवन को ही समाप्त कर लेता है कि दारुण व्यथा को दर्शाती है, 'आख़िरी किश्त' हमारे शिक्षण संस्थानों के दोगले,शोषण वाले गन्दे चरित्र को उकेरती प्रभावी लघुकथा है। 'हाय मेरा दिल' समय की सच्चाई से मुँह चुराते लोगों के मुँह पर तमाचा है। 'तीसरा पहिया' भ्रष्टाचार के विरुद्ध ईमानदारी का संघर्ष की कथा है। 'मेरे जाने के बाद' में एकाकी बुज़ुर्गों की त्रासदी इसी प्रकार 'जश्न रिहाई का' भी परिवार द्वारा बुज़ुगों को बोझ समझे जाने की पीड़ा को अभिव्यक्ति देती लघुकथा है। 'कड़वे घूंट' में पति-पत्नी के रिश्तों के मध्य तीसरे की उपस्थिति से उपजी पीड़ा का सटीक चित्रण हैं। 'एक पेग ज़िन्दगी' जो संग्रह की शीर्षक लघुकथा है संग्रह की सबसे दीर्घ कथा है, संग्रह की भाषा सहज सरल व प्रभावी है। कुछ कथाओं का प्रभाव सामान्य है। प्रूफ की अशुद्धियाँ परेशान करती हैं।

****

पूनम डोगरा

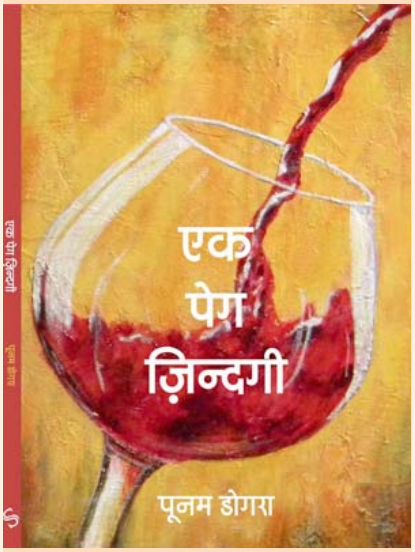

एक पेग ज़िन्दगी (लघुकथा संग्रह)
लेखिका: पूनम डोगरा
प्रकाशक: समय साक्ष्य, 15, फ़ालतू लाइन, देहरादून-248001
मूल्य: 165 रुपये

संपर्क: ''प्रणाम'' जी/एल 434 अयोध्या नगर फेस, भोपाल -462041, मध्य प्रदेश।

शशि पाधा

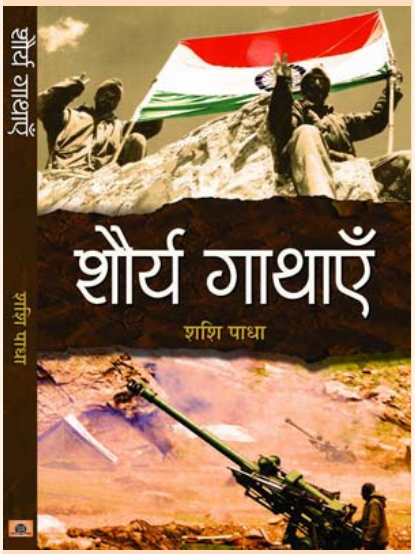

शौर्य गाथाएँ
लेखिका-शशि पाधा

द्वारा: डॉ. रामेश्वर झा, वी.आई.पी. रोड,
पूरब बाजार, सहरसा-852201 (बिहार),
फोन- 9759479500
ई-मेल gautamrajrishi@gmail.com

शौर्य गाथाएँ
त्याग, कुर्बानी, जिजीविषा की दास्तान

समीक्षक- गौतम राजरिशी

''शौर्य क्या है?
हरी वर्दी पर चमकते हुए चंद पीतल के सितारे,
या सरहद का नाम देकर अनदेखी कुछ लकीरों की नुमाइश...''

...जावेद अख्तर साब की ये पंक्तियाँ उनकी एक लम्बी कविता में शौर्य के कुछ पहलूओं को छूती सी गुज़रती हैं, लेकिन शौर्य को यूँ लिखे हुए शब्दों से छू पाना मुमकिन है क्या ? किस लम्हे में किस इरादे, किस जुनून का वो जाने कौन सा हिस्सा होता है जो सीने में कौंधते, कंपकपाते डर को दरकिनार कर शौर्य की अमिट गाथा बन जाता है... !!! समकालीन समय में यत्र-तत्र बिखरी हुई हमारे आस-पास घटने वाली शौर्य की कितनी ही कहानियों में से भारतीय सेना की डायरी में शायद इस दौर की सबसे हैरतंगेज शौर्य गाथाएँ दर्ज हैं। ऐसी ही कुछ कहानियों को इकट्ठा लेकर आई हैं श्रीमती शशि पाधा अपनी किताब ''शौर्य गाथाएँ'' में। लेखिका ने, दरअसल, इन कहानियों को बहुत क़रीब से ख़ुद जीया है, ख़ुद भोगा है, ख़ुद बर्दाश्त किया है...और इसलिए इन कहानियों के किरदार किताब के पन्नों से निकल कर आपके साथ आ बैठते हैं।

किताब में शामिल कुछ कहानियों को जहाँ मीडिया ने आमजनों तक पहुँचाया है, वहीं कुछ कहानियाँ अनसुनी हैं। ''संत सिपाही'' कैप्टेन अरुण जसरोटिया की शहादत हो या ''एक और अभिमन्यू'' लेफ्टिनेंट सुशील खजुरिया का बलिदान...इन गाथाओं के पीछे जो त्याग, कुर्बानी, जिजीविषा की दास्तान है, उन्हें शब्दों में समेट पाना नामुमकिन है। इन कहानियों से गुज़रते हुए बार-बार नम होती आँखों को बहुत बाद में..इन कहानियों से गुज़र चुकने के बाद---बहुत बाद में अहसास होता है कि लेखिका ख़ुद कितनी पीड़ा से गुज़री होंगी इन्हें शब्द-बद्ध करते हुए। मैं ख़ुद एक सैनिक होने की पीड़ा तो समझता हूँ, लेकिन ये नहीं जानता कि एक सैनिक की पत्नी होने का दर्द बड़ा होता है या सैनिक की माँ होना...और फिर लेखिका तो दोनों ही हैं-सैनिक-पत्नी भी और सैनिक की माँ भी। ग्लोरी और गट्स से परे, जो सबको दिखता है, उस एक पीड़ा को जो सैनिक परिवार की स्त्रियों को भोगना पड़ता है, उसे बहुत कम आँखें देख पाती हैं। सुधीर, अजय और मोहित शर्मा के शौर्य को तो ख़ुद ही बहुत क़रीब से देखा है, और उनकी गाथा से एक बार फिर से शशि पाधा जी की लेखनी के जरिये रूबरू हुआ तो...तो जैसे आँसुओं का सैलाब थामे नहीं थम रहा था। घबरा कर किताब को आलमारी के सबसे ऊपर वाले ताखे पर रख दिया और दुबारा पलटने की हिम्मत नहीं कर पा रहा।

ये सच्ची कहानियाँ पढ़े जाने की ज़िद करती हैं आपसे कि इन कहानियों के किरदार आपकी, हमारी चैन भरी नींद के लिए फिर-फिर जाते हैं बगैर हिचके, बगैर झिझके उन गोलियों की बौछारों के सामने जिनका मकसद बस आतंक है और निभाते हैं अपनी ड्यूटी अपनी क्षमता के आख़िरी औंस तक....न ! न !! किसी देश, मुल्क, राष्ट्र के नाम पर नहीं...बल्कि अपने सेक्शन, अपनी प्लाटून, अपनी कंपनी और अपने रेजीमेंट के उस बैज के लिए जो उनकी टोपियों और उनके काँधों पर जगमगाता है।

''शौर्य क्या है ?
शायद एक हौसला, शायद एक हिम्मत हमारे बहुत अंदर
मरती मारती इस दुनिया में डटे रहने की हिम्मत...''

****

कोपनहेगन विश्वविद्यालय में हिन्दी संध्या

अर्चना पैन्यूली के नये उपन्यास 'पॉल की तीर्थयात्रा' का विमोचन

डेनमार्क गुरूवार, 22 सितम्बर को कोपनहेगन यूनिवर्सिटी के क्रॉस कल्चरल एंड रीजनल स्टडीज विभाग में 'हिंदी संध्या' का शानदार आयोजन हुआ। कहा जाता है कि कोपनहेगन यूनिवर्सिटी में यह पहली बार किसी हिन्दी कार्यक्रम का इतना विस्तृत आयोजन हुआ। हिन्दी प्रोफ़ेसर एल्मार रेनर कार्यक्रम के आयोजक थे। लाली परवाना ने सूत्रधार की भूमिका निभाई।

भारतीय राजदूत श्री राजीव शहारे ने दीप प्रज्वल्लित करके कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। सर्वप्रथम श्री शहारे के द्वारा अर्चना पैन्यूली के नये उपन्यास 'पॉल की तीर्थयात्रा' का विमोचन हुआ। प्रोफ़ेसर एल्मार रेनर, प्रोफ़ेसर रश्मि सिंघला, एडवोकेट राज कोहली व रितु कृष्णन ने उपन्यास पर अपने विचार प्रस्तुत किए। एल्मार रेनर ने कहा कि उपन्यास की विशेषता यह है कि पश्चिमी भावनाएँ हिन्दी में पढ़ने को मिलती हैं और उपन्यास में पूर्वी व पश्चिमी संस्कृतियों-भावों का अच्छा मिश्रण है। उपन्यास पूरी तरह ग्लोबल है। रश्मि सिंघला, जिन्होंने स्वयं मिश्रित विवाहों (Mixed marriages) पर पुस्तक लिखी है, ने टिप्पणी की कि 'पॉल की तीर्थयात्रा' में स्कॉटिश नागरिक पॉल व भारतीय मूल की नीना की शादी एक मिक्स्ड मैरिज का उदाहरण है व उनके वैवाहिक संघर्ष व विवाद उनकी पुस्तक के पात्रों जैसे ही हैं। अंतर यह है कि उनकी पुस्तक रिसर्च पर आधारित है और 'पॉल की तीर्थयात्रा' एक फ़िक्शन है। रितु कृष्णन ने अपने वक्तव में कहा कि उपन्यास में पूर्व पश्चिम से मिलता प्रतीत होता है। मनुष्य भावनाएँ सर्वत्र एक जैसी ही है फिर भी हम एक दूसरे से इतने भिन्न क्यों, यह तथ्य उपन्यास में बड़े प्रभावशाली तरह से उभरा है।

उपन्यास विमोचन के बाद 'उत्तरी यूरोप में हिन्दी की दशा' पर परिचर्चा हुई। श्री राजीव शहारे ने अपने उदघाटन भाषण में कहा, हिन्दी एक विशाल जनसंख्या की मातृभाषा व विश्व स्तर की प्रमुख भाषाओं में भी एक है। लेकिन हिन्दी में जो सम्भावनाएँ हैं, तदुनुरूप हिन्दी को जगत् में वह स्थान नहीं मिल पा रहा ह। हिन्दी नि:संदेह सयुंक्त राष्ट्र संघ की भाषा बननी चाहिए।

हेमबर्ग यूनिवर्सिटी, जर्मनी से प्रोफेसर राम प्रसाद भट्ट और आरहुस यूनिवर्सिटी से असिस्टेंट प्रोफेसर विवेक शुक्ल ने कार्यक्रम में भाग लिया। डॉ. रामप्रसाद ने जर्मनी में हिन्दी की दशा पर सूचनाप्रद अच्छा प्रकाश डाला। एल्मार रेनर व विवेक शुक्ल ने अपने-अपने शंकाओं में हिन्दी की स्थिति से अवगत करवाया। हिन्दुस्तान एक विशाल देश होने की वजह से विश्व को इसकी गूढ़ संस्कृति व साहित्य जानने की उत्सुकता रहती है, इसलिए विदेशी छात्रों की हिन्दी भाषा सीखने की ललक रहती है। टोर्स विभाग के एशियन स्टडीज़ खंड में हिन्दी पढ़ने वाले छात्रों की भी प्रस्तुति रही।

साउथ एशियन स्टडीज खंड की भूतपूर्व छात्रा कटरीना ब्रोंद्स्तेद, जो अब कोपनहेगन में एक जिमनेज़ियम स्कूल की अंग्रेज़ी अध्यापिका है, ने भारत व हिन्दी के प्रति अपने अनुराग का कारण बताते हुए कहा कि बोलीवुड फिल्मों ने उन्हें हिंदी सिखने के लिए प्रेरित किया। गौरतलब है कि कटरीना ने दो विशिष्ट पुस्तकें भारत पर प्रकाशित की है। उनकी एक पुस्तक बॉलीवुड व अन्य भारत के इतिहास, परिवेश, संस्कृति आदि से सम्बन्धित है। डेनमार्क के कई जिमनेज़ियम स्कूलों के पाठ्यक्रम में केटरीना ने पुस्तकें लगाई है। उनका यह प्रयास है कि फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश की तरह हिन्दी भी डेनमार्क के जिमनेजियम स्कूलों की एक भाषा बने। अपने विद्यार्थियों को केटरीना ब्रोंद्स्तेद हर वर्ष भारत भ्रमण पर ले जाती है।

कई स्थानीय भारतीयों के आलावा डेनिश व अन्य विदेशी लोगों की भी कार्यक्रम में उपस्थिति रही। जर्मन नागरिक एल्मार रेनर व उनके डेनिश छात्रों को हिन्दी बोलते देख दर्शक सुखद आश्चर्य से भर गए।

कार्यक्रम के अंत में तृप्ति मनी द्वारा एक सांस्कृतिक नृत्य की प्रस्तुति रही। सभी ने जलपान में डेनिश व भारतीय स्नेक्स का रसास्वादन किया। कुल मिला कर एक रोचक शाम रही।

****

-डॉ. ज्योति प्रसाद पैन्यूली

प्रताप सहगल के विचारोत्तेजक नाटक 'अन्वेषक' का सफल मंचन

21 नवंबर, 2016 को साहित्य कला परिषद दिल्ली द्वारा आयोजित युवा नाट्य-समारोह धमाकेदार शुरूआत प्रताप सहगल के माडर्न क्लासिक के रूप में जाने जाने वाले नाटक अन्वेषक (प्रकाशक-किताबघर प्रकाशन) से हुई। अन्वेषक नाटक किसी भी नाट्य-निर्देशक के लिए एक चुनौती के रूप में सामने आता है और युवा नाट्य-निर्देशक अतुल जस्सी ने अपने निर्देशकीय कौशल से अन्वेषक के मंतव्यों को दर्शकों को सफलता पूर्वक पहुँचाया।

अन्वेषक का केन्द्रीय पात्र पाँचवीं शताब्दी में जन्मा अद्‌भुत जीनियस आर्यभट है। नाटक आर्यभट के गणित एवं खगोलीय शोध-परिणामों को तो दर्शकों के सामने ही रखता ही है; लेकिन नाटक का इससे भी महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रतिगामी और प्रगतिगामी शक्तियों के बीच संघर्ष है। इस तरह से यह नाटक केवल पाँचवीं शताब्दी का न रहकर हमारे समय का नाटक भी हो जाता है। एक ओर आर्यभट तथा सम्राट बुद्धगुप्त हैं तो दूसरी ओर प्रतिगामी शक्तियों का प्रतिनिधित्त्व करने वाले चिंतामणि और चूड़ामणि हैं। इन चरित्रों के माध्यम से शिक्षा और समाज, राष्ट्र और धर्म तथा वैज्ञानिक एवं अंधविश्वासों पर टिकी सोच से जुड़े प्रश्न प्रखर रूप में सामने आते हैं। नाटक एक लेखक एवं सत्ता के बीच सकारात्मक रिश्ते की संभावना की ओर भी संकेत करता है, बशर्ते सत्ता के मुखिया की सोच रूढ़िवादिता और अंधविश्वासों के विरोध में हो।

इससे पहले भी इस नाटक का निर्देशन अखिलेश अखिल और सतीश आनंद जैसे निर्देशक कर चुके हैं। यानी हर पीढ़ी के निर्देशक को नाटक आकर्षित करता है। नाटक का निर्देशन अतुल जस्सी ने किया। अतुल जस्सी द्वारा किया गया मल्टीमीडिया का इस्तेमाल स्पष्ट संकेत है कि इसके इस्तेमाल से दृश्य-बंधों का प्रभाव कैसे बढ़ाया जा सकता है। आर्यभट की भूमिका में गौरव ग्रोवर तथा सम्राट बुद्धगुप्त की भूमिका में रमेश खन्ना ने प्रभावित किया। चिंतामणि के रूप मे रवि तनेजा ने दृश्यों को उत्तेजक बनाया। चूड़ामणि के रूप मे ऋषि शर्मा ने रवि तनेजा का बखूबी साथ दिया। केतकी अपने संवादों को थोड़ा और खुलकर बोलती तो और प्रभावित करतीं। शेष पात्रों के रूप में सुधीर गुल्यानी, संयम खन्ना, स्काई, शोभा जस्सी, संगीता, शालू, तुषार बक्शी, जावेश समीर ने अपनी भूमिकाएँ ठीक निभाईं। प्रकाश-संयोजन राघव का और निर्देशन अतुल जस्सी ने किया।

****

पंकज सुबीर की कहानी पर बनी फिल्म को सर्वश्रेष्ठ फिल्म का अवार्ड

पंकज सुबीर की कहानी दो एकांत पे बनी फिल्म बियाबान को कल्याण इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल में सर्वश्रेष्ठ फिल्म का अवार्ड दया गया। मुम्बई में आयोजित कल्याण फिल्म फेस्टिवल के वासुदेव बलवंत फड़के मैदान पर आयोजित इस अंतर्राष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल में दुनिया भर की फीचर फिल्मों का प्रदर्शन किया गया। उल्लेखनीय है कि फिल्म 'बियाबान' पंकज सुबीर की ही एक सुप्रसिद्ध कहानी 'दो एकांत' पर बनी है, जिसमें कहानी, संवाद तथा गाने पंकज सुबीर ने लिखे हैं। यह फिल्म देश भर के विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल्स में प्रदर्शित की जा रही है तथा इसे बहुत सराहना भी प्राप्त हो रही है। पंकज सुबीर की कहानी 'दो एकांत' कन्या भ्रूण हत्या के भीषण सच को सामने लाती है तथा आने वाले कल का एक ख़ौफ़नाक चित्र प्रस्तुत करती है। इस फिल्म का निर्देशन मशहूर फिल्म निर्देशक कृष्णकांत पंड्या ने किया है। बियाबान फिल्म को फेस्टिवल में चार केटेगरी में अवार्ड हेतु नॉमिनेट किया गया था सर्वश्रेष्ठ निर्देशक, सर्वश्रेष्ठ फिल्म, के साथ पंकज सुबीर को सर्वश्रेष्ठ गीतकार हेतु अंतिम 3 में नामांकित किया गया था। इनमें से सर्वश्रेष्ठ फिल्म का अवार्ड फिल्म बियाबान को प्राप्त हुआ।

****

आसान नहीं है सतकथा कहना
कथाकार मुकेश वर्मा के नए कहानी संग्रह का लोकार्पण

भोपाल. ''नैतिक मूल्यों के विघटन के इस दौर में सतकथा कहना किसी चुनौती से कम नहीं है''। अपने इस लेखकीय आग्रह के साथ कथाकार मुकेश वर्मा 30 नवंबर की शाम राज्य संग्रहालय के सभागार में नए कथा संग्रह की सौगात लिए श्रोताओं के रूबरू हुए। उनके इस नए संग्रह ''सतकथा कही नहीं जाती'' पर अपनी राय ज़ाहिर करते हुए हिन्दी के प्रख्यात कहानीकार प्रियंवद ने कहा कि मुकेश की किस्सागोई में विषय और विचार पूरे सौंदर्यबोध के साथ उजागर हुए है। जबकि समारोह की अध्यक्षता करते हुए प्रख्यात उपन्यासकार और संस्कृतिकर्मी सतोष चौबे ने वर्मा की कहानियों को यथार्थ और फैंटेसी के बीच नैतिक मूल्यों का सृजन बताया। वनमाली सृजनपीठ द्वारा साहित्य संस्था पहले पहल, स्पंदन और मप्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहयोग से संयोजित लोकार्पण और कृति विमर्श के इस गरिमामय प्रसंग को कथाकार शशांक, युवा आलोचक पल्लव ने भी अपने समीक्षात्मक वक्तव्यों से नई वैचारिक उष्मा प्रदान की। इस मौके पर श्री मुकेश वर्मा ने पुस्तक की शीर्षक कहानी ''सतकथा कही नहीं जाती'' का भावपूर्ण पाठ भी किया।

स्वागत वक्तव्य के दौरान कवि बलराम गुमास्ता ने वर्मा के लेखकीय योगदान और उपलब्धियों से अवगत कराया। उन्होंने कहा कि मुकेश जी का कथा संसार व्यापक और सहज है। इसमें लंबे समय से कथामय जीवन से विस्थापित किए जा रहे मनुष्य और मनुष्यता को स्थापित करने का सार्थक प्रयत्न किया है। मुकेश जी ने हिन्दी भाषा को अपनी कहानियों में जिस तरह व्यक्त किया है उससे भाषा अपने को सामर्थ्य को बढ़ाने में सक्षम होती है। इसके लिए वे बधाई के पात्र है। उन्होंने कहा कि शब्दों की अनुगूंज, उनका प्लैसमेंट, वैल्यू समर्थ वाक्य विन्यास कुछ इस तरह सघन होकर एक ऐसा अनुभव रचती है कि उनमें तमाम दुख और विडंबनाएँ उद्घाटित होने लगते है। श्री वर्मा की कहानियाँ जीवन में शामिल होने का निमंत्रण देती है। उनकी कहानियों में राजनैतिक विद्रुपताओं पर करारी चोट है। उन्होंने उनकी कहानी चार चतुर की बेकार कथा के एक अंश का पाठ भी किया।

युवा आलोचक पल्लव ने मुकेश वर्मा की तीसार किताब सतकथा कही नहीं जाती को उनके कृतित्त्व का प्रौढ़ चित्र निरूपित करते हुए कहा कि यहाँ तक आते-आते वे अपनी कहानी की भंगिमाएँ चुन लेते हैं और मुहावरे बनाने का हूनर भी उनकी कहानियों में दिखाई देने लगता है, तब वे कहानी की जातीय परंपरा के निकट जाते मालूम होते हैं। यहाँ कहानी लिखने से अधिक कहने की विधा दिखाई देती है। उन्होंने कहा कि वे समाज के बदलावों को देखते है और उन पर टिप्पणियाँ भी करते है पर ये टिप्पणियाँ आरोपित नहीं है। उन्होंने कुछ कहानियों के उदाहरण देते हुए उनके अंशों का पाठ भी किया। उन्होंने कहा कि श्री वर्मा की कहानियों के शीर्षक ही व्यंजना का उद्घाटन करते है।

ये कहानियाँ हमारे समय के विद्रुप होते जा रहे यथार्थ को तो व्यक्त करती ही है, मानवीय संवेदना और उष्मा को बचाए रखने की कवायद भी करती है। ये दरअसल मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा की कहानियाँ है।

वरिष्ठ कथाकार शशांक ने भी मुकेश की कहानियों को एक जागरूक लेखक का अपने समय में सार्थक हस्तक्षेप बताया। उन्होंने कहा कि श्री वर्मा की कहानियों में मैं नाम का नरेटर उपस्थित रहता है। जो बार-बार दृश्य, घटना, वर्णन में अपनी संवेदना को पाने का प्रयत्न करता है। भाषा का खेल भाव यहाँ धीरे-धीरे मुकेश वर्मा में विकसित होता है। उन्होंने कहा कि किसी लेखक की तीसरी किताब उस लेखक की कड़ी परीक्षा होती है।

समारोह के मुख्य वक्ता लखनऊ से आए श्री प्रियंवद ने अपने लंबे उद्बोधन में वर्मा की कहानियों की गहरी पड़ताल की। उन्होंने कहा कि मुकेश वर्मा हमारे समय के बहुत ही महत्त्वपूर्ण कथाकार है, जो अपनी कहानियों में सामाजिक सरोकार, गहरी संवेदना और हमर के कारण अलग दिखते

हैं। उनकी कहानियाँ सिर्फ विषय के कारण ही नहीं बल्कि अपने कलात्मक सौंदर्य के कारण भी उल्लेखनीय है। किस्सागोई मुकेश वर्मा की एक और उल्लेखनीय विशेषता है जो इन्हें अपने समकालीनों से अलग करती है। साहित्य में विचार या दर्शन की उपस्थिति को लेकर उन्होंने कुछ सवाल भी खड़े किए। उन्होंने कहा कि साहित्य का अंतिम लक्ष्य धीरे-धीरे दर्शन में शामिल हो जाना है। यहाँ दर्शन का अर्थ विचार से है। जब हम साहित्य में विचार या दर्शन की ओर बढ़ना शुरू होता है, तो हम जटिल होना शुरू हो जाते हैं। उन्होंने साहित्य में सरलता से जटिलता की ओर बढ़ने को लेखक के ग्रो करने का पैरा मीटर बताया।

संतोष चौबे ने लोकार्पित संग्रह की कहानियों का हवाला देते हुए कहा कि अपनी कहन और भाषा के खास मुहावरे को लेकर रची गई मुकेश जी की कहानियों में नैतिक मूल्य झाँकते से लगते हैं। ये कहानियाँ ताजगी का अहसास कराती हैं। उन्होंने श्री वर्मा की कहानियों के अंशों को पढ़ते हुए उदाहरण देकर उनके भीतर व्यक्त बिबों का विश्लेषण किया। उन्होंने कहा कि आज के समय की सत्कथा यही यथार्थ और फैंटेसी के बीच झूलती हुई, पकड़ में आती न आती हुई, निगाहों में मरती और ओझल होती हुई कथा है जिसे भाषा के वैविध्य और दृष्टि के पैनेपन के साथ पकड़ने की कोशिश की गई है। वनमाली सृजनपीठ परिवार की ओर से प्रशांत सोनी, हरि भटनागर, अरूणेश, मोहन सगोरिया, विक्रांत भट्ट तथा स्पंदन की ओर से उर्मिला शिरीष आदि ने अतिथियों का फूलों से स्वागत किया। वनमाली सृजनपीठ के संयोजक विनय उपाध्याय ने अतिथि वक्ताओं को स्मृति चिन्ह भेंट कर सम्मानित किया। कार्यक्रम का संचालन कथाकार पंकज सुबीर ने किया। आभार माना कवि महेन्द्र गगन ने। इस मौके पर राजधानी के साहित्यिक सांस्कृतिक सामाजिक और शैक्षणिक जगत् के अनेक गणमान्यजन मौजूद थे।

****

उपन्यास किसानों की समस्या की तह में जाने की कोशिश करता है : डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

पंकज सुबीर के उपन्यास अकाल में उत्सव पर चर्चा

भोपाल साहित्यिक सांस्कृतिक संस्था मंतव्य द्वारा कहानीकार पंकज सुबीर के चर्चित उपन्यास अकाल में उत्सव पर चर्चा का आयोजन हिन्दी भवन के महादेवी वर्मा सभागार में रविवार शाम किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार पद्मश्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने की जबकि उपन्यास पर विशेष वक्तव्य व्यंग्यकार, आलोचक तथा दूसरी परंपरा के संपादक डॉ. सुशील सिद्धार्थ ने प्रदान किया।

उपन्यास पर बोलते हुए विशेष वक्ता डॉ. सुशील सिद्धार्थ ने कहा कि किसानों की आत्महत्या को लेकर पंकज सुबीर ने बहुत जोखिम उठाते हुए यह उपन्यास लिखा है, जोखिम इसलिए क्योंकि ग्रामीण जीवन पर लिखना इन दिनों वैसे ही बहुत कम हो रहा है तथा कहा जा रहा है कि उस प्रकार के लेखन को पाठक नहीं मिलते हैं। पंकज सुबीर का यह उपन्यास उन सारे प्रश्नों के उत्तर तलाशता है जो किसानों को लेकर, खेती को लेकर एक संवेदनशील व्यक्ति के मन में उठते रहते हैं कि आख़िर क्यों करता है किसान आत्महत्या। उपन्यास का प्रभाव बहुत देर तक पाठक के मन पर बना रहता है। पूरे उपन्यास में व्यंग्य अंतर्निहित है बिना किसी शोर-शराबे के।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे वरिष्ठ व्यंग्यकार पद्मश्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि पंकज सुबीर का यह उपन्यास महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह उस समय में आया है जब किसानों को लेकर बहुत सी बातें हो रही हैं। यह उपन्यास किसानों की समस्या की तह में जाने की कोशिश करता है। कुछ दृश्य इस उपन्यास के बहुत प्रभावी और सजीव बन पड़े हैं। अंतिम ज़ेवर का बिकना और उसका गलना, वह पूरा दृश्य ऐसा लगता है मानों पाठक सामने उस दृश्य को घटते हुए देख रहा है। अंतिम ज़ेवर के बहाने किसान की सारी यादों का एक के बाद ताज़ा होना, वह सब कुछ लेखक ने बहुत सुंदरता के साथ लिखा है। उपन्यास के नाम में ही व्यंग्य है अकाल में उत्सव। ज़ाहिर सी बात है कि उपन्यास में भी वह व्यंग्य पूरे कथानक में रचा बसा है।

इस अवसर पर श्री सुशील सिद्धार्थ को उनकी साहित्यिक सेवाओं हेतु भोपाल के साहित्य समाज की ओर से सम्मानित भी किया गया। डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने शॉल, श्रीफल तथा सम्मान चिह्न भेंट कर श्री सुशील सिद्धार्थ को सम्मानित किया।

इससे पूर्व उपन्यास पर प्रारंभिक वक्तव्य देते हुए वरिष्ठ पत्रकार श्री ब्रजेश राजपूत ने उपन्यास पर चर्चा की। कार्यक्रम के प्रारंभ में अतिथियों का स्वागत मंतव्य के सदस्यों ने किया। कार्यक्रम का संचालन उपन्यासकार मलय जैन ने किया। आभार मुकेश तिवारी ने व्यक्त किया। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में साहित्यकार, पत्रकार उपस्थित थे।

****

डेढ़ क्विंटल कविताएँ

पिछले अंक के आख़िरी पन्ने को आपने बहुत पसंद किया, उस हेतु आभार। मुझे तो लग रहा था कि शायद यह कुछ लोगों को नाराज़ कर देगा। ख़ैर! इस बार एक और विषय पर चर्चा करने की इच्छा हो रही है। आपने भी महसूस किया होगा कि जब भी किसी कार्यक्रम का कार्ड सामने आता है, उसमें शामिल वक्ताओं के नाम सामने आते हैं या जब भी किसी पुरस्कार की घोषणा होती है, तो तुरंत ही सुगबुगाहट शुरू हो जाती है। यह सुगबुगाहट के मूल में स्वर तो वही होता है कि –'वह क्यों ? हम क्यों नहीं ?' लेकिन चूँकि ऐसा सीधा-सीधा नहीं कहा जा सकता, इसलिए कान को घुमा कर पकड़ा जाता है। इस बात पर प्रश्न उठाए जाते हैं कि 'अच्छा ! यह भी कवि / कहानीकार / व्यंग्यकार हो गए ? कब हो गए ?' यह भी एक बड़ा प्रश्न है कि किसी भी विधा में क्या अधिक मात्रा में लेखन करने वाले को ही आप कवि / कहानीकार / व्यंग्यकार मानेंगे। तब तो मेरे ही शहर में कुछ ऐसे भी कवि हैं जो अभी तक दस हज़ार कविताएँ लिख चुके हैं। हर शहर में इस प्रकार के 'दस हज़ारी' कवि होंगे ही। कहीं-कहीं तो 'एक लखिया' कवि भी मिल जाएँगे। तो क्या आप उन्हें कवि मान भी लेंगे। क्या यह सब तय करने का काम तौल के किया जाएगा ? कि हाँ भाई इसने डेढ़ क्विंटल कविताएँ लिख दी हैं, अब इसे कवि घोषित किया जाता है। अच्छा है गुलेरी जी इस समय में कहानीकार नहीं हुए, नहीं तो लोग उनसे यही पूछते कि 'किसने कहा था' आप कहानीकार हो? वो भला क्या जवाब देते कि 'इसने कहा था' या 'उसने कहा था'। मुझे लगता है कि यह भी एक प्रकार का 'ककनागवउआवाद' ही है। अंतर बस इतना है कि वहाँ आप पत्र-पत्रिकाओं के सारे पन्नों को अपने लिए सुरक्षित चाहते हैं और यहाँ आप सारे साहित्यिक मंचों को अपने लिए आरक्षित करना चाहते हैं। मित्रो हम ऐसा क्यों चाहते हैं कि हम सर्वव्यापी हो जाएँ। हर मंच पर, हर गोष्ठी में, हर कार्यक्रम में हम ही रहें। हम क्यों किसी ओर को सहन नहीं कर पाते हैं, जबकि हम जानते हैं कि हम चाह कर भी हर स्थान पर उपस्थित नहीं रह सकते। यदि एक कार्यक्रम में कोई आपका साथी वक्ता या अतिथि के रूप में जा रहा है, तो अन्य में आप भी तो जा रहे हैं ? मगर नहीं, हमें सारा स्पेस चाहिए ही चाहिए। और इसके लिए सबसे आसान तरीक़ा हमको यह लगता है कि ख़ारिज कर दो अपने हर प्रतिद्वंद्वी को। पुरस्कार या सम्मान की घोषणा होते ही लगभग यही कहानी दोहराई जाती है। इस प्रकार कि जिसके नाम की घोषणा हुई है, वह अभी ठीक प्रकार से मिठाई आदि खा भी नहीं पाता है कि विवादों का 'नीम' उसकी ज़ुबान पर घुल जाता है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि पुरस्कार या सम्मान की घोषणा ही अपने आप में एक विवाद को पैदा करने का कारण होती है। कुछ लोग इस अवसर को लपकने हेतु तैयार ही बैठे रहते हैं मानों। हर नाम की घोषणा होते ही वे कारण तलाशने लगते हैं कि इसको किस आधार पर ख़ारिज किया जाना है। पिछले वर्षों में लगभग हर सम्मान / पुरस्कार के साथ यही किया गया। पिछले दिनों 'असहिष्णु' शब्द की टीआरपी बहुत बढ़ी हुई थी। मुझे लगता है कि हमारी पूरी बिरादरी धीरे-धीरे असहिष्णु होती जा रही है। बहुत पहले देखी गई फिल्म 'बॉर्डर' का एक संवाद याद आ रहा है 'तुम्हीं तुम हो तो क्या तुम हो, हमीं हम हैं तो क्या हम हैं'। हमारा समय हम सब से मिलकर ही बनता है। हम सब जो इस समय में हैं यह हमारा साझा समय है, जो है वह हम सबका है, चाहे सफलता हो या असफलता.....। तो अपने अपनों की सफलता में ख़ुश होने की आदत डालिए....। छोड़िए यह असहिष्णुता...।

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन की चर्चित पुस्तकें

वर्ष 2016 का चर्चित उपन्यास अकाल में उत्सव अब पेपरबैक संस्करण में भी

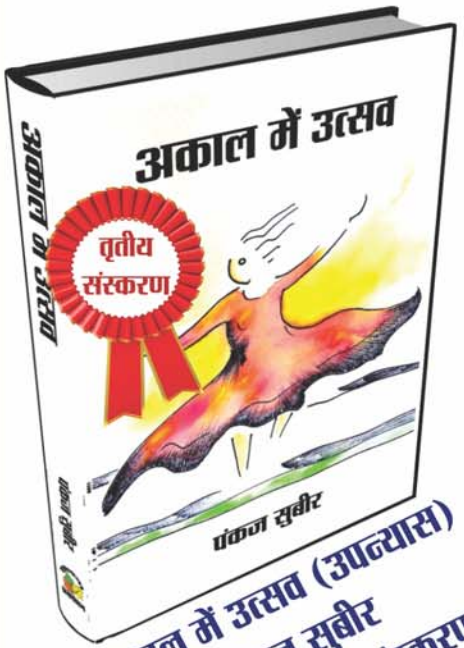

अकाल में उत्सव (उपन्यास)
पंकज सुबीर
तीसरा सजिल्द संस्करण

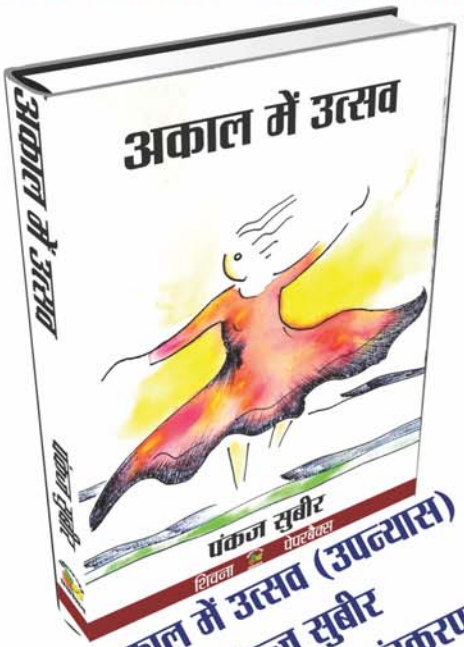

अकाल में उत्सव (उपन्यास)
पंकज सुबीर
प्रथम पेपरबैक संस्करण

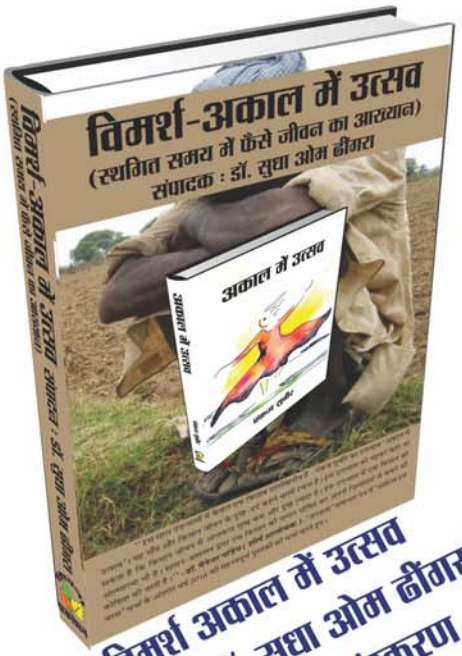

विमर्श अकाल में उत्सव
संपादक : डॉ. सुधा ओम ढींगरा
प्रथम सजिल्द संस्करण

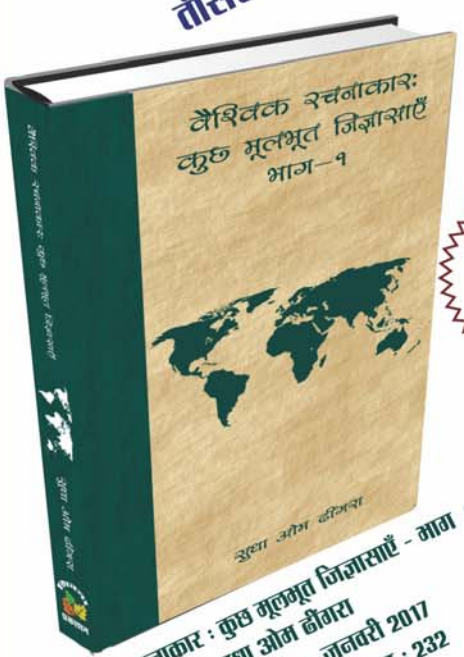

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 1
सुधा ओम ढींगरा
द्वितीय संस्करण : जनवरी 2017
मूल्य : 350.00 रुपये, पृष्ठ : 232

दोनों भाग
आकर्षक सेट में भी
उपलब्ध
मूल्य
750 रुपये

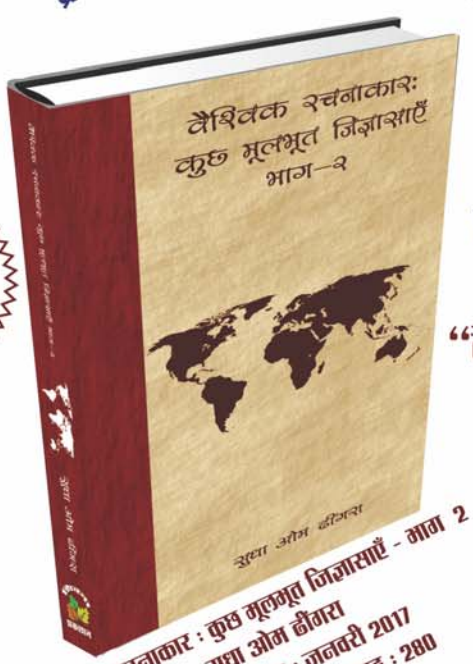

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 2
सुधा ओम ढींगरा
प्रथम संस्करण : जनवरी 2017
मूल्य : 400.00 रुपये, पृष्ठ : 280

विश्व भर के हिन्दी साहित्यकारों के साक्षात्कारों का अनूठा संग्रह
"वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ"
(दो भागों में)
संपादक तथा साक्षात्कारकर्त्ता :
सुधा ओम ढींगरा

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

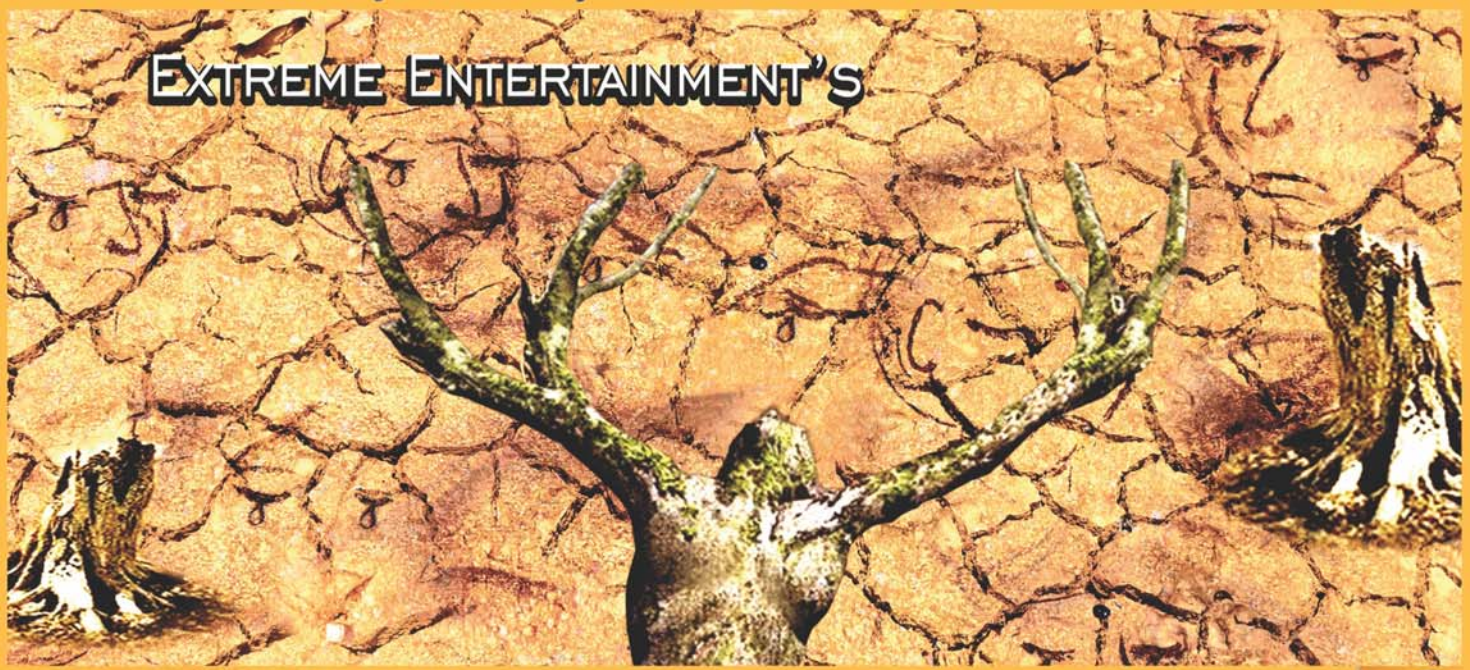

Vibhom Swar ● Quarterly ● January-March 2017 ● RNI : MPHIN32709 ● ISSN : 2455-9814

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।